नवें दशक की हिन्दी कहानी में नारी
का
मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

*

बुन्देलखण्ड विश्व विद्यालय झांसी में पी- एच0 डी0 उपाधि हेतु
प्रस्तुत

शोध - प्रबन्ध

वर्ष १९९७

अनुसंधित्सु
कु0 प्राची खरे
हिन्दी-विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज, झांसी

शोध-निर्देशक
डा0 मनुजी श्रीवास्तव
एम० ए० (राजनीतिशास्त्र, हिन्दी) पी-एच० डी०
रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी- विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज, झांसी (उ० प्र०)

बुन्देलखण्ड कालेज, झांसी

CERTIFICATE

It is certified-

(1) That the Thesis embodies the work of the candidate her self.

(2) That the candidate worked under me for the period required under ordinance- 7

(3) That she has put in the required attendance is my department during the period.

Dr. Manuji Shrivastava
Head of the Department(Hindi)
Bundelkhand Degree college
Jhansi

नत-प्रणति

कहानियाँ पढ़ना मेरे बचपन का शौक है। बचपन से आज तक कहानियों का अध्ययन करते-करते हमेशा मन, कथा की नायिका या सहनायिका पर ही रुक जाता था। आस पड़ौस की रिश्तेदारों की लड़कियों को देखकर नारी के बदलते स्वरूप मेरे मन में साकार हुये। सन् १९८०-९० तक के कथासंग्रह मैनें अपनी रुचि से ही पढ़ ड़ाले थे। मेरी इच्छा एम. ए. हिन्दी में ही पनप चुकी थी, कि इस दशक की हिन्दी कहानी की नारी के संवंध में कुछ लिखूं, इच्छा पूरी होगी ऐसी आशा नहीं थी। सौभाग्य वश श्रद्धेय डॉ. मनुजी श्रीवस्तव से मैंने पी. एच. डी. के संवंध में अपनी जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होने शोध कार्य के लिए 'नवें दशक की हिन्दी कहानी में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' विषय दिया तो मेरा मन उनके सम्मुख श्रद्धा से झुक गया और मैं उत्साह पूर्वक अपने कार्य में जुट गयी।

आवरण में लिपटी नारी और उसका जीवन इस दशक की कहानी की प्रमुख विशेषता है। कुण्ठाओं और आभावों के साए में पलती नारी के मनोवैज्ञानिक रूप का उद्‌धाटन इस शोध का उद्देश्य है। भारत में प्राचीन काल से ही नारी की महत्ता का प्रतिपादन किया गया था। अपनी विविध भूमिकाओं द्वारा नारी पुरुष का जीवन सुन्दर और सुसम्पन्न बनाती है। वह पुरुष की जन्मदात्री ही नहीं, प्रेरणादात्री भी है। भारतवासियों के सब आदर्श स्त्री रूप में है। "विद्या का आदर्श सरस्वती, धन का लक्ष्मी, पराक्रम का दुर्गा, सौन्दर्य का रति, पवित्रता का गंगा, भगवान का जगज्जननी के रूप में देखा है।" संसार आज तक पति पत्नी (स्त्री-पुरुष) के संसर्ग से ही चल रहा है। पत्नी का स्वरूप भारत में आज तक यही है-

"कार्येषु दासी, करणेषु मन्त्री, रुपेषु लक्ष्मी
भोज्येषु माता, शयनेषु रम्भा, क्षमया चरित्री।"

सम्पूर्ण सुखों का केन्द्र पत्नी है, वह समाज का प्रथम घटक है क्योंकि परिवार ही उससे चलता है। समय बदलता गया और नारी परतन्त्र होती गयी, वह सहचरी नहीं अनुचरी बन गयी। देश के विद्वानों ने नारी शिक्षा पर जोर दिया और उसे अबला से सबला बनाने पर जोर दिया आज नारी शिक्षित है, वह पतिवृत के उन पाठों को विस्मृत करना चाहती है जिनमें आँख बन्द कर पति को (जुआरी, शराबी, चरित्रहीन) समर्पित होने, उसके प्रहारों को पति भक्ति का प्रसाद समझने, पति के मनचाहे मन बहलाव का खिलौना बनने बाहर जाते समय श्रंगार की गुड़िया बनने की शिक्षा हो। आज नारी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व और व्यक्तित्व स्वीकार कर स्थापित होना चाहती है। अपने जीवन को वह हेय बनाना नहीं चाहती। उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का परिचय अब समाज को मिल चुका है। मनौविज्ञान प्रगति की सीढ़ियाँ चढ़ता जा रहा है। आज 'मानव' के रूप में उसके व्यवहार का विश्लेषण हो रहा है 'स्त्री' के रूप नें नही। कहानियों में जो विविध रंगी नारी चित्रण मिलता है, नारी केजो बदलते स्वरूप देखने को मिलते हैं, उनका इस शोध प्रबंध में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

शोध प्रबंध छः अध्यायों में विभक्त है-

प्रथम अध्याय में नवें दशक से पूर्व प्रमुख हिन्दी कहानी आन्दोलन।

द्वितीय अध्याय में समकालीन परिवेश का चित्रण है।

तृतीय अध्याय में हिन्दी कहानी में नारी की स्थिति एवं नवें दशक में उसके प्रतिबिम्ब दृष्टव्य हैं। इसमें शाश्वत् रुपों के साथ विविध वर्गों की नारियों को भी सम्मिलित किया है।

चतुर्थ अध्याय मे मनोविज्ञान एवं नवें दशक की हिन्दी कहानी में नारी, इसमें मनोविज्ञान, नारी मनोविज्ञान, प्रमुख मनोवैज्ञानिक सिद्धांत एवं नवें दशक की हिन्दी कहानी में नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत है।

पंचम अध्याय मे नवें दशक की हिन्दी कहानियों में नारी के प्रति अभिव्यक्त वैचारिक वैविध्य में नारी की विशिष्ट परिणतियों का चित्रण है।

षष्ठम् अध्याय मे उपसंहार के अन्तर्गत समस्त विवेचनाओं को निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

प्रथमतः मैं इस दशक के हिन्दी कथाकारों के प्रति अपने अन्तरमन की समस्त श्रद्धा अर्पित करती हूँ। शोध यात्रा के पथिक के रूप में मेरे समक्ष अनेक कठिनाइयाँ आई है। शंकाओं और समस्याओं के समाधान में मेरे निर्देशक उदारमना गुरु डॉ. मनु जी श्रीवास्तव की अविरल कृपा एवं उनका सुलझा प्रखर मस्तिष्क मेरा सम्बल रहा है। मेरे गुरु कोशीयज्ञान विग्रह, विद्या व्यसनी, बहु-अधीत, बहुश्रम, प्रतिभा प्रखर तथा प्रसन्न व्यक्तित्व से सम्पन्न हैं। यह शोध प्रबंध जिस भी रूप में सामने है उसका सम्पूर्ण श्रेय गुरुवर को है। उनकी विचारोत्तेजक टिप्पणियों एवं उनके स्नेहिल प्रोत्साहन के अविस्मरणीय योग से ही यह अपना रूपाकार गृहण कर सका है। शोध का यह दुर्गम पथ मैंने अपनी गुरुमाता श्रीमती शशि श्रीवास्तव के मधुर स्नेह की छत्र छाया में विविध कठिनाइयों के मध्य निडर और निशंक भाव से पार किया है। उनके असीम प्यार के कारण मैं कुछ अधिक कह नही पा रही.....। गुरु परिवार के लिए आभार के शब्द लिख सकना मेरी कलम की सामर्थ्य से बाहर है। महान विभूति डॉ. जै पी. अग्निहोत्री प्राचार्य बुन्देलखण्ड कॉलेज झांसी के प्रति आभार व्यक्त करना मेरा परम कर्त्तव्य है जिन्होंने मुझे कॉलेज से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से सहयोग प्रदान किया।

श्री चित्रगुप्त महाविद्यालय मैनपुरी के प्रवक्ता आदरणीय डॉ. शिव जी के स्नेह का अप्रत्यक्ष असीम लाभ जो मुझे मिला है उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ। जिला पुस्तकालय झाँसी के प्रभारी श्री राकेश पाठक नें मुझे अपने पुस्तकालय से पुस्तकें उपलब्ध कराकर जो सहयोग प्रदान किया उसके लिये मैं उनके प्रति ह्रदय से आभारी हूँ।

स्व. श्री द्वारिका प्रसाद जी खरे मेरे पितामह सम्प्रति जहाँ कही भी होंगे, उन तक मेरी प्रणामांजलि पहुचेगी ऐसा मेरा अखण्ड विश्वास है। चेतना और आत्मविश्वास मुझे इन्ही से प्राप्त हुआ। आदरणीय मेरे पिता श्री जगदीश शरण-खरे (अनुविभागीय अधिकारी लो. नि. वि.) जिनकी स्नेहच्छा सदैव मेरे ऊपर रहती है, मेरे प्रति उनकी जो शुभाशा है, वह अन्दर से मुझे जितना समृद्ध आलोकमय एवं संकल्पवान बनाती है उसे शब्द बद्ध करना मेरे लिए बहुत कठिन है। माँ श्रीमती प्रभा खरे से मैं कभी ऋणमुक्त हो ही नहीं सकती। इस कृति के संस्कार परिष्कार का कार्य इसे गढ़ने से लेकर ठोकनें-पीटने और तरासने तक का सारा कार्य समय निकालकर वात्सल्य पूर्ण स्नेहभाव से समुद मन उन्होनें किया है।

मुझे अपार स्नेह जिनसे मिला, जिन्होंने मेरे धीरज का बांध टूटने नही दिया, समय- समय पर उचित मार्गदर्शन व आर्शीवाद प्रदान किया ऐसे पिता तुल्य अग्रज पं. चन्द्रप्रकाश तिवारी जी का सहयोग स्तुत्य है।

निरन्तर मेरी हित चिंतना में निरत रहने वाली इन आत्मीयों का प्रेमिल सहयोग मिला वे हैं- नीलम बख्तानी व सीमा श्रीवास्तव। कुछ समस्याओं का प्रीतिकर समाधान इन दोनो ने खोजा, उसके लिए तो अपने अन्तस् का 'सुभाव' ही अर्पित कर सकती हूँ। अनुज त्रयी अरविन्द-अनन्त-अच्युत का सहयोग भी सराहनीय है पर मैं उन्हें धन्यवाद न देकर बड़ी बहिन के अधिकार के साथ उनकी सफलता और समृद्धि हेतु मंगल कामना करती हूँ

शोध प्रबंध को मनोयोग पूर्वक टंकित करने के लिए मे श्री ...शशि..... की भी अत्यन्त आभारी हूँ।

अंत में इस ग्रन्थ के निर्माण में जिन-जिन पुस्तकों की सहायता ली गयी है उनकी सूची इस ग्रंथ के अंत में दी गयी है। उन सभी पुस्तकों के मनीषियों के प्रति भी मैं अनुग्रहीत हूँ।

मेरे विनम्र प्रयास की विद्धतजन ही समीक्षा करेंगे।

शोध अनुसंधित्सु

प्राची खरे

प्राची खरे

नवे दशक की हिन्दी कहानी में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

अनुक्रमणिका पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

नवें दशक से पूर्व हिन्दी कहानी और कहानी आन्दोलन

१. नई कहानी आन्दोलन
२. अकहानी आन्दोलन
३. सचेतन कहानी आन्दोलन
४. सहज कहानी आन्दोलन
५. समांतर कहानी आन्दोलन
६. जनवादी कहानी आन्दोलन
७. सक्रिय कहानी आन्दोलन

प्रथम अध्याय

नवें दशक से पूर्व हिन्दी कहानी और कहानी आन्दोलन

आधुनिक साहित्य की समस्त विधाओं मे कहानी सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। इसका इतिहास मनुष्य जाति के इतिहास के साथ साथ आरम्भ होता है। यह उसके आदिम संस्कारों और वासनाओं से सम्पृक्त है। कहने सुनने की प्राचीन संस्कृति से लिखने पढ़ने की आधुनिक सभ्यता तक उत्तरोत्तर विकसित होते कहानी ने जो मार्ग बनाया है वह बहुत मनोरंजक है। वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध और जैन साहित्य के कथा आख्यान, उपाख्यान, रूपक, नीति कथा, बोध कथा, चरितकाव्य और रासक आदि की एक लम्बी ऐतिहासिक तथा गौरवमयी परम्परा को कहानी ने पीछे छोड़ा। भूत प्रेत, दानव दूत परियों, उड़न खटोला. जादू टोना, पेड़ पौधे, पशुपक्षी हंस हंसिनी, सांप बिच्छू, राजा रानी की आदिम चमत्कारी लोक कथाओं की तलवर्ती और सतत् अन्तर प्रवाही परम्परा धारा से अपने को ऊंचा उठाया।

वैज्ञानिक सभ्यता विकास की उन्नीसवी शताब्दी तक पहुंचते पहुंचते समूचे विश्व साहित्य में कहानीकला अपने नवविकसित, परिनिष्ठित, प्रभावशाली कलात्मक और जीवनवादी स्वरूप विकास को लेकर जहाँ पूर्णता की एक सीमा तक पहुंची वहाँ इस सदी के अंतिम नवजागरण चरण में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी कहानी ने भीअपने कवित्वमयी, सर्वात्मवादी विनोदवादी, अतिमानवीय, अतिभावुक सुधारपरक, सीधे साधे सपाट और ढीले ढाले तथा वोझिल पुरातन शिल्प को विसर्जित कर नये रुप में खड़ा किया। उसने आसमान की ओर से जमीन की ओर, राजा की ओर से प्रजा की ओर, मनोरंजक से जीवन आदर्शो की ओर,वर्णनात्मकता से संवेदनीयता की ओर अपने को मोड़ा। अंग्रेजी के शब्द 'स्टोरी' के गठन वाले पांचो तत्वों-आरंभ, आरोह, चरमविन्द (क्लाईमेक्स) अवरोह और अंत के ढ़ाचे पर खड़ी विकास मान हिन्दी कहानी अन्तरवर्ती वस्तु सम्पदा के अतिरिक्त शैलीगत रूप रंग में अपनी पुरानी परम्परा से सर्वथा भिन्न होती जा रही है।

कहानी कहानी के बदलते हुए स्वरूप, कहानी के प्रमुख आन्दोलनों पर विचार करने से पूर्व एक प्रश्न मन में आता है- कहानी कैसे बनती है? कहानी की कहानी क्या है? इन प्रश्नों का समाधान "शैलेश पटियानी के लेख- कहानी कैसे बनती है?" से हो जाता है। शैलेश जी ने लिखा-" उन आवेगों का जो कहानी के इर्द गिर्द उग आये और उगाये गये जंगलो को अपने साथ बहा ले जाना चाहते है। कही हमला, कही टीस, कही सुझाव ओर कही प्रवचन की अपनी पुरानी पहचान के साथ कथाकारों को कोई नया रास्ता मिले या दिखे --------" [१] (शैलेश जी के इन वाक्यों में बहुत कुछ छिपा है) कहानियों की पहचान, प्रमुख आन्दोलनों का आगमन शैलेश की इन पंक्तियों में रहस्य की भांति छिपा हुआ है।

कथ्य और शिल्प ने एक विशेष दिशा में प्रगति की। आधुनिक हिन्दी कहानी को एक निश्चित स्वरूप दिया। विकास की एक निश्चित दिशा प्रदान की। हिन्दी कहानी का शिल्प आरोह और अवरोह से बढ़ती हुयी तथा चरम सीमा के एक बिन्दु में सिमटने वाली भाव संवेदना के शिल्प से बढ़कर सम्पूर्ण कहानी, में फैलाने वाली भाव संवेदना के शिल्प तक तथा उसका आदर्श एवं रूमानी कथ्य यथार्थ के नये बोध अथवा नये यथार्थ के बोधतक पहुंचा है। आधुनिक हिन्दी कहानी क्रमशः बढ़ती हुयी अपनी कहानी इस तरह बनाती चली है।

१- दैनिक जागरण - साप्ताहिक परिशिष्ट - १९ मार्च १९९५

कोई भी वस्तु ऐसी नही जिसकी कि कोई कहानी न हो। कहानी में स्वरूप और संवेदना तो अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है।

वस्तु के भिन्न होने के सारे तार बनावट के भिन्न होने से गुंथे है। रूप और अंतर्वस्तु की संयुक्ति ही स्वरूप तय करती है। बनावट का सवाल इस तरह बनने और बनाने दोनों से जुड़ा है। विधा की भिन्नता का नियम भी यही है। अंर्तवस्तु समान होते हुए भी रूप की भिन्नता रचना की पूरी संरचना को बदल सकती है। एक ही कथा को विभिन्न आकार दिए जा सकते हैं। वस्तु का होना कही न कही इस बात पर भी निर्भर है कि अंततः उसका स्वरूप क्या बनता है? इस प्रकार रूप और वस्तु एक दूसरे के पूरक है। जो रूप और वस्तु के इस अन्योन्याश्रय संबंध को नही समझता उसे नासमझ के ओर क्या कहा जाय क्योंकि विना रूप के वस्तु और बिना वस्तु के रूप असम्भव है।

रूप तथा अंर्तवस्तु का गहरा विवेक ही किसी वस्तु को उसका स्वरुप दे सकता है। कहानी की विद्या में भी वस्तु और रुप के सवाल को इसी तर्क से देखना होगा क्योकि तव ही यह पूरी पारदर्शिता में देखा जा सकता है कि आखिर कहानी कैसे बनती है या कैसे बनाई जा सकती है?

यह कथा की कथा न होकर कहानी की कहानी इसलिए है कि कथा ने कहानी का रूप धारण कर लिया है और इसके परखने की कसौटी बदल रही है। कथा सामान्य से विशिष्ट बन रही है कहानी की उपलब्धियों तथा सीमाओं का मूल्यांकन इसलिये आवश्यक हो गया है कि यह साहित्यिक विधा भारतीय जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम बनी हुयी है।[१]

हिन्दी कहानी का जन्म बीसवी शताब्दी के प्रारंभ में ही हो चुका था, इस विधा ने शीघ्र ही आशातीत प्रगति की। विकास के प्रांरभिक दौर में ही चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' जैसी श्रेष्ठ कहानी की रचना हुयी। इसके बाद जयशंकर प्रसाद व प्रेमचन्द ने इस विधा को साहित्यिक प्रौढ़ता प्रदान की। प्रेमचन्द जी ने कहानी को जीवन के यथार्थ से जोड़ा। प्रसाद व प्रेमचन्द के पश्चात् हिन्दी कहानी का विकास तीव्र गति से हुआ तथा ये दोनों ही कंथाकार दो भिन्न कथा धाराओं के प्रतीक बन गये। अज्ञेय जैनेन्द्र, इलाचन्द जोशी आदि कहानीकारों ने मनोवैज्ञानिक कहानी धारा को समृद्ध किया तो यशपाल, उपेन्द्राथ अश्क, अमृत राय, भैरव प्रसाद गुप्त, रांगेय राघव आदि ने प्रेमचन्द की सामाजिक यथार्थवादी कहानी परम्परा को विकसित किया।

हिन्दी कहानी की विकास धारा में हम १९४०-५0 के बीच एक गतिरोध की स्थिति पाते है। इस गतिरोध को स्वातंत्रयोत्तर काल में उभरी कहानी कारों की पीढ़ी ने न केवल तोड़ा प्रत्युत हिन्दी कहानी को विशिष्ट गरिमा प्रदान क तथा कहानी केन्द्रीय विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुयी। कहानी पर पत्रिकाओं में सर्वाधिक चर्चा हुयी तथा कहानी विधा को समर्पित अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। इसी वातावरण में हिन्दी कहानी के विकास क्षितिज पर अनेक आन्दोलनों का उदय तथा अवसान हुआ।

' नई कहानी ' हिन्दी कहानी के विकास में सर्वप्रथम तथा सबसे संभावनापूर्ण आन्दोलन था जो १९५५ के आसपास प्रारंभ हुआ। उसके बाद अकहानी, सचेतन कहानी,सहज कहानी, समांतर कहानी, सक्रिय कहाना तथा जनवादी कहानी आन्दोलन का उदय हुआ। ये आन्दोलन चर्चा का केन्द्र बने।

इन कहानी आन्दोलनों को लेकर हिन्दी समीक्षा में पर्याप्त मात्रा में लिखा गया। यह लेखन हमेशा आन्दोलनों के पक्षधरों ने लिखा। विरोधियों ने आलोचनात्मक लेख लिखे। सर्वाधिक चर्चा नई कहानी की हुयी मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर की त्रयी ने इस विषय में क्रमशः बकलम खुद, कहानीः स्वरूप और सम्वेदना,

---

१. हिन्दी कहानीः पहचान और परख इन्द्रनाथ मदान

नई कहानी की भूमिका पुस्तकें लिखी। राजेन्द्र यादव की एक दुनिया समांतर की भूमिका नई कहानी की प्रकृति का विश्लेषण करती है। डा. नामवर सिहं डा. देवीशंकर अवस्थी, डा. धनंजय वर्मा, हृषीकेष, मधुरेश आदि समीक्षकों ने नयी कहानी के बारे में बहुत लिखा। अकहानी पर डॉ. गंगा प्रसाद विमल, डॉ. विजय मोहन सिंह ने सचेतन कहानी पर डॉ. महीप सिंह, डा. श्याम परमार ने, सहज कहानी पर अमृत राय ने समांतर कहानी पर कमलेश्वर ने, जनवादी कहानी पर डा. कर्णसिंह चौहान आदि ने बहुत लिखा है। इन आन्दोलनों के बारे में विचार एक तरफा है, वस्तुनिष्ठ विश्लेषण का अभाव हमेशा बना रहा है इस परिवर्तन में इन सभी आन्दोलनों का एक साथ वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन है।

इन आन्दोलनों के बारे में " हिन्दी के अधिकांश नये कहानीकार सब कुछ लिख रहे है। जीवन के विभिन्न पक्षों की झलकियां जुटा रहे हैं। जिन्हें देखकर पाठक मुग्ध है और पाठक से अधिक स्वंय कहानीकार। यह अलग बात है कि इन तमाम पक्षों और आकृतियों के पीछे चरित्र की एक ही सत् ही पहचान और यथार्थ की एक ही मामूली पकड़ छिपी हुयी हो।" [१]

इतिहास इस बात का साक्षी है कि मानव के विकास में धर्म राजनीति, अर्थनीति एवं चिन्तन का बड़ा महत्व रहा है। इन क्षेत्रों में जो वैचारिक आलोड़न आते रहे है उन्होने ही आन्दोलनों का रूप धारण किया। ये आन्दोलन मानव के विकास को प्रभावित करते हैं। आन्दोलन एक ऐसा शब्द है जो समाज की परिवर्तन कारी चेतना का प्रतीक है। कभी कभी तो आन्दोलन समाज को एक नई दिशा भी प्रदान करता है। इस सन्दर्भ में यह कथन द्रष्टव्य है-" पहले पहल किसी भी विचार का स्थायी रूप से जीवन मूल्य के रूप में परिवर्तन, वैयक्तिक सूझ बूझ और प्रतिपादन की व्यापकता के आधार पर हुआ। बाद में बड़े वर्ग द्वारा स्वीकृत हो जाने पर या विश्लेषित किये जाने पर वही विचार वाद का रूप धारण कर जीवन प्रक्रिया को नई दिशा देता आया।" [२]

अध्यात्म के प्रभाव के कारण भारत में प्राचीन काल में धार्मिक आन्दोलन मानव जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित करते रहे है। अंग्रेजी में आन्दोलन को Movement कहते है इसका अर्थ होता है- हलचल। समाज शास्त्र सैन्य विज्ञान,कला एवं संगीत आदि विषयों में भी Movement का प्रयोग होता रहा है। विस्तृत अर्थ में Movement का अर्थ है किसी विशिष्ट लक्ष्य को सिद्दि के लिये जनसमूह द्वारा किये जाने वाला अनवरत प्रयास।" [३] मानव समाज जब किसी प्रकार का परिवर्तन चाहता है तब वह मिलकर सबके साथ एक विचारधारा को जन्म देता है। आन्दोलन की प्रकृति में परिवर्तन समाया रहता है आन्दोलन शब्द अपनी प्रकृति के कारण Revolution शब्द के सन्निकट भी पड़ता है। Revolution का अर्थ होता है व्यापक जीवन परिवर्तन। ये कथन ध्यातव्य है- " जीवन के विविध क्षेत्रों में होने वाले आन्दोलन मानव की युगीन पारिवेशिक जीवंतता की सशक्त अभिव्यक्ति करते है। उनमें व्यतीतोन्मुखी जीवन चिन्तन के प्रति अनासक्ति ओर नवीन की स्थापना के प्रति गहरी आस्था होती है।" [४]

आन्दोलन शब्द ' वाद ' (Ism) के पर्याय के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है। वाद और आन्दोलन में थोड़ा सा अन्तर होता है। 'बाद' विचारों पर आधारित होता है ओर आन्दोलन में क्रिया पर वाद और आन्दोलन

---

१. कहानी : स्वभाव और चरित्र, श्री कान्त वर्मा
(हिन्दी कहानी पहचान और परख : इन्द्रनाथ मदान)
२. समकालीन कहानी : समानान्तर कहानी - डा. विनय
३. द ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी - वाल्यूम ४
४. समकालीन कहानी : समांतर कहानी - डा. विनय

परस्पर गहराई से सम्बद्ध है क्योंकि वाद की क्रियात्मक अभिव्यक्ति ही आन्दोलन के रूप में होती है।

राजनैतिक, धार्मिक,समाजिक सभी क्षेत्रों में आन्दोलन शब्द एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।" साहित्य समाज का दपर्ण है।" अतः साहित्य का क्षेत्र भी आन्दोलनों से अछूता नही रहा है। अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छंदतावाद एक परिवर्तनकारी आन्दोलन था जो बहुत चर्चित रहा। हिन्दी काव्य साहित्य में छायावाद,प्रगतिवाद, प्रयोगवाद भी आन्दोलनों के रूप में हमारे सामने आये। आधुनिक युग में हमारे साहित्य में तीव्र गति से परिवर्तन हुए। भारत १९४७ में आजाद हुआ, भारत वासियों की जीवन पद्धति बदली, नई शासन प्रणाली बनी, इतने परिवर्तनों के बाद साहित्य में भी विशाल परिवर्तन देखने को मिला। विज्ञान के बढ़ते चरण, विश्व मैत्री इन दो कारणों ने हमारी चिन्तन प्रणाली को बदल डाला। साहित्य पर इन कारणों का प्रभाव पड़ा। हिन्दी साहित्य में मानवतावाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद, गाँधीवाद आदि वैचारिकवाद आए। साहित्यकारों को नई जीवन द्रष्टियाँ मिली। हिन्दी गद्य साहित्य में कहानी एक ऐसी विद्या रही है जो १९४७ के चर्चा का केन्द्र थी हिन्दी कथा विकास की दिशा १९४७ के बाद अचानक ही बदल गई। कहानी का बोलबाला हिन्दी में सामूहिकता की मांग के कारण सर्वत्र छाने लगा। कहानी अर्थतन्त्र से पीड़ित जीवन के करीब आकर अन्य जीवन्त समस्याओं पर निगाह भी डालने लगी। अपने विधागत गुणों के कारण जीवन और युगीय बोध को व्यक्त करने की कोशिश करने लगी। कहानी विधा अपने क्षेत्रीय अनुशासन के साथ विकसित होने लगी। जीवन के यथार्थ को परिभाषित करने लगी। जीवन की गति प्रक्रिया के करीब आने का नतीजा हुआ कि कहानी के शिल्प में अधिक प्रयोग हुये कथ्य ने विस्तार पाया परिपाटी विहित विधागत सीमाएँ चरमरा कर टूट गयी। कहानी इतनी तेजी से बदलने लगी जितनी तेजी से जीवन की क्रूर स्थितियां बदलती है। वह अपनी परम्परा से दूर होते सी नजर आने लगी। सामाजिक सन्दर्भो का ताना बाना बुनना ही या इसमें उलझना सुलझना ही कहानी का कथ्य बनने लगा।

हिन्दी में कहानी के आधुनिक रूप का सूत्रपात पश्चिमी साहित्य के अनुकरण एंव उसकी प्रेरणा से बीसवी शताब्दी मे ही हुआ है। हिन्दी की सर्वप्रथम आधुनिक कहानी कौन सी है। इस पर कुछ मतभेद है। किशोरी लाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' जून १९०० में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुयी थी। इसके पूर्व 'रानी केतकी की कहानी' 'राजा भोज का सपना' आदि रचनाएं वास्तव में आधुनिक कहानी की परिभाषा की परिधि में नही आ पाती है। इससे शुक्ल जी 'इन्दुमती' को ही हिन्दी की सर्वप्रथम आधुनिक कहानी मानते है। पर यह कहानी शिवदान सिंह चौहान के अनुसार शेक्सपीयर के " टैम्पैस्ट " का अनुवाद है। इन्दुमती के बाद १९०३ में शुक्ल जी की "ग्यारह वर्ष का समय" शीर्षक मौलिक कहानी प्रकाशित हुयी। कुछ व्यक्ति इस कहानी को हिन्दी की प्रथम मौलिक आधुनिक कहानी होने का श्रेय देते है। माधव राव सप्रे की ' एक टोकरी भर मिट्टी '१९०१ 'छत्तीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित हुयी। कुछ ने इसे प्रथम कहानी माना।[1] इन तीनों कहानियों में आधुनिकता और अपनी अपनी विशेषताएं है। इनमें से कौन सी प्रथम मौलिक कहानी है, इस विवाद के निर्णय में पड़ने की अपेक्षा इन तीनों से ही आधुनिक हिन्दी का जन्म हुआ है।

आधुनिक हिन्दी कहानी के विकास को छह भागों में बांटा जाना उचित है-

"१.आरम्भिक कहानियों का काल- १९०० से पूर्व,
२.द्विवेदी युग सन् १९०० से लेकर १९१६ तक
३.प्रेमचन्द युग सन् १९१६ से लेकर १९३६ तक
४. प्रेमचन्दोत्तर काल सन् १९३६ - १९५० तक
५. नई कहानी सन् १९५० - १९६० तक
६. साठोत्तरी कहानी सन् १९६० से आज तक"[१]

---

१. हिन्दी कहानी समीक्षा और सन्दर्भ डा. विवेकी राय
१. नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति- सं. डॉ. देवी शंकर अवस्थी

कहानी आन्दोलन और साहित्यक परिवेश -

सन् १९५० के बाद नये कहानीकारों की जो पीढ़ी सामने आयी, वह नई दृष्टि लेकर कहानी के क्षेत्र में उभरी। हिन्दी कहानी के क्षितिज पर इन्द्रधनुषी रंग दिखाई देने लगा। हिन्दी कहानीकारों की नई पीढ़ी नये रंग लिए उग आई। हिन्दी कहानी के फलक पर एक स्पष्ट आन्दोलनात्मक स्वर सुनाई देने लगता है कहानीकारों में नई चेतना जाग्रत होती है। आलोचक कहानीकारों के साथ मिलकर आन्दोलन शास्त्र को एक नये रूप में प्रस्तुत कर देते है। इन आन्दोलनो के मूल में शाश्वत् कारणों के साथ साथ कहानीकारों की व्यक्तिगत यश कामना भी रही है। कुछ कहानीकार इन आन्दोलनों के माध्यम से अपने को प्रकाश में लाने का प्रयास करते रहे हैं।

उस समय कहानी को केन्द्रीय विधा बनाने में इन पत्रिकाओं का भी विशेष योगदान रहा है- ' कहानी, ज्ञानोदय, ' सारिका' 'नई कहानियाँ, 'लहर' 'विकल्प' आदि । धर्मयुग ने कथादशक योजना का आयोजन किया जिसका हिन्दी कहानी के विकास में महत्व है। आन्दोलनों के सूत्रपात पर गहराई से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुंचतें है कि आन्दोलनों के उभरने के कुछ निम्न कारण भी थे।

प्रथम कारण- प्रत्येक आन्दोलन का मूल परम्परा के विरूद्ध विद्रोह होता है। स्वातन्त्रयोत्तर कहानी ने जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द जोशी आदि कहानीकारों की परम्परा के विरूद्ध विद्रोह किया। कहानी के विकास मे आए ठहराव और अवरोध को तोड़ा।

द्वितीय कारण- स्वातंत्रयोत्तर काल में बदली हुयी संवेदना के आधार पर विषय वस्तु, मूल्य, चरित्र कथानक, रूपबद्ध भाषा सभी क्षेत्रों में कहानी कारों ने नये नये प्रयोग किये। रमेश वक्षी ने प्रयोगशीलता को इन शब्दों में रेखांकित किया है-

" कथा चरित्र, वातारण देशकाल और उद्देश्य तक में प्रयोग की हमेशा दो दिशाएं रहा करती थी- एक दिशा वह जो उसे प्राचीन से अलग करती है। और दूसरी वह जो उसे नयी जमीन तोड़ने को कहती है। " स्वातंत्रयोत्तर कथा आन्दोलनों ने दोनों ही स्तरों पर प्रयोगशीलता को प्रश्रय दिया।[१]

तृतीय कारण- प्रयोग कभी स्थिर नही होते वे गतिशील होते है। कहानी लेखन भी इसी तरह परिवर्तित होते रहने की प्रक्रिया है "समसामयिकता का यथार्थ बोध होते हुये भी भिन्न -भिन्न कथाकार उसे भिन्न आयामों से भिन्न दृष्टियों से सर्जित करते हैं फलतः प्रत्येक उभरता कथाकार अपने पूर्ववर्ती से कथायात्रा में आगे निकल जाता है। यही प्रवाहमयी प्रकृति एक ही कथाकार की पूर्ववर्ती कहानियों से उनकी परवर्ती कहानियों तक पहुंचने में व्यर्थ की कांटछांट कर मार्जित कर देती है।"[२] यही गतिशीलता हिन्दी कहानी के आन्दोलनों को जन्म देती रही है।

चतुर्थ-कारण तो स्पष्ट है- कहानीकारों की व्यक्तिगत स्थापना की इच्छा एंव यश कामना है।

सन् १९५० के बाद हिन्दी कहानी ने एक नया स्वरूप धारण किया कुछ परिस्थितियाँ बदली, कुछ लेखकों का लेखन परिवर्तन बदला आदि। कहानी साहित्य गगन पर अनेक आन्दोलनों का उदय हुआ। हम ये भी कह सकतें है कि ये आन्दोलन साहित्याकाश पर सप्तर्षि (सप्त+ऋषि) की भांति चमकने के प्रयास में लगें रहे।

प्रमुख आन्दोलन इस प्रकार है-

१. नयी कहानी
२. अकहानी
३. सचेतन कहानी
४. सहज कहानी
५. समान्तर कहानी
६. जनवादी कहानी
७. सक्रिय कहानी

---

१. नई कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति- सं. डॉ. देवी शंकर अवस्थी

२. नई कहाना के विविध प्रयोग- पांडेय शशिभूषण शीतांशु

नई कहानी आन्दोलन

कहानी आन्दोलन का प्रथम चरण

सन् १९४० से १९५० तक का काल हिन्दी कहानी में संक्राति काल माना जाता है। इस दशक में तीव्र राजनीतिक गतिविधियों का दबाव प्रत्येक भारतीय अनुभव कर रहा था तथा यहाँ की जनता में परिस्थितियों से संघर्ष करने की अदम्य इच्छा जाग गयी थी, किन्तु आश्चर्य की बात है कि इस दशक के कहानीकार सामाजिक और राजनैतिक संघर्ष से विमुख होकर निगूढ़ समस्याओं के गहन विश्लेषण तक सीमित थे। व्यक्तिवादी पृवृत्ति की अतिशयता ने सामाजिक जीवन सन्दर्भ में कथाचेतना को पतनोन्मुखी बना दिया था। यह कहानी की परम्परा की भ्रष्ट प्रवत्ति थी।"[१] कहानी की प्रगति की दृष्टि से यह दशक अनुर्वर कहा जाताहै'।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति भारत के इतिहास की प्रमुख घटना है। भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन, जिसमें अंग्रेजी शासन को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। ये भारतीयों की चेतना का प्रतीक था। " देश का सम्पूर्ण गौरव और विराट् सांस्कृतिक मर्यादाएं इस बिन्दु से जुड़ी हुयी है और यहीं से शुरू होती है आजादी की उमंगो में खोई हुयी नये भारत की यात्रा।"[२] स्वतन्त्र होते ही देश ने व्यक्ति और समाज के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए कुछ संकल्प किये तथा कुछ कार्यक्रम निधारित किये। देश में नये जीवन की धारा में प्रवेश किया। ये हमारा दुर्भाग्य था कि स्वतन्त्रता के पश्चात भारतवर्ष का दो देशों में विभाजन हो जाना। साम्प्रदायिक आधार पर देश के विभाजन ने हिन्दू तथा मुसलमानों को भयानक रक्त पात की आग में झोंक दिया। विभाजन की विभीषिका में पाशविकता का तांडव हुआ जिसमें समाज के सांस्कृतिक तथा सामाजिक मूल्य जलकर राख हो गये। " मौत का यह वी भत्स रूप किसी भी महायुद्ध के विनाश से कम नही था। "[३] सारे आदर्श विश्वास, राष्ट्रीय आन्दोलन की गरिमा इस आग मे झुलस गयी, विघटन कारी प्रवृत्तियों का उदय हो गया।

राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्तर पर द्रुत गति से जो परिवर्तन हुए उन्होंने भारतीय साहित्य को एक नयी दिशा प्रदान की। हिन्दी कहानी में हम बोध का नया स्वर पाते है। जीवन में अनेक अंतर्विरोध दिखाई देने लगे, सत्ता हाथ में आते ही देश का वातावरण एकदम बदल गया। हिन्दी का कहानीकार रचनात्मक स्तर पर बहुत सक्रिय हुआ तथा हिन्दी कहानी का विकास बहुत तीव्र गति से हुआ। यहाँ से ही हिन्दी कहानी के क्षितिज पर एक नई पीढ़ी का जन्म हुआ। ये नये कहानीकार अपने परिवेश को द्रष्टिगत रखते हुये नये ढ़ंग से कहानी सृजन में लग गये। कथ्य और अभिव्यक्ति में परिवर्तन आया इन्हें नयी कहानियाँ कहा गया। बाद में यही नाम एक आन्दोलन मे बदल गया।

ये कहानियाँ हंस प्रतीक, नया पथ आदि में प्रकाशित होने लगी थी ओर उनकी नवीनता एवं ताजगी की ओर लोगों का ध्यान भी गया किन्तु उन्हे किसी ने नई कहानी की संज्ञा से अभी तक अभिहित नही किया था।

" शिवप्रसाद सिंह की दादी माँ १९५१, में मार्कण्डेय की 'गुलरा के बाबा' तथा ' पान फूल' शीर्षक

---

१. हिन्दी कहानी के अस्सी वर्ष - शिवदान सिंह चौहान

२. नई कहानी उपलब्धि और सीमाएं - डा. गोरधन सिंह शेखावत

३. नई कहानी उपलब्धि और सीमाएं - डा. गोरधन सिंह शेखावत

कहानियों प्रकाशित हुयी। इस प्रकार ग्राम कथाओं को ही नयी कहानी का प्रारंभिक रूप माना जाय तो नई कहानी के प्रथम लेखक शिवप्रसाद सिहं और मार्कण्डेय ही सिद्ध होत है।"[1] सन् १९५४ में कहानी की नामक पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही और नये कहानीकारो की संख्या बढ़ती गयी। ओकार नाथ श्रीवास्तव की 'कला सुन्दरी', मोहन राकेश की सौदा, आदि कहानियाँ प्रकाशित हुयी।'कहानी' नामक पत्रिका के समानान्तर हैदराबाद से प्रकाशित होने वाली ' कल्पना' नामक पत्रिका को भी नयी कहानियाँ को प्रकाशित करने का श्रेय प्राप्त है। कमलेश्वर की 'आत्मा की आवाज'

निर्मल वर्मा की रिश्ते, जितेन्द्र की ' जमीन आसमान ' मार्कण्डेय की 'मिस शान्ता' आदि प्रकाशित हुयी। इन पत्रिकाओं में जो कहानियां छपी उनमें नयापन था, नये पन को रेखांकित किया गया था। यहीं से नयी कहानी की यात्रा प्रारंभ होती है।

नामकरण - इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता हैं कि पहलें परिस्थितयाँ बनती हैं, परिणाम स्वरूप कुछ प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं उसके बाद उन प्रवृत्तियों के सम्मिलित रूप को एक नाम दे दिया जाता हैं। जब नया नाम दिया जाता हैं उसका मूल कारण परम्परा के प्रति विद्रोह या पूर्ववर्ती परम्परा का विकास होता हैं। नयी कुछ प्रवृत्तियाँ ताजा होती हैं, तत्कालीन स्थितियों में ताजापन होता है। ताजा से अभिप्राय-"उस नये पन से हैं जो अपने में जीवंतता,सामर्थ्य और अछूतापन लिए हुए है।"[2]

'नयी कविता' का जन्म नयी कहानी से पहले हो चुका था। "नई कविता" जटिल अनुमति की कविता है। सामाजिक यथार्थ कविता से अधिक जटिल है। सामाजिक यथार्थ का सबंध कविता से कम कहानी से अधिक होता है। कहानी का दायित्व कविता ने उठा लिया हैं।[3] हिन्दी में निकष 'सकेंत' 'हंस' जैसे बड़ें-बड़ें साहित्य संकलन निकाले गये जिसमें नवलेखन परम्परा व नवलेखन की सभी विधाएं अपने सम्पूर्ण तत्वों के साथ विराजमान थी। इन पत्रिकाओं में नई कविता के साथ ये नई पीढ़ी की कहानियाँ प्रकाशित हुई। हँस के अर्धवार्षिक संकलन में मोहन राकेश, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, निर्मल वर्मा आदि की कहानियें के साथ ही मुक्तिबोध, केदारनाथ सिहं, श्रीकातं वर्मा आदि की कहानियाँ भी प्रकाशित हुयी। यही बात 'निकर्ष' के बारे में कह सकते हैं। 'निकर्ष के सपांदक तो वैसे भी नई कविता के पक्षधर रहे है। ऐसे लेखकों की कहानियाँ जिनका संबंध मूलतः नई कविता से था वे भी तो नए कहानीकार की होड़ में लगे रहे पर कुछ असफलता के कारण कहानीकार व नए कहानीकार बनने में उलझ गये। यहाँ इस समय हिन्दी का पूरा नवलेखन पारस्परिक भिन्नता को पहचानते हुए भी एक नये स्तर पर पुर्नगठित होने की स्थिति में पहुंच गया था। समाज में जो घटित होता है वह साहित्य में दिखाई देता है। नई कविता भाव बोध पर चल रही थी नई कविता के साथ साथ कहानी भी. उपन्यास भी भावबोध पर चल रहे थे। समूचा नवलेखन एक ही सन्दर्भ में था नवलेखन के मूल में संवेदना विराजमान थी।

---

१. बैवस्टर्ड बर्ड न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी
२. हिन्दी कहानी पहचान और परखः इन्दनाथ मदान
(कहानी : स्वभाव और चरित्र - श्री कान्त वर्मा)
३. नयी कहानी ओर मध्यवर्ग - डा. कामेश्वर प्रसाद सिंह

" जहाँ गद्य समर्थ होता है, वहाँ कविता गद्य से भाषा शक्ति गृहण करती है और जहाँ कविता मे भाषा का निखार पहले हो जाता है वहाँ गद्य कविता के प्रयोगों से अपनी भाषा को तराशता है।"१ अब १९५६-५७ के बाद कहानी में जो परिवर्तन आया सोतो आया ही, कहानी हिन्दी जगत के आकर्षण का केन्द्र हो गयी। नई कहानी की आवाज वस्तुतः एक रचनात्मक संभावना को देखकर उठी थी जो नई पीढ़ी के कहानीकारों की कृतियों में साफ झलकती हैं।

डॉ. नामवर सिहं को नयी कहानी के नामकरण की आवश्यकता सर्वप्रथम महसूस हुयी। उनके कहानी उनके लेख 'आज की हिन्दी कहानी' से ज्ञात होता है। नयी कहानी के नाम का समर्थन एवं इसे कहानी जगत मे स्थापित करने का श्रेय डा. नामवर सिंह को ही है। उन्होंने 'नई कविता' के सन्दर्भ में नयी कहानी के नामकरण पर विचार करते हुए कहा- " 'नयी कविता' की तरह 'नयी कहानी' नाम भी कोई चीज है क्या?"[1] " नयी कहानी नाम से अभी तक कोई आन्दोलन चला ही नही? इससे क्या समझें कि कहानी में कुछ नया पन आया ही नही कि कहानी में जो नयापन आया है वह कविता का अपेक्षा बहुत कम है?"[2]

नामवर जी ने अपने लेख में कहानी के परिवर्तित रूप की चर्चा की। वैसे भी ये अपने विचार समय समय पर व्यक्त करते रहे है। कमी सांकेतिकता को, कमी सूक्ष्म वातावरण को या कथा विन्यास को या वास्तव के विविध आयामों को या नवीन दृष्टि को आधार मानकर नई कहानी का मूल्याकन करते रहें हैं। यहाँ यह निश्चित हो जाता है कि नामकरण की आवश्यकता सबसे पहले नामवर सिंह को ही महसूस हुयी थी। कहानी का इतिहास उठाने पर ज्ञात होता है कि हमेशा कहानीकारों ने आपस में आरोप प्रत्यारोप लगाकर नये नये विवाद खड़े किये है। 'नयी कहानी' के नामकरण सबंधी विवाद मे डा. नगेन्द्र डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णय, विनय मोहन शर्मा, जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द जोशी, अमृत राय कहानी के नये विशेषण से सहमत नही हुयें क्योंकि "साहित्य चिर पुरातन होते हुये भी चिरनवीन रहता है, वह गतिशील है और परिवर्तनशील अतः नया तो होगा ही। "[3] किन्तु नयी कहानी के नामकरण के विरोध का कोई परिणाम नही निकला क्योंकि नयी कहानी एक सशक्त विद्या के रूप में स्थापित हुयी और नयी कहानी आन्दोलन पूरी प्रखरता के साथ कहानी क्षितिज पर उद्‌भासित हुआ।

<u>परिभाषा एवं चर्चा</u> - नयी कहानी के संबंध में वाद विवाद एवं चर्चा परिचर्चा बहुत हुयी। मोहन राकेश का कहना है-" माध्यम के रूप में कहानी की ओर नयी पीढ़ी का झुकाव एक आंतरिक अनिवार्यता के कारण ही है। जो लोग कहानी को बंधी बंधाई परिभाषा की रचना शैली के रूप में देखते है उन्हें इस स्थिति को समझने में कठिनाई हो सकती है क्योंकि उस अर्थ में नये लोगों ने इस माध्यम को नही चुना। हर नयी कहानी अपने में एक नया प्रयोग, एक नया सीमा चिन्ह हो सकती है। जो सामान्य धरातल उसे पुरानी कहानी से अलग करता हैं वह नयी-नयी संभावनाओं की खोज का है हिन्दी में आज यदि इस अन्वेषणात्मक कहानी को नयी कहानी का नाम दिया गया है। तो इस अर्थ में ही कि उसेक प्रयोग तथा अन्वेषण का क्षेत्र सर्वथा अपना है और कि अलग अलग कहानीकरों के विशिष्ट व्यक्तित्व और विशिष्ट अन्वेषण क्षेत्र के रहते हुए भी इस माध्यम में एक नयी सार्थकता ले जाने का उनका प्रयत्न एक सा है। जिन्दगी की आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों के चित्रण के लिए यह माध्यम अधिक अनुकूल है- अनुकूल किन्तु- आसान नही।"४

---

१. हिन्दी कहानी पहचान और परख-इन्द्रनाथ मदान
   (नई कहानी नया सन्दर्भ- नामवर सिंह)
२.- कहानी : नई कहानी - डॉ. नामवर सिंह
३. हिन्दी कहानी के आन्दोलन : उपलब्धियां और सीमाएं
४. वकलम खुद- मोहन राकेश पृ. १०२
२. कहानी स्वरूप और सम्वेदना - राजेन्द्र यादव

मोहन राकेश की द्रष्टि मे नवीनता है नयी परिभाषा है नयी ताजगी है वे मुक्त नयी कहानी पर बल देते है।

राजेन्द्र यादव के अनुसार- आज का कहानीकार मानता है कि युग के सारे विराट को गतिशील मूल्यों के संस्कारों और संक्रमण को कहानी के माध्यम से हम व्यक्ति या व्यक्ति समूह की चेतना धारा में कभी कभी चेतना के अनेक स्तरों पर एक साथ पकड़ने की कोशिश करते हैं। काल के प्रवाह में व्यक्ति की सामाजिकता का बोध और स्थिति ही आज की कहानी की विषय वस्तु है।"[१] सक्षिप्त रूप में राजेन्द्र यादव ये कहना चाहते है कि नयी कहानी व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश मानसिक अंतर्द्वन्द तथा व्यवहारिक जीवन की आवश्यकताओं के साथ उसे समग्र रूप में चित्रित करना चाहती है।

अब कमलेश्वर का स्थान आता है। इन्होने नयी कहानी के बारे में 'नयी कहानी' की भूमिका में बहुत कुछ लिखा।

कमलेश्वर के अनुसार- सर्जनात्मक साहित्य में जो कुछ व्यर्थ है उसे छांटने जाने की द्रष्टि ही नयी कहानी की वास्तविक प्रक्रिया है इसलिये नया शब्द न विशेषण है, न संज्ञा व मात्र उस प्रक्रिया का घोतक है जो सतत् है"[२] नयी कहानी प्रवाहमान है तो स्वरूप भी परिवर्तनशील होगा- " यथार्थ को खोजने वाली नयी कहानी है। नयी कहानी अनुभव के धरातल पर नयी होती है।"[३]

सन् १९५५ से ६५ तक लगातार १० वर्षो तक नयी कहानी पर वाद विवाद चला। जो आरोप लगाये गये उनका नयी कहानी आन्दोलन की त्रयी (मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर) (नई कहानी के प्रणेता)-

ने जबाब दिए। धीरे धीरे नयी कहानी आन्दोलन इन तीनो के हाथों की कठपुतली बन गया। नये पुराने आलोचक आलोचना करनें में लग गये। हिन्दी कहानी की नई दिशा अथवा नई कहानी के संवध में विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में निबन्ध लिखे जाने लगे है नई कहानी पर निबधं या आलोचतात्मक लेख जिन निबंधकारों ने, या आलोचकों ने लिखे उनके नाम इस प्रकार है-" जैनेन्द्र, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, विजयेन्द्र स्नातक, शिवदान सिंह चौहान, इन्द्रनाथ मदान, देवीशंकर अवस्थी, श्रीकान्त वर्मा, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, नामवर सिंह, कमलेश्वर, रामदरश मिश्र, रवीन्द्र कालिया, मनहर चौहान, मार्कण्डेय, रमेश वक्षी, परमानन्द श्रीवास्तव, डॉ. महीप सिंह, डॉ. सावित्री, डॉ. निर्मला, डॉ. रमेश कुन्तल मेघ ,डॉ. नरेन्द्र मोहन, डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित, डॉ. श्याम परमार, डॉ. जगदीश चतुर्वेदी, डॉ. ऋषिकेश आदि।

नई कहानी जिन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुयी उनके नाम इस प्रकार है- 'प्रतीक', 'कल्पना', 'कहानी', निकष एक 'हमारी पीढ़ी , ज्ञानोदय, निकष तीन और चार, 'संकेत', हंस, लहर, 'नया पथ' 'सारिका' प्रमुख है।[४]

१.- कहानी स्वरूप और सम्वेदना - राजेन्द्र यादव

२.- नयी कहानी की भूमिका - कमलेश पृ. ४९

३.- " " " " " " " " " पृ. ७३

४.- नयी कहानी और मध्यवर्ग - डॉ. कमेश्वर प्रसाद सिंह

नई कहानियो मे निम्नलिखित कहानियों को बहुत प्रसिद्धि मिली

शिवप्रसाद सिंह- दादी मां, आरपार की माला, बिन्दा महाराज, बिन्दा महाराज कर्मनाशा की हार
मार्कण्डेय - 'गुलरा के बाबा, 'पान फूल'
ओंकार नाथ श्रीवास्तव- ''कला सुन्दरी'
कमलेश्वर- आत्मा की आवाज, कस्बे का आदमी, राजा निरबंसिया
निर्मल वर्मा - 'रिश्ते' 'परिन्दे' पिक्चर पोस्टकार्ड', 'सितम्बर की एक शाम'
जितेन्द्र - 'जमीन आसमान'
मार्कण्डेय- 'मिस शान्ता','सावुन','हंसा जाई अकेला', भाई',
रांगेय राघव- 'गदल'
राजकुमार- 'कुट्टियां'
कृष्णा सोबती- 'बादलों के घेरे में', ' डार से बिछुड़ी',
फणीश्वर नाथ रेणु - 'रसप्रिया', 'लाल पान की बेगम',
रघुवीर सहाय - 'सेब' 'खोल',
धर्मवीर भारती- 'गुल की बन्नो'
केशव प्रसाद मिश्र- 'कोयला भई राख'
राजेन्द्र यादव- 'एक कमजोर लड़की की कहानी' 'जहाँ लक्ष्मी कैद है'
अमर कान्त - 'डिप्टी कलक्टरी'
भीष्म साहनी - 'चीफ की दावत' अपने अपने बच्चे'
शेखर जोशी - 'दाज्यू' बदलू'
मधुकर गंगाधर - 'ढिबरी' आदि आदि।

नई कहानी अब केवल पत्र पत्रिकाओं तक सीमित नही रह गयी थी।अलग अलग लेखेको के स्वतन्त्र कहानी संग्रह भी प्रकाशित होने लगे लेखेकों के स्वतन्त्र कहानी संग्रह प्रकाशित होने लगें। सन् १९६० तक निम्नलिखित प्रमुख कहानी संग्रह प्रकाशित हुए-

(१) मोहन राकेश कृत- 'नये बादल'
(२) राजेन्द्र यादव - ' जहाँ लक्ष्मी कैद है'
(३) फणीश्वर नाथ रेणु - 'ठुमरी'
(४) शिव प्रसाद सिंह- 'कर्मनाशा की हार'
(५) कमलेश्वर- 'राजा निरबंसिया'
(६) मार्कण्डेय- 'पान फूल'
(७) शेखर जोशी- 'कोसी का घटवार'
(८) ऊषा प्रियम्बदा- 'जिन्दगी और गुलाब के फूल'
(९) मन्नू भण्डारी- 'यही सच है'
(१०) अमर कान्त - ' जिन्दगी और जोंक'
(११) राम कुमार - 'हुस्नाबीबी और अन्य कहानियां
(१२) धर्मवीर भारती - 'बन्द गली का आखिरी मकान '
(१३) भीष्म साहसी - 'भाग्य रेखा'
(१४) शानी - 'बबूल की छाँव'
(१५) निर्मल वर्मा - 'परिन्दे'

नयी कहानी की प्रवृत्तियाँ

नई कहानी की पहचान को स्पष्ट करने के लिये उसकी विशेषताओं की व्याख्यां कर लेना आवश्यक है। अतः इसके स्वरूप की जानकारी ले लेना चाहिये। मार्कण्डेय लिखते हैं "नई कहानी से हमारा मतलब उन कहानियो से है जो सच्चे अर्थो में कलात्मक निर्माण हैं, जो जीवन के लिये उपयोगी है और महत्वपूर्ण होने के साथ ही, उसके किसी न किसी नये पहलू पर आधारित है या जीवन के नय तत्वों को एकदम नई दृष्टि से दिखाने में समर्थ है... नवीनता इसमें नही है कि उसमें किसी अछूते भू भाग के अजीब प्राणियों का वर्णन है, बल्कि इसमें है कि साधारण मानवीय जीवन में वह कौन सा विशेष नया पन है जो सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन के कारण पैदा हो गया है या बिना किसी परिवर्तन के भी जीवन का कौन सा ऐसा पहलू जो साहित्य में अब तक अछूता है।"[१] मार्कण्डेय की ये पंक्तियां स्पष्ट नई कहानी का अर्थ व स्वरूप दे रही हैं। साफ जाहिर हो रहा है कि नयी कहानी की आत्मा नया भाव बोध है वो जीवन के नये सत्यों का उदघाटन है।

नयी कहानी की विशेषताएं इस प्रकार है-

नयी कहानी की विशषताओं का अध्ययन करने पर एक प्रश्न मस्तिष्क में घूमता रहता है कि 'नयी कहानी' में नया क्या है? नया पन को हम कैसे समझ सकते हैं? अनुभूति पक्ष में, या अभिव्यक्ति पक्ष म नया पन है या दोनों में ही कुछ बदलाव तो आवश्यक है।

भगवत स्वरूप मिस्र की 'आधुनिक कहानियों' का तीसरा संस्करण हैउसमें हिन्दी कहानी : एक यात्रा शीर्षक में लेखक ने इस नये शब्द की व्याख्यां इस प्रकार की है-

"नयापन अपने आप में अनुभूति की ईमानदारी और अपने पन पर आधारित रहता है. जहाँ पर कलाकार किन्ही दार्शनिक राजनैतिक अथवा सामाजिक विचार धाराओं से प्रतिबद्ध न होकर अपनी विशुद्ध अनुभूति की सच्चाई और अपने विषय की यथार्थता के पति प्रतिबद्ध होता है वही वह अपनी अनुभूति में ईमानदार है, वही उसका भोगा हुआ जीवन है वही कलाकार की सच्ची सृजनशीलता का प्रेरक है इस सृजनशीलता से जो रूपायित होता है वही नया है. शेष सब कुछ अनुकरण है, अनुवाद है इसी सृजनशीलता के कारण ही 'नयी कहानी' के नाम की सार्थकता है। यही उसका नया पन है।"

नयी कहानी एक आशापूर्ण आन्दोलन था, जिसने हिन्दी कहानी को उच्च शिखर पर पहुंचाया। प्रेमचन्द युगीन भाव सम्वेदनाओं से सर्वथा भिन्न आधुनिकता बोध सकेन्द्रित ये कहानियाँ कथ्य भाषा शिल्प और संवेदना सभी स्तर पर नवता के आयाम लेकर आयी।

नयी कहानी की प्रथम विशेषता जीवन का यथार्थ चित्रण है। इस युग में नयी कहानी की पहचान उसमें अभिव्यक्त यथार्थ जीवन की प्रमाणिकता के आधार पर निर्मित हुयी है। नया कहानीकार कहानी रचता नही वरन् अपने अनुभव को कहानी के रूप में बदल देता है। नयी कहानी की प्रमाणिकता का मूल कारण कहानीकार का अनुभव होता है।"नयी कहानी का रचनाकार आज के यथार्थ का भोक्ता है। उसने द्रष्टा और भविष्य वक्ता की खोल को उतार फेंका हैं।"[२] अमरकान्त की " जिन्दगी और जोक इसी सन्दर्भ में द्रष्टव्य है। नयी कहानी में कहानीकार का द्रष्टिकोण भिन्न और बदला हुआ है। कहानी में वह स्वयं भोक्ता

१.- मार्कण्डेय - हंसाजाई अकेला (भूमिका)

२.- नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर पृ. १६

होता है कहानी ने "आरोपित मूल्यों के प्रति उपेक्षा दिखाते हुए व्यक्ति के परिवेशीय जीवन की यथार्थ पर बल दिया है।नयी कहानी का लेखक तटस्थता और निस्संगता के साथ अपने पात्रों को उनके यथार्थ सन्दर्भो में उपस्थित करता है"[१] उदाहरण स्वरूप कमलेश्वर की 'नीली झील कहानी है।

नयी कहानी ग्राम जीवन की पुर्नप्रतिष्ठा का आन्दोलन था। आरंभ की अधिकांश जीवन्त नयी कहानियों ग्राम जीवन या आंचलिकता से जुड़ी थी। कहानीकारों को ग्रामीण पात्रों से विशेष लगाव था। मार्कण्डेय की 'भूदान' कहानी गाँवों के नये विकास के स्वप्नभंग की कथा है जिसमें ग्राम का पुराना शोषक वर्ग अपने अपने संकुचित स्वार्थो के कारण आज भी साधारण किसानों के अभावग्रस्त जीवन और उनकी ट्रेजडी का उत्तरदायी है।"[२]

स्वातंत्रयोत्तर भारतीय जीवन में भ्रष्टाचार भी अपने उग्ररुप में था, नयी कहानी इसका भी चित्रण करती है। मोहन राकेश की परमात्मा का कुत्ता कहानी नौकरशाही ओर लाल फीताशाही के कारण हुयी आम आदमी की दयनीय स्थिति का स्वाभाविक चित्रण करती है। यथार्थ के बाद नई कहानी की द्वितीय विशेषता आधुनिकता बोध है। हिन्दी साहित्य में रोमंटिक, मार्क्सवादी एंव मनोविश्लेषणवादी जीवन दृष्टियों के विरूद्ध जो मानवतावादी तथा वैज्ञानिक द्रष्टि जागी, आधुनिक बोध उसी की देन है। 'नई कहानी' में यही द्रष्टि अपनाई गयी हैं। वास्तव में इस आधुनिक बोध के कारण ही नई कहानी पुरानी कहानी से भिन्न है। "रूढ़िगत और पवित्रतावादी द्रष्टि के विरूद्ध जो बौद्धिक,वैज्ञानिक, तर्क संगत, विवेकशील,मानवतावादी,एंव यथार्थवादी द्रष्टि कोण अपनाया जाता है उसी को आधुनिकतावादी द्रष्टिकोण कहते है। उसी प्रकार का परिणाम आधुनिक बोध है अतीत से चली आती हुयी जर्जर कढ़िया रूढ़ियां जो समसामयिक परिप्रेक्ष्य में अपनी अर्थवत्ता खो देती हैं उनके मोह को छोड़ देना आधुनिकता है।"[३]

नई कहानी की तीसरी विशेषता नवीन संवेदनात्मक धरातल एंव अनुमति है। अनुमति यथार्थ जगत में जन्म लेती है। नई कहानियों में लेखक किसी भी पात्र घटना या परिद्रश्य के वर्णन में अपनी ही अनुभूतियों को व्यक्त करता है। अनुमति एक मनोवैज्ञानिक क्रिया है जो मनुष्य प्रति क्षण भोगता रहता है। इस कारण ये एहसास भोगे क्षण की एक झलक है

अनुभूति का दूसरा पक्ष संवेदना है। अनुमति ओर संवेदना दोनों का ही जन्म ऐन्द्रिय बोध से होता है। साहित्य शास्त्र में अनुमति को भाव कहा जाता है। कभी कभी रास्ते में हम कुछ सोचते जाते है। वे भाव है। कुछ ऐसा घटित हो जाता है जो मन को कुरेदता रहता है वह अनुमति है कुछ परिस्थितियाँ या घटनाएँ ऐसी होती है जो हमें झकझोड़ देती है इस (संवेदनशील) मनः स्थिति को संवेदना का नाम दिया गया है। स्वातन्त्रयोत्तर युग में मानवीय संवेदनात्मक पर जो परिवर्तन हुए उनकी अभिव्यक्ति नयी कहानी में है उस पर मानव जीवन में एक मार्मिकता आ चुकी थी। मार्मिकता का साक्षात्कार ही संवेदना है। संवेदनात्मक धरातल के फलस्वरूप ही नयी कहानी में अछूते विषयों ओर उपेक्षित परिवेश को चित्रित किया गया सामाजिक जीवन की विसंगतियों की जो प्रतिक्रिया नये नये कहानीकारों ने अपनी अपनी कहानियों में व्यक्त की है, उसी के कारण कहानी में एक भिन्न प्रकार की संवेदनशीलता दिखाई पड़ती है। कमलेश्वर कहते है -" नई कहानी ने सारी संगतियों, विसगंतियों जटिलताओं और दबावों को महसूस किया यानी नयी कहानी पहले ओर मूल रूप में जीवनानुभव है, उसके बाद कहानी है। रास्ता जीवन से साहित्य की ओर हुआ। उसने अनुभूति

---

१. नयी कहानी : उपलब्धि और सीमाएं - डॉ. गोरधन सिंह शेखावत

२. नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति - डॉ. धनजय वर्मा

३. आधुनिक कहानियाँ : भगवतस्वरूप मिश्र

की प्रमाणिकता को रचना प्रक्रिया का मूल अशं माना। उसने जीवन को उसकी समग्रता में स्थापित किया। व्यक्ति को उसके यथार्थ परिवेश में अन्वेशित किया।"[१]

नई कहानी की चतुर्थ विशेषता भारतीय अस्मिता की अभिव्यक्ति है। भारतीय अस्मिता की अभिव्यक्ति कहानीकारों ने परम्परागत मूल्यों और मर्यादाओं के साथ साथ बदली हुयी सामाजिक परिस्थितियों के बीच प्रस्तुत की है। भारतीय का अर्थ मूलतः भारतीय जीवन पद्धति से है जिसके अंतर्गत संस्कृति भारतीय धर्म चेतना भारतीय जीवन मूल्य आदि सम्मिलित है। आधुनिकता का जो स्वरूप आज के भारतीय समाज पर अमर बेल की तरह छाया हुआ है वह भारतीय अस्मिता के लिए सबसे अधिक खतरनाक है। कमलेश्वर भी स्वीकार करते है- कि नयी कहानी में भारतीय अस्मिता की अभिव्यक्ति हुयी हैं।"[२]

नई कहानी की पांचवी विशेषता टूटते हुए मानव का चित्रण भी है। नयी कहानी पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर आये संबधों के बदलाव को रूपायित करती है। नयी कहानी "सबंधों के इस बदलाव को समग्रता से देखती है। वापसी (ऊषा प्रियवदा) (बिरादरी बाहर-राजेन्द्र यादव) कहानियों में माता पिता के साथ संतान के बदलने सबंध चित्रित हुए है। नयी कहानी में प्रेम का आदर्शपरक अर्थ नही रहा नयी कहानी की परम्परा में प्रेम और विवाह के अनेक मधुर और कटु संबंधों का चित्रण करने वाली बहुत सी सशक्त कहानियाँ है। प्रेम तथा दाम्पत्य वर्णन के नाम पर मूल्यहीन ऊब उदासी,नपुंसकता तथा साहसहीनता का खुलकर चित्रण नई कहानी में हुआ।[३] प्रमुख कहानियाँ है- निर्मल वर्मा की 'तीसरे गवाह' 'परिन्दे', शानी की 'एक संधि' और राजेन्द्र यादव की 'खेल' फणीश्वर नाथ रेणु की 'टेबुल', मोहन राकेश की 'मिसपाल','एक और जिन्दगी',टूटे हुये स्त्री पुरूषों का चित्रण है।

-:शिल्पगत नयापन :-

साहित्य की सभी विधाओं का अपना अलग शिल्प होता है।शिल्प के अंतर्गत वे ही लक्षण मौजूद रहते है जो किसी साहित्यक विधा की पहचान निर्धारित करते हैं। शिल्प में युगानुरूप परिवर्तन होता रहता हैं।किन्तु उन तमाम परिवर्तनों के बीच एक अखण्ड परम्परा निहित होती है। वास्तव में शिल्प की दृष्टि से 'नयी कहानी' किसी बिन्दु पर केन्द्रित प्रभाव की कहानी नही, अपितु जीवन के एक संश्लिष्ट खण्ड में व्याप्त संवेदना की कहानी है। नयी कहानी शिल्प तथा भाषा के स्तर पर बहुत सम्पन्न तथा समृद्ध हुयी है। नयी कहानी की जीवन्तताका सबसे बड़ा कारण उसकी प्रयोगशीलता भी है। नयी कहानी के सारे प्रयोग जीवन मूल्यों की तलाश के लिए है। सांकेतिकता नई कहानी की एक प्रमुख विशेषता रही है। जैसे शरीर में रक्त अथवा प्राण है वैसे ही नयी कहानी में संकेत का स्थान है। सांकेतिकता नयी कहानियों को शिल्पगत गरिमा प्रदान करती है नयी कहानी प्रतीकों में बोलती है। नेमचन्द्र कहते है -"नयी कहानी शिल्प के प्रयोग से एक दूरी तक विकसित, पुष्ट और समृद्द हुयी है।"[४] नई कहानी में सार्थक बिम्बों का प्रयोग हुआ है। शाशिभूषण शीतांशु कहते है (बिम्ब) से नयी कहानी की भावानुभूति मे सूक्ष्म ऐन्द्रिकता का विस्तार होता हैं, साथ छपे आलोक के यथार्थ का उपस्थापन भी।"[५] नयी कहानियों में फैटेसी (स्वैर कल्पना) का प्रयोग भी है। भाषा के संबंध में हम कह सकते " जिन्दगी को धड़कन का विश्वास के साथ चित्रण नयी कहानी की भाषा के कारण हो सका है। नयी कहानी की भाषा में उस समय की स्थितियों का अंकन है। राजेन्द्र यादव कहते है-''कथा जिन्दगी का सीधा अनुवाद है वहाँ शब्द और उसके पीछे का चित्र अलग खड़ा होकर नही बोलता, वह भाषा में ढ़ल ओर घुलकर सम्पूर्ण स्थिति का चित्र और स्वर बनता है।" [६] नयी कहानी की भाषा रचनात्मक

१.- नयी कहानी की भूमिका - कमलेश्वर पृ.२४
२.- नयी कहानी और मध्य वर्ग - डा. कामेश्वर प्रसाद सिंह
३.- आधुनिक कहानियाँ - भगवत स्वरूप मिश्र
४.- नयी कहानी : सन्दर्भ ओर प्रकृति - पृ.१२२
५.- नयी कहानी के विविध प्रयोग - पृ. १४३
६.- वही

भाषा है।

निष्कर्ष - नयी कहानी का आगमन अचानक नहीं हुआ था वह समय के बदलती परिस्थितियों का परिणाम था। १९४०-५० के बीच की परिस्थितियां इतनी जटिल थी कि उन्होंने मानव मन को एक दिशा दी। १९५०-६० के बीच साहित्यिक परिवेश में सर्जनात्मक चेतना का समावेश हो चुका था। कुछ कवि तक कहानी लेखन में आ गये थे जैसे सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय आदि। नयी कहानी वास्तव में कहानीकार के जीवन का साक्षात्कार थी नयी कहानी की महत्वपूर्ण उपलब्धि परिवेश के प्रति ईमानदार एवं प्रमाणिक अभिव्यक्ति है। मोहन राकेश ने लिखा- "नयी कहानी में आरंभ से ही हर लेखक ने वस्तु की अपेक्षाओं के अनुसार अपनी अलग शिल्प शैली का विकास किया।....... हर कहानीकार आरंभ से ही अपने अलग व्यक्तित्व को लेकर चला और किसी दूसरे या किन्ही दूसरे के वयक्तित्व में उसने अपने को खो जाने नही दिया।"[1] यही कारण कि नयी कहानी में विविधता बहुत है दूसरी बात एक लम्बी पीढ़ी दी है। नयी कहानी एक मौलिक विधा रही है।

नयी कहानी आन्दोलन 'हम दम दोस्तो' की चर्चा में सिमट कर रह गया था। इन तीनों ने हथिया लिया था। ये वाद विवाद,चर्चा संगोष्ठियो में पड़े रहे कहानी साहित्य का केन्द्र बिन्दु बने रहे। मूल रूप से आन्दोलन कमलेश्वर राजेन्द्र यादव व मोहन राकेश की धरोहर बन गया था। नयी कहानी के पास नयी संवेदना और नयी अभिव्यक्ति भंगिमा थी नयी पीढ़ी की कथा चेतना को नयी कहानी का नाम दिया गया। दुष्यन्त कुमार ने अपने लेख में सर्वप्रथम यह नाम दिया था किन्तु आन्दोलन को नयी कहानी का नाम देने का श्रेय डॉ. नामवर सिंह को है। रजनीश कुमार के अनुसार- "१९५५- ५६ की नयी चेतना ने एक ओर कहानी के परम्परागत ढाँचे को अस्वीकार किया तो दूसरी ओर कथ्य के स्तर पर कहानी को सीधे जीवन से जोड़ दिया। ग्राम कथाओं तथा शहरी कथाओं में विभक्त दो धाराएं नयी कहानी की प्रमुख धाराएं थी अनुभूति की प्रमाणिकता, परिवेश के प्रति प्रतिबद्दता,भोगा हुआ यथार्थ नयी कहानी के आधार भूत तत्व थे। नयी कहानी ने भाषा,शिल्प के आधार पर नयी कहानी के बड़े सफल प्रयोग किये।

नयी कहानी के अवसान की वास्तविकता को हम नकार नही सकते नयी कहानी आन्दोलन व्यक्तिवादी आन्दोलन था। बाद में नयी कहानी प्रेम त्रिकोण बन कर रह गयी था। स्त्री पुरूष संबंधो की अभिव्यक्ति राजेन्द्र यादव के शब्दों -" अकहानी के ऐयाश प्रेत कही बाहर से नही, वह तो 'मित्रो परजानी' और 'मिसपाल की जायज संतान थे।"[2] साफ जाहिर हो जाता है! इस प्रवृति के कारण ही अकहानी का जन्म हुआ। वैयक्तिवादी प्रवृत्ति अधिक सक्रिय होती जा रही थी। १९६२ के आसपास नयी कहानी आन्दोलन टूटने बिखरने लगा। हम दम दोस्तों की वृहत्त्रती भी उत्तरदायी है नयी कहानी आन्दोलनों के अवसान के लिए और अकहानी आन्दोलन का उदय हो जाता है। कितनी भी आलोचना कर लें नयी कहानी आन्दोलन हिन्दी कहानी के विकास में अपनी संभावनाओं और उपलब्धियों के कारण याद किया जायेगा।

१.- बकलम खुद - मोहन राकेश पृ.१००

२.- कहानी की वर्णमाला - कपिल तिवारी

द्वितीय चरण

अकहानी - आन्दोलन

सन् १९६० के बाद कहानी हिन्दी साहित्य की केन्द्रीय विद्या के रूप में समादृत हुयी और इस विद्या पर आवश्यक चर्चा परिचर्चा गोष्ठी, भाषण, विवाद,संवाद और परिवाद की बाढ़ सी आ गयी। इस बाढ़ में समय समय पर अनेक नारे और आन्दोलन उछले। नयी कहानी के लेखकों की कतार से छटवें दशक के बाद दूधनाथ सिहं, ज्ञानरंजन गंगाप्रसाद विमल,मनहर चौहान, अवधनारायण सिंह, निर्मय मल्लिक श्याम परमार, महीप सिंह और हिमांशु जोशी आदि ने फूटकर अपने को उनसे भिन्न साठोत्तरी पीढ़ी के कहानीकार के रूप मे विज्ञापित किया।भाषा शिल्प,बोध की दृष्टि से इन लोगो ने नये क्षितिज के अन्वेषण का दावा किया।[१] हिन्दी कहानी पहचान और परख में इन्द्रनाथ मदान ने 'कहानी का कहानी में जो यहाँ तक कह डाला है कि 'कहानी साहित्य के क्षेत्र में जो बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हुयी उसमें हर लहर छोटी है या बड़ी,नदी होने का भय उत्पन्न हो गया।"अर्थात नयी कहानी के बाद अकहानी का अकस्मात आगमन। किसी भी आकृति के पीछे चरित्र की एक सतही पहचान और यथार्थ की एक झलक अवश्य होती हैं। अब यहाँ नई कहानी की जो त्रुटियाँ थी वे नया रूप लेती है और उनका अन्त होता है। पूर्ववर्ती कथाधारा या नयी कहानी की मृत्यु का घोषणा पत्र अकहानी आन्दोलन में जन्म. ले लेता है।

नयी कहानी का फलक पारिवारिक तथा स्त्री पुरूष संबंधों तक सिमटने लगा और इस आन्दोलन को राकेश-यादव -कमलेश्वर की त्रयी ने अपने अधिकार में लिया तो यह आन्दोलन संकीर्णता का शिकार होने लगा। नयी कहानी की संकीर्णता की परिणति अकहानी आन्दोलन में हुयी।

कहानी की संकीर्णता की परिणति अकहानी आन्दोलन में हुयी।१९६० के बाद हम हिन्दी कहानी की विकास यात्रा में एक नया आयाम पाते है।"१९६० के बाद कथा रचना की ऐसी चेतना सामने आयी है जो पूर्ववर्ती रचना पीढ़ी से कई अर्थो में भिन्न है।"[२]

सातवे दशक की हिन्दी कहानी के परिद्रिश्य पर एक प्रकार की धुंध के चकते दिखाई दे हैं उनकी जिम्मेदारी इसी दशक के कहानीकारों के एक ऐसे वर्ग पर है जो किसी भी प्रकार के सामाजिक सन्दर्भ और प्रतिवद्धता से परहेज करता रहा है। एक विशेष प्रकार की राजनैतिक प्रतिवद्धता के विरोध में यह वर्ग या तो किसी प्रकार की जीवन दृष्टि ही विकसित नही कर पाया है या फिर मृत्यु, संत्रास और निर्णयहीनता के आकर्षक नारों के प्रति ही अपने को प्रतिबद्ध मानकर चलता है। ये नारे आधुनिकता का आइना है।

सांतवे दशक में भारत में सभी प्रकार के जोश ठण्डे हो चुके थे। राष्ट्रीय एकता, मानवमूल्य , स्वतन्त्रता की उमंग इन सबकी एक भारतीय की निगाह में कोई कीमत नहीं रह गयी थी। स्वाधीनता से पूर्व स्वतन्त्र भारत में शासन, न्याय, अर्थव्यवस्था, समाज और परिवार के गठन में व अन्य सभी क्षेत्रों में एक विषमता, स्वार्थ परायणता और विसंगतियों का सामना करना पड़ा। इसी नें नये कहानीकार या अकहानीकार (१९६०-७०) के समक्ष एक क्रूर यथार्थ को प्रस्तुत किया। यथार्थ की अभिव्यक्ति अकहानी में हुयी। नये भारत में यह विषमता, यह विसंगति, स्वार्थ परायणता, असुरक्षा, बेकारी, विघटन अकेलापन और तद्जनित संत्रास बढ़ते ही गये। साठोत्तरी कहानी में क्रूर यथार्थ का एहसास अधिक सघन हो गया। स्वतन्त्र भारत में जन्मे कहानीकारों के मन में तो नयी व्यवस्था और मूल्यों की स्थापना की आशा भी थी पर उसके बाद के जन्मे कहानीकारों में तो यह भी नही रही। अतः उनमें आक्रोश और विद्रोह चरमसीमा पर है उस समय ऐसा साहित्य सृजन हो रहा था जिसके कारण पाठक आहत ही नही हो रहे थे वरन् टूट भी रहे थे। कहानीकार तो अपने कटु अनुभव, मध्यवर्ग की दुखित परिस्थितियों, राजनीति के गिरते स्तर का चित्रण कर रहे थे। इस निराशा भरे माहौल में हिन्दी कहानी की जिस नयी धारा का जन्म हुआ उसे समीक्षकों ने 'अकहानी' का नाम दिया।

---

१. हिन्दी कहानी : समीक्षा सन्दर्भ - डॉ. विवेकी रॉय

२. समकालीन कहनी का रचना विद्या - डॉ. गंगा प्रसाद विमल

अकहानी में आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, परिवारिक, वैयक्तिक, आत्म परक, कुण्ठापरक, सैक्सजनित, आस्थाहीन, सन्देह व शंकामूलक अनिश्चितता, मूल्यहीनता, नैतिक धार्मिक मान्यताओं एवं विश्वासों की अर्थहीनता से सामाजिक यथार्थ का सूक्ष्म बोध विकसित हुआ है। इस बोध पर आधुनिकता का प्रतिघात निरन्तर होता रहा है। वस्तुतः अकहानी में सामाजिता का ह्रास विचार और मूल्य के स्तर पर हुआ घोर व्यक्तिवादिता, सैक्स पैटर्न के माध्यम से सामूहिक व्यवस्थाओं का निषेध भी करने लगी। इससे ह्रासोन्मुख प्रतिक्रिया वादी तत्वों को अधिकाधिक प्रश्रय मिलने लगा और कहानी की एक धारा स्वस्थ बिन्दु से शुरू होकर व्यक्ति के यथार्थ में खो गयी। कुछ लोगों ने अकहानी को अभारतीयता और असामाजिकता से जोड़ा बड़े आरोप भी लगाये गये।

डॉ. रामदरश मिश्र ने लिखा है

"अकहानी का 'अ' वस्तु और मूल्य के स्तर पर निषेध का स्वर मुखर करता है वस्तु के स्तर पर उसने सामाजिक सम्बन्धों सम्बन्धित विषय का ग्रहण न कर स्त्री पुरुष के सम्बन्धों या यौन प्रसंगों का ही गृहण कियाहै। मूल्य के स्तर पर उसने न केवल पहले के सारे मूल्यों का निषेध किया बल्कि 'साहित्य में मूल्य का अस्तित्व' है, इस सत्य का निषेध कर दिया।" [१]

नामकरण

सन् १९६० के बाद जो परिवर्तन आये एंव परिवर्तन के जो तेवर थे उनहें देखकर राजेन्द्र यादव ने रेखांकित किया "कुछ वर्षो से कहानी रचना का नया रूप उभर रहा है।"[२] इस नये रूप अथवा १९६० के बाद हिन्दी कहानी के क्षितिज पर 'अकहानी' एक आन्दोलन के रूप में उग आयी जिसके पक्षधरों में कुछ चुनिन्दा कहानीकार ही थे। 'अकहानी' अन्दोलन तत्कालीन जीवन स्थितियों की भयावहता का परिणाम था वहीं दूसरी ओर वह नयी कहानी की जड़े काटने का हथियार भी था।

अकहानी पश्चिमी सभ्यता में जन्म लेने वाली 'एण्टी स्टोरी' का अनुवाद है। पश्चिम का 'एण्टी नॉवेल' बहु चर्चित आन्दोलन है। अतः कुछ आभास होता है कि अकहानी को आन्दोलन बनाने में 'एण्टी नॉवेल' प्रेरक रहा हो। किसी आन्दोलन के पीछे परिस्थितियाँ और शक्तियां दोनों का बड़ा हाथ होता है। एण्टी नॉवेल आन्दोलन से तीन नाम जुड़े थे-रॉब्ब ग्रिए, मैडमसारा, बार्थस। इन तीनों ने इस आन्दोलन को एक जीवन दर्शन का रूप दिया था, एक निश्चित दृष्टिकोण बनाया था। " रॉब्ब ग्रिए के लिए इंसानी हरकतें किसी दूसरी वस्तुओं से भिन्न नही है, वे सिर्फ उतनी ही है जितनी नजर आती है-दूसरी तमाम वस्तुओं के साथ हरकत करती हुयी यांत्रिक और ठोस"।[३] पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से स्पष्ट है कि अकहानी में असम्वद्धता है। वह परम्परागत अव धारणाओं को अस्वीकर करती है।

१.- हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान पृ. १०१

२.- हिन्दी कहानी के आन्दोलन उपलब्धियां और सीमायें पृ. ३९

३.- आज की कहानी : विजय मोहन सिंह पृ. ९९

डॉ. गंगा प्राद विमल लिखते हैं- "अकहानी कहानी की धारणागत प्रतीति के सभी वर्गीकरणों, मूल्यांकन आधारों और पूर्व समीक्षाओं को अस्वीकार करती है।" [१]

"अकहानी सभी प्रकार के मूल्यों को अस्वीकार करती है तथा इसके पीछे अस्तित्ववादीयों का विश्वबोध है. (कामू) का दर्शन है तथा एब्सर्ड भाव बोध भी है। एब्सर्ड अथवा व्यर्थता बोध एक सामंजस्य हीन, अनर्गल एंव रूढ़ अर्थ से मुक्त विचार सरणि है जो समग्र जीवन के अस्वीकार का आन्दोलन कही जा सकती है।" अकहानी का 'अ' उपसर्ग केवल विशेषण नही बल्कि वह एक जीवन मूल्य है। उसमें उस भावबोध द्वारा जीवन की आभासहीनता, अभिव्यक्ति की निरर्थकता, भाषा और भावों की अपूर्णता और व्यक्तित्व की विसंगति को प्रश्रय मिला है।" [२]

अकहानी कहानी पारिवारिक, सामाजिक नैतिक, साहित्यिक मूल्यों के विघटनात्मक स्वरूप की अभिव्यक्ति है। 'अकहानी' में घटना को अस्वीकार करती है। हम कितने ही शब्दों की कतार बना लें जिसे समीक्षकों नें 'अकहानी' का नाम दिया है, परिभाषित नही कर सकते। 'अकहानी' के रूप को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। लोकप्रियता और व्यवसाय की दौड़ में कहानी की प्रयोगशील निरंतरता जो पीछे छूट गयी थी उसे अनुभवों का नया आलोक मिला है। अकहानी में सुख, नैतिकता, सामाजिक सम्पर्क आदि बड़े भूठों के रूप में चित्रित हैं। कहानियों में प्रेम, नीले आकाश तले सुख की छाँव, मनोवेगों की रंगीन रेशेदार बुनाई आदि नयी व पुरानी कहानियों में आदर्श थे। अकहानी ने अपने समय (नयी कहानी) के यथार्थ से पलायन किया। इन्होनें प्रमुखता मानव आवेगों के शोषण को दी। 'तथ्यों की भूख' अर्थहीन हो गयी।"भावुकता की तृप्ति कथा की वर्णनात्मक और विवरणात्मक बुनावट की जगह अनुभवों का संसार तलाश रही थी। अकहानी का आरम्भ इसी अन्वेषण से होता है।" [३]

प्रमुख कहानीकार एंव उनकी कहानियाँ

दूधनाथ सिंह	-	'कवंध' , 'सुखांत' , 'रीछ' ,
ज्ञानरंजन	-	'रक्तपात' , 'पिता' , 'रचनाप्रक्रिया',
प्रयाग शुक्ल	-	आदमी
सुधा अरोड़ा	-	'मरी हुयी चीज़' , बगैर तराशे हुए' , 'निर्मल'
कृष्ण बल्देव वैद	-	'रात'
रमेश वक्षी	-	'पिता दर पिता, इमानदार कहानी'
महेन्द्र मल्ला	-	'एक पति के नोट्स'
रवीन्द्र कालिया	-	'एक डरी हुयी औरत' , 'त्रास'
विजय मोहन सिंह	-	'वे दोनों'
गिरिराज किशोर	-	'फ्राक वाला घोड़ा और निकर वाला साइस'
श्रीकान्त वर्मा	-	'ट्यूमर'
अवधनारायण सिंह	-	'आकाश का दबाव'
विजय मोहन सिंह	-	'कुछ महीने'
कामतानाथ	-	'शापमुक्त'
मधुकर सिंह	-	'तय नहीं' , कब तक'
नीलकान्त	-	'राख दान',
हरिप्रकाश	-	'वापसी'
काशीनाथ सिंह	-	'सुख'
गँगा प्रसाद विमल	-	शीर्षक हीन
हरवंश कश्यप	-	आवाज

१.- समकालीन कहानी का रचना विधान पृ. ६८
२.- हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा : डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित पृ. २०४
३.- हिन्दी कहानी पहचान और परख : इन्द्रनाथमदान (निबंध-९) अकहानी

प्रमुख प्रवृत्तियां-

अकहानी आन्दोलन नयी कहानी के बाद का आन्दोलन था। डॉ. रामदरश मिश्र तो संरचना और चेतना की दृष्टि से इसे नयी कहानी का सहज विकास मानते हैं। "अकहानी अपनी चेतना में बहुत दूर तक मूल्यहीन हो गये समयकालीन मध्यवर्गीय समाज की संक्रांत वास्तविकता से जुड़ी हुयी कहानी है।"[१] नयी कहानी की कमर को अकहानी ने तोड़ा है। प्रथम प्रवृत्ति तो यही है।

द्वितीय प्रवृत्ति है अकहानी नें कहानी में घटना प्रधान के स्थान पर सूक्ष्म मनः स्थितियो के चित्रण पर बल दिया। अकहानी में कहानी को आदर्श के जाल से भी मुक्त किया। मूड को महत्व मिला।

तृतीय विशेषता है कि कहानी ने आक्रामक मुद्रा को स्वाकार किया और कहानी को (लिजलिजी) कोमल भावुकता से अलग किया। अकहानी "जीवन मूल्यों को चुनोती देते हुयी कुछ नयें प्रश्नचिन्ह् उपस्थित करती है यही कारण है कि अकहानी में भावबोध के धरातल पर संत्रास, आत्मपीड़न, ऊब, अकेलापन, अजनबीपन और विसंगतियों का चित्रण होता है।"[२] ज्ञानरंजन की रक्तपात, प्रयाग शुक्ल की 'आदमी', सुधा अरोड़ा की 'मरी हुयी चीज' आदि कहानियों में इनका स्पष्ट चित्रण है।

चतुर्थ प्रवृत्तिं है सामाजिक सरोकारों से कोई वास्ता नही है वह तो सभी प्रकार के मूल्यों को अस्वीकार करती है उसके लिये न तो नैतिक मूल्यों का कोई अर्थ है, न धर्म या ईश्वर का कोई अस्तित्व। सुधा अरोड़ा की कहानी 'बगैर तराशे हुए' का नायक राम और रामायण से ज्यादा महत्वपूर्ण अपनी नायिका की डायरी को मानता है।

पंचम विशेषता है "कई जगह पात्रो के नाम भी नहीं होते अपितु स्थिति का अपूर्त प्रभाव उत्पन्न करने के लिये क, ख, ग को संकेत रूप में पात्र मान लेते हैं।"[३] कुछ पात्र टाइपहीन पात्र है- समाज से कटे-कट कुष्ठित और निराश। पात्र संज्ञा न होकर सर्वनाम बन गये हैं। सुधा अरोड़ा की कहानियों के पात्र आकुल, कमजोर, और छटपटाते हुए हैं। 'निर्मम' कहानी की नायिका उदाहरण स्वरूप है।

षष्ठम विशेषता है- "अकहानी में संबंध भाव और संबंध हीनता की स्थितियां विस्तार से कही गयी है। ये संबंधों के साथ साथ मूल्यों को भी अस्त व्यस्त कर देती हैं।"[४] अकहानी के पात्रों के संबंध टूट चुके हैं। संबंध टूटने की पीड़ा का बड़ा कारुणिक अंकन है। अकहानी में मां और पिता के प्रति तिरस्कार का भाव है। दूधनाथ सिंह् की 'रक्तपात' में मां का जो चित्र है वह चोंकाने वाला है। मां एक निस्संग प्राणी है। गंगा प्रसाद विमल की 'शीर्षक हीन' कहानी में पुत्र का पिता के साथ शराब पीना, तोह्फे के तोर पर एक 'औरत' देने की सोचना विचित्र और धक्का पहुंचाने वाला है।"[५]

अकहानी में पति पत्नी संबंध और स्त्री पुरुष संबंधों में कटुता है, निम्न स्तर की मानसिकता का चित्रण है। नायक गुस्सा अपनी पत्नी पर अच्छे-बुरे दोनों ही ढंग से उतारता है। अकहानी स्त्री सतीत्व व विवाह् जैसे पवित्र बंधन पर विश्वास नही करती। प्रेम का कोई अर्थ नही है। यहाँ संबंध केवल शारीरिक है रवीन्द्र कालिया की 'एक डरी हुई औरत' विजय मोहन सिंह् की 'वे दोनों' में स्त्री पुरुष संबंधों का चित्रण संभोग स्तर का है। ये स्वस्थ पात्रों को कहानियाँ नही है।

सांतवी विशेषता शिल्पगत है। अकहानी शिल्प व भाषा के स्तर पर सभी प्रकार के परम्परागत उपकरणों का निषेध करती है इसकी कारण रहा है- "जब तक हम कार्यकारण संबंधों में विश्वास करते और जीते हैं, अकहानी नही लिखी जा सकती है।"[६] अतः स्पष्ट है कि अकहानी मे कहानी का लालित्य, कला का साज श्रृंगार, भाषा भाव की अर्थवत्ता आदि समाप्तप्राय है। यहाँ कहानीकार शिल्प जैसी बात को नकार चुका

१.- हिन्दी कहानी : एक अंतरंग पहचान - पृ. १०१
२.- नयी कहानी : उपलब्धि ओर सीमायें - डॉ. गोरधन सिंह शेखावत पृ. ८९
३.- नयी कहानी : उपलब्धि और सीमायें - पृ. ९०
४.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा - डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ पृ. ४९
५.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा - पृ. ५०
६.- आज का कहानी : विजयमोहन सिंह पृ. १००

है। भाषा के स्तर पर अकहानी किसी प्रकार की पच्चीकारी को स्वीकार नही करती। सूक्ष्म सांकेतिकता तथा मानसिक स्थितियों का सपाट वर्णन अकहानी की विशेषताएं है। नये प्रतीक, नये बिम्ब, संकेत अभिव्यक्ति का माध्यम रहे हैं। अमूर्तता का आधिक्य रहा है।

"शिल्प के बचकाने दुराग्रह से, कविता के आत्मपरक बिम्बों से, क्षण, चित्रों और अनुभूति के मीठे और रोमानी उपकरणों से भी उसने छुटकारा पाया है- कहानी अपने इसी रूप में व्यापक और विशेष दोनों बनी है।"[१]

मूल्यांकन - अकहानी नें मूल्यों के अस्वीकार के नाम पर 'अराजक गद्य' प्रस्तुत किया है। अकहानी ने साहित्य संसार का भला नहीं किया। अकहानी पाश्चात्य विचारकों के विचारों की कहानी बनकर रह गयी विचित्र स्थिति देखनें को मिली है अकहानी में- "असली सामाजिक हलचलों से कटे हुए पात्र एक सतही बोरियत से पीड़ित रहे। कहानीकारों नें ऊब और कुण्ठा को मनुष्य की नियति मानकर कथा लेखन किया।"[२] यूरोपीय मानसिकता होने के कारण अकहानी भारतीय समाज की उपज नही है।

अकहानी में प्रेम का अर्थ पवित्रता व भावनात्मकता में नहीं वरन् सेक्स की अनिवार्यता है। अकहानी में मूल्यहीनता का वातावरण बना तथा "कहानिकारों का विद्रोह जीभ, जांघ के भूगोल की पैमाइश करता रहता है।"[३] अकहानी का सबसे दुर्बल पक्ष ये था कि उसने अपने आपको जीवन से काट लिया और सोची हुयी स्थितियों पर कृत्रिम कहानियों की रचना होने लगी। इस प्रवृत्ति ने हिन्दी कहानी का अहित किया। अकहानी में अजनबीपन अलगाव, आत्मपीड़न अधिक था।

अकहानी के नाम पर हिन्दी कहानी में आत्मरति संभोगद्रश्यों तथा सेक्स की विचित्रताओं से युक्त जो कहानियां आई वे किसी भी प्रकार से भारतीय जीवन की कहानियाँ नही थी। रति मुद्राओं का ऐसा चित्रण इन कहानियों में चित्रित है जो पाठक के मन में वितृष्णा को जन्म देता है। वैदेशिक धरातल पर सोच की उपज ही अकहानी की जड़ है। अकहानी आन्दोलन हिन्दी कहानी संसार में एक आयातित आन्दोलन था। हिन्दी कहानी महासागर में ये आन्दोलन जिस तेज लहर के साथ आया था वैसे ही जल्दी समा गया। इतनी गरमी के साथ उभरा उतनी ही जल्दी ठण्डा हो गया अकहानी पर टिप्पणी करते हुए कमलेशवर नें लिखा- "सत्तर प्रतिशत कहानियों के नायक आत्महत्या की धमकी देते दिखाई देते हैं। पर एक प्रतिशत भी निर्णय की इस स्वतन्त्रता का उपभोग नही करते। आत्महत्या के लिये गुहार देते हुये ये नायक कुछ भी स्वीकार करने की मुद्रा में नही है। इनके लिये सब रिश्ते बेमानी, सब आत्मीय घटियल सब औरतें मादायें, सब संबंध निरर्थक, सब प्रस्न बेमानी, सब आकांक्षाएं अर्थहीन और सब प्रयोजन व्यर्थ हो गये हैं।"[४]

अकहानी एक सीमित और सोचे हुये ढांचे को लेकर चली तथा अपने तत्कालीन समाज से कटी होने के कारण इसकी यात्रा बिना किसी मंजिल पर पहुचे समाप्त हो गयी। राजेन्द्र अवस्थी नें लिखा है- आन्दोलन स्वस्थ मूल्यों की तलाश के लिये हैं, तो स्वागतेय हैं। यदि वे नितांत वैयक्तिक भूमि पर खड़े हैं तो खोखले होंगे---। हिन्दी कहानी में आंदोलन शुरू से ही होते रहे है- प्रेमचन्द से लेकर अब तक। उनसे कहानी को विकास की दिशा मिली है। जब वे व्यक्तिगत धरा पर उतरे हैं तो उनसे अहित ही हुआ है।"[५] साहित्य संसार को हानि पहुचाने में कोई कसर नही छोड़ी।

१.- आज की कहानी : विजय मोहन सिंह पृ. १०१
२.- रमाकान्त स्रीवास्तव कहानी की वर्णमाला पृ. ३४
३.- हिन्दी कहानी एक अन्तर्यात्रा - वेद प्रकाश अभिताभ पृ. ९४
४.- हिन्दी कहानी के आन्दोलन : उपलब्धियां और सीमायें
५.- हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा - सं. रामदरशमिश्र व नरेन्द्र मोहन

तृतीय चरण

सचेतन कहानी

सन् १९५० एंव १९६० (दो दशक) में हिन्दी साहित्य की दो प्रमुख विधाओं में अस्तित्वादी दर्शन विशेष रुप से आकर्षण का केन्द्र था ये दर्शन साहित्य में रोमानी अंदाज में द्रष्टव्य है। समाज का खण्ड खण्ड में विखण्डन तो नई कहानी और अकहानी में ही हो चुका था। पारिवारिक संबंध टूटते दिखाई दे रहे थे। टूटते रिश्तों की पीड़ा कहानियों में थी। मर्यादायें टूटती नजर आ रही थी जिसके फलस्वरूप कुण्ठा और अनास्था का जन्म स्वाभाविक था। मानव मूल्य विघटित हो गये थे, नये मूल्यों की दिशा अनिश्चित थी। कहानीकार चिंतित थे। आधुनिकता की तलाश थी पर न कोई मंजिल, न कोई आदर्श, न कोई रोशनी। हिन्दी कहानी आन्दोलन के विकास में वस्तु के वैचित्र्य और साधारण रूप का द्वन्द्व स्पष्ट ही दिखाई देता है। द्वन्द्व का संबंध चेतनता से होना अटूट सत्य है।

कहानी संसार में १९६० के बाद चरम संकट उभरकर सामने आया। वास्तव में यह हमारे सामाजिक आधार का संकट था जो चेतना के सभी रूपों में प्रतिबिम्बत होने लगा था। सांस्कृतिक रूपों में भी यह चरम अराजकता के साथ प्रकट होने लगा। मूल प्रवृत्ति नकारात्मक थी। बीट पीढ़ी भूखी पीढ़ी कुछ युवा पीढ़ी जैसे नव साम्राज्यवादी साहित्यक प्रवृत्तियां पृष्ठ भूमि से दिशा निर्देश कर रही थी मूलतः ये अत्यधिक विकृत प्रकृतवाद से ही संबंधित थी। कुछ तो ये साहित्य विरोधी नजर आ रही थी।

मनोगत निराशाएं, शाब्दिक उग्रता, यौनाचार के चित्र और पशुजीवन के आदर्शीकरण नें शीघ्र ही उनकी रचनाओं के प्रति जनमानस में एक गहरी तटस्थता और नफरत पैदा कर दी। ऐसी मानसिकता साहित्य की पतनशीलता का अभिनय कर रही थी भारतीय समाज की चेतना उसे स्वीकार करने की अवस्था में अभी नही पहुँची थी। उसकी समस्याएं अल्प विकसित समाज के संबंधों से जुड़ती जा रही थी।

चेतना के विकृतीकरण का नव सम्राज्यीय अभियान समाप्त नही हुआ उल्टे अब सरकारी माध्यमों नें स्वंय इस अभियान के गहनीकरण में राष्ट्रीय स्तर पर पतनशील मूल्यों के प्रचार प्रसार का कार्यभार सम्हाल लिया। नवजागरण काल की सादगी, सांस्कृतिक बोध, सामाजिक आदर्शो को स्वाधीनता के उत्तरकालीन दशकों में शासक वर्गो द्वारा सायास नष्ट करते हुए देखकर आश्चर्य होता है वैसे समाज कल्याण मानव प्रेम, गरीबी मिटाओ, समाजवाद जैसे शब्दों की घोषणाएं भी उनके पक्ष में कम नहीं थी। १९६४-६५ में सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक आन्दोलन को वर्ग संघर्ष की तीव्रता नें सशक्त वेग प्रदान किया। इससे "विजातीय मूल्यों के प्रति मोहभंग होना शूरू हुआ और सामाजिक परिद्रश्य पुनः दिखाई देने लगा। कुहासा छटा और साहित्य के रूप में प्रस्तुत कचरे का ढेर दिखाई देने लगा।"[१] नयी वास्तविकताओं को उनकी जटिल प्रक्रिया के साथ आत्मसात् करने की क्षमता भी उस समय के कहानीकारों में नहीं थी। "अकहानी के लेखकों का एक जत्था वापस लौटा, और सामाजिक जनजीवन जनवादी मूल्यों की बात करने लगा। किन्तु मुख्य तथा अब वे साहित्य को पार्श्व व्यवसाय के रूप में ही अपनाकर चलने लगे थे।"[२] इनका लेखन प्राविधिक होता गया और उनके आंतरिक अभिप्राय में उनका महत्व गौण होकर रह गया।

नामकरण : चेतना मानव मन से उत्पन्न होती है। चेतना में एक विचार होता है। सचेतन का अर्थ है चेतनता के साथ अर्थात चेतना की सक्यिता। अतः स्पष्ट हो जाता है कि सचेतना सान्दोलन एक वैचारिक आन्दोलन है। विचार के साथ भावना भी जुड़ी रहती है। सचेतन कहानी आन्दोलन एक विचारात्मक भावना प्रधान कहानी आन्दोलन रहा है।

१.- समकालीन साहित्य : नयापरिद्रश्य-सतीश जमाली पृ. ४१
२.- समकालीन साहित्य : नयापरिद्रश्य-सतीश जमाली पृ. ४१

आधार के सचेतन कहानी विशेषांक (नवम्बर १९६४) के "अपने लेख में मैंने लिखा था कि सचेतनता एक दृष्टि है वह दृष्टि जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। अपने संक्रांति काल में चाहे हमें जीवन अच्छा लगे या बुरा लगे। चाहे उसे घूंट-घूट पीकर हमें तृप्ति प्राप्त हो चाहे नीम के रस की तरह हमें उसे आँख मूंदकर निगलना पड़े परन्तु जीवन से हमारी संपृक्ति छूटती नही। कड़वे घूंटों से घबराकर जीवन से भाग खड़े होने वैयुक्तिक रूप से मानव इतिहास में अनेक बार दोहराई गयी है और हर बार किसी न किसी प्रकार का दार्शनिक बौद्धिक आधार देकर उसके औचित्य की स्थापना का प्रयास किया गया है। परन्तु मनुष्य की प्रकृति जीवन से भागने की नही रही है जीवन की ओर भागना ही उसकी नियति है।"[१]

नयी कहानी आन्दोलन के उत्तरार्ध में यह आन्दोलन बहुत थोड़े से कलाकारों तक सीमित रह गया तथा वह धीरे-धीरे सामाजिक समस्याओं से कटने लगा। १९६० तक आते आते नयी कहानी भी रूढ़ हो चली उसके बाद जो कहानी आन्दोलन बड़ी तेजी से उभरे उनमें सचेतन कहानी आन्दोलन ने भी अपना स्थान बनाया। कहानी आन्दोलन में सचेतन कहानी आन्दोलन एक यह महत्वपूर्ण आन्दोलन बना। इसका प्रारम्भ तो १९६४ नवम्बर 'आधार' के 'सचेतन कहानी विशेषांक' के प्रकाशन से माना जाता है। इसका सम्पादन डॉ. महीप सिंह ने किया था। स्वंय महीप जी के शब्दों में - "सचेतन आन्दोलन साहित्यिक संचेतना की सामूहिक प्रतिक्रिया है। इसके सूत्र बम्बई में 'रचना' द्वारा आयोजित गोष्ठियों में है।"[२]

'सचेतन कहानी' आन्दोलन डॉ. महीप सिंह नें प्रस्तावित किया। 'आधार' के 'सचेतन कहानी विशेषांक' में महीप सिंह, राजीव सक्सेना, उपेन्द्रनाथ अश्क, श्याम परमार आदि ने अपने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया। इसी अंक में महीप सिंह आनन्द प्रकाश जैन, कमल जोशी, कुलभूषण, धर्मेन्द्र गुप्त, मधुकर सिंह, मनहर चौहान योगश गुप्त, वेदराही, सुखवीर, हिमाशु जोशी आदि कहानीकारों की कहानियां छपी। बाद में एक 'सचेतना' नाम से पत्रिका का संपादन महीप सिंह ने किया। सुदर्शन नारंग के संपादन में 'श्रेष्ठ सचेतन काहानियां' शीर्षक से एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ। 'केन्द्र' और गल्फ भारती' में सचेतन कहानी के संबंध लेख प्रकाशित हो चुके थे किन्तु औपचारिक प्रारंभ 'आधार' के (नवम्बर १९६४) इस विशेषांक से ही माना जाता रहै।

राजीव सक्सेना के अनुसार - सचेतन शब्द का अर्थ क्या है और इसकी व्याकरणी व्याख्या क्या है इस पर विचार करना व्यर्थ है। आखिर छायावाद का ही क्या अर्थ था? इस शब्द से यथार्थ के प्रति,परिवेश के प्रति और जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टि का बोध होता है। मनुष्य की चेतना का, सक्रियता का दूसरे शब्दों में सचेतन कहानीकार मनुष्य को सर्वांग और सम्पूर्ण रूप से देखना चाहता है - अचेतन और अवचेतन अस्तित्व से लेकर उसके सचेतन रूप तक।"[३] हम सचेतन कहानी का प्रारम्भ करने तथा नाम देने का श्रेय डॉ. महीप सिंह को है। महीप जी के शब्दों में - "सचेतन कहानी की बात ने हिन्दी में कहानी संबंधी चर्चा को व्यक्तिपरकता से मुक्त कर उसे पुनः वैचारिकधरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया।"[४]

१.- हिन्दी कहानी पहचान और परख :- इन्द्रनाथ मदान
(सचेतन कहानी : महीप सिंह)
२.- हिन्दी कहानी के आन्दोलन : उपलब्धि और सीमायें पृ. ४८
३.- आधार (सचेतन कहानी विशेषांक) नवम्बर १९६४ पृ. २२
४.- आधार (सचेतन कहानी विशेषांक) नवम्बर १९६४ पृ. २२

प्रमुख प्रवृत्तियां

सचेतन कहानी आन्दोलन एक आधुनिक दृष्टि का आन्दोलन है नयी कहानी के मैनरिज्म का विरोध करता है। व्यक्ति और समाज के आलेखन पर बल देता है। डॉ. महीप सिंह के शब्दों में "सचेतनता एक दृष्टि है। वह दृष्टि, जिसमें जीवन जिया भी जाता है और जाना भी जाता है। जीवन को कैसे जियें? दृष्टि की सचेतनता शायद इसका उत्तर है। "[१] ये इसकी प्रथम विशेपता है।

इसका अर्थ यह है कि सचेतन कहानी जीवन को जीने और जानने की प्रक्रिया पर बल देती है। ये आन्दोलन जीवन को जोड़कर चलती है और जीवन को जानने की चेष्टा करती है। इस कहानी का केन्द्र मानव जीवन है।

द्वितीय प्रवृत्तिये है - इस आन्दोलन की कहानियां उस स्वस्थ दृष्टि से संपन्न कहानी है जो जीवन से नहीं, जीवन की ओर भागती है। इसमें नैराश्य अनास्था और बौद्धिक तटस्थता का प्रत्याख्यान किया जाता है और मृत्यु भय, व्यर्थता एंव आत्म पराभूत चेतना का परिहार भी।"[२]

तीसरी विशेपता - इस कहानी में आत्म सजगता है और संघर्ष की इच्छा भी। वह व्यक्ति और समाज की टूटती आस्थाओं के बीच नये मूल्यों के निमार्ण का स्वर मुखरित करती है क्योंकि सचेतन एक ऐसी दृष्टि है, जो व्यक्ति को संघर्षो से पलायनवादी न बनाकर सक्रिय और जागरुक बनती है।"[३] सचेतन कहानी की व्याख्या महीप जी ने इस प्रकार स्पष्ट की है।

चतुर्थ विशेपता - यह कहानी सक्रिय भाव बोध की कहानी है, वह जिन्दगी की स्वीकृति की कहानी है। पश्चिम की भोंड़ी नकल और ओढ़ी हुयी मानसिकता से प्रेरित होकर जिन्दगी की व्यर्थता, नितांत अकेलेपन और बनावटी घुटन का प्रदर्शन नहीं करती।"[४] यह आन्दोलन एक जीवन्त आन्दोलन था इसमें विदेशी लहर का वातावरण था। पश्चिमी सभ्यता से ओत प्रोत था।

पांचवी विशेपता है कि यह कहानी नयी कहानी में अन्तर्व्याप्त अकहानी का विरोध करती है। जब सचेतन कहानी आन्दोलन प्रारंभ हुआ तब तक अकहानी स्थापित नहीं हुयी थी किन्तु नयी कहानी के भीतर ही अकहानी के सूत्र गुंथने लगे थे। आगे चलकर इसने एक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। सचेतन कहानी उन सभी बाहरी तत्वों का विरोध करती है जो नयी कहानी में घुंस आये थे, जिसकी परिणति अकहानी में हुयी थी। "सचेतन कहानी, निराशा, घुटन, कुण्ठा, ऊब, अकेलापन, विसंगति, आनास्था आदि का विरोध करती है साथ ही मृत्यु संत्रास आदि को पश्चिम का प्रभाव मानती है।"[५]

१.- आधार (नवम्बर १९६४) पृ. १२
२.- डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित - हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा पृ. २०६
३.- नयी कहानी 'उपलब्धि - और सीमाएं - डॉ. गोरधन सिंह शेखावत पृ. ८५
४.- सचेतन कहानी : रचना और विचार पृ. १२
५.- नयी कहानी : उपलब्धि और सीमायें - डॉ. गोरधन सिंह शेखावत पृ. ८५

महीप जी ने इस आन्दोलन की प्रमुख विशेषताओं के लिये संकेत किया - "घोर व्यक्तिवाद और अस्तित्ववाद की बौद्धिक उद्घोषणाएं समय और सुविधा देखकर की गयी।"[१] कहने का अर्थ यह है कि सचेतन कहानी मानव जीवन की आत्म सजगता, जागरुकता चेतना और संघर्ष शीलता की कहानी है।

छटवी विशेषता कथ्य के संबंध में है। कथ्य के स्तर पर यह कहानी बहुआयामी है। वह भारतीय जीवन में मूल्यों के विघटन को नगरीय तथा महानगरीय परिवेश में देखती है, किन्तु "विघटन को लेकर उसमें न गुस्से का भाव है, न आश्चर्य का।"[२] वह इस विघटन को सहजता से स्वीकार कर सहजता से अभिव्यक्त करती है। 'कॉस सुबहों के बाद' (मनहर चौहान) में महानगरीय जीवन में मित्रों पिता पुत्र मां बेटे के संबंध में आये बदलाव को पूरी निस्संगता और तटस्थता से उभारा गया है । इस कहानी में न किसी प्रकार का महानगरीय आतंक है न भय का न कुण्ठा का सचेतन कहानी भी स्त्री पुरुष काम संबंधों को महत्व देती है। राम कुमार भ्रमर की कहानियाँ काम संबधों में द्वन्द्व उतपन्न करने वाली असंगत स्थितियों की टकराहट को उभारती है। कहानीकार इन संबंधों की तह तक पहुचने का बराबर प्रयास करता रहा है।

अमिताभ जी ने लिखा- "सचेतन कहानी सेक्स की अंधी गली में गुम नही हुयी। न सचेतन कहानी की नारी जीवन संघर्ष से विरत होती है। उसमें नारी को उसके आधुनिक रूप में फालतू वर्जनाओं और रोज की समस्याओंसे जूझते हुये दिखाया गया है। उसका विद्रोह अपनी अस्मिता खोजन के लिये है, न कि कपड़े उतारकर फेंकने के लिए।"[३]

सातवी विशेषता शिल्पगत है। सचेतन कहानी आन्दोलन विचार प्रधान आन्दोलन रहा है। इसने मानवीय संवेदनशीलता की ऊँचाइयों का स्पर्श किया है। इसमें शिल्पगत प्रयोग है। नयी कहानी तथा अकहानि में शिल्प के प्रति बहुत आग्रह रहा इसलिए वहाँ कई बार कहानी सम्प्रेषण के स्तर पर अग्राह्य बन गयी। यह कहानी शिल्प के बोझ के नीचे दब नहीं जाती किन्तु वह शिल्प के प्रति उदासीन भी नहीं है क्योंकि "कोरे वैचारिक आन्दोलन के शिल्पहीनता की ओर भटक जाने का खतरा बना रहता है इसलिये यह आवश्यक है कि सचेतन कहानी शिल्प के स्तर पर भी उतनी ही जागरुक रहे। इसका खास गुण है सहजता को प्रश्रय देती है। उपेन्द्रनाथ अश्क के अनुसार - "दृष्टि अधिकाश सचेतन कथाकारों की सचेतन, स्वस्थ और समाजपरक है और शिल्प अधिकांश का सीधा सरल और कहानी का आकार छोटा है।"[४]

महीप जी ने भी स्वीकार किया- "सचेतन कहानी के बारे में हमने बार-बार यह बात कही है कि शिल्प के नये से नये प्रयोगो के बावजूद कहानी में कथातत्व होना चाहिये और उसकी मूल-मूल संवेदना को जागरुक पाठक तक सम्प्रेषित होना चाहिये। सचेतन आन्दोलन मूलतः विचार प्रधान आन्दोलन है, शिल्पप्रधान नही क्योकि शिल्प विचार के पीछे चलता है, विचार के आगे नही। जब कथ्य और शिल्प मिलकर एक हो जाते है तब शिल्प को कथ्य से अलगाना आसान नही होता, एक बात है विरोध भी नहीं रहता दोनो में।"[५]

१.- सचेतन कहानी : रचना और विचार पृ. १४

२.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ पृ. ५६

३.- हिन्दी कहानी : एक अर्न्तयात्रा - डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ पृ. ५६

४.- आधार - सचेतन कहानी।

५.- इतवारी पत्रिका - ५ अगस्त १९८४ पृ. ११

सचेतन कहानी आन्दोलन की प्रमुख कहानियां एवं कहानीकार

१. मनहर चौहान - 'बीस सुबहो के बाद'
२. महीप सिंह - 'और कुछ भी नही' , 'धुंधले कोहरे'
३. वेद राही - 'दरार'
४. सुखवीर - 'दीवारे और उड़ने वाला घोड़ा'
५. राजकुमार भ्रमर - 'लौ पर रखी हुयी हथेली'
६. सुरेन्द्र अरोड़ा - 'बर्फ'

मूल्यांकन - ये आन्दोलन एक सकारात्मक, विचार प्रधान, स्वस्थ दृष्टि लेकर कहानी संसार में उभरा था। इस आन्दोलन नें नयी कहानी तथा अकहानी की मानव विरोधी एंव रुग्ण मानसिकता वाली प्रवृत्तियों का विरोध किया। सचेतन कहानी अन्दोलन नें पश्चिम की नकल काविरोध किया। इस आन्दोलन की जड़े भारतीय जीवन में थी। इसने जीवन की ओर विमुख होती जा रही कहानीधारा को पुनः जीवन की ओर मोड़ा। सचेतन कहानी का महत्व यही है कि उसनें सातवें दशक में कहानी की जड़ता को तोड़ा और उसे फिर जीवन की ओर मुड़ने के लिये प्रेरित किया।"[१]

इस आन्दोलन का अंत बहुत ही जल्दी हुआ महीप सिंह ने लिखा - "साहित्यिक आन्दोलन कोई राजनैतिक आन्दोलन नही होता जिसे रजत जयन्ती या स्वर्ण जयन्ती मनाना चाहिये। इन आन्दोलनों के कुछ मूल्य होते हैं कि वे अपने समय में चली आ रही साहित्यिक प्रवृत्तियो को गति दे सकें। और उस गति की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित कर सकें। साहित्य की जड़ता को तोड़ना इन आन्दोलनों का काम है।"[२]

सचेतन कहानी आन्दोलन बहुत ही जल्दी टूटने की स्थिति में आ गया। टूट टूट कर बिखरने लगा। जो प्रारंभ में साथ में थे वे अकहानी की ओर झुक गये। (जगदीश चतुर्वेदी) कुछ नें विरोध करना प्रारंभ किया उनमें धर्मेन्द्र गुप्त सर्व प्रथम है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने कहा - "सचेतन कहानीकार कोई ऐसी बात नहीं कहते जो पहले न कही गयी हो अधिकाशतः वे यही बाते कहते हैं जो प्रेमचन्द्र के समय से ही कही जाती रही है जिन पर प्रगतिशीलों नें भी काफी जोर दिया है।"[३]

१.- इतवारी पत्रिका - ५ अगस्त १९८४ पृ. ११
२.- इतवारी पत्रिका - ५ अगस्त १९८४ पृ. ११
३.- आधार सचेतन कहानी विशेषांक - पृ. २९
१.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ

सचेतन कहानी में सर्वाधिक खटकने वाली बात तो यह है कि वह कथ्य के स्तर पर तो स्वयं को प्रेमचन्द की जमीन से जोड़ती है, पर शिल्प के स्तर पर नयी कहानी के निकट है। सचेतन कहानी के अन्तर्गत जो कहानियां लिखी गयी वे स्पष्ट रूप से अपने आपको नयी कहानी से अलग नही कर पायी है। 'नयी कहानी और अकहानी की तरह सचेतन कहानी की भावभूमि भी 'मध्यवर्गीय जीवन के मध्यांतर और मूल्य संक्रमण' तक सीमित रही। आम आदमी के संघर्षरत और मुक्तिकामी मूल्यों से इसका सरोकार कम रहा।''[1]

अन्ततः स्पष्ट हो जाता है कि यह आन्दोलन नयी कहानी की प्रतिक्रिया से उत्पन्न हुआ था, अतः यह महीप सिंह के तथा उनके दल के कहानीकारों के आस-पास ही सिमट कर रह गया। इस सम्पूर्ण हिन्दी कथा संसार का समर्थन नही मिला इसका मूल कारण रहा कि इसकी स्थापना में कोई नवीनता नही थी। जीवन को जिये और जाने बिना किसी प्रकार के उच्च कोटि के साहित्य की रचना संभव नही थी। सचेतन कहानी का सूत्र तो प्राचीन था। अन्ततोगत्वा तो निष्कर्ष यही है कि सचेतन कहानी आन्दोलन नयी कहानी आन्दोलन से अलग अपनी विशिष्ट पहचान नही बना पाया।

१.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा - डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

चतुर्थ चरण

सहज कहानी

राजकमल दिल्ली से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'नयी कहानियां' लगभग एक दशक तक नयी कहानी आन्दोलन की विवेचना का एक सशक्त मंच बनी रही। इसका कारण यह रहा है कि इसके संपादक क्रमशः भैरवप्रसाद गुप्त, कमलेश्वर तथा भीष्म साहनी रहे। ये तीनों ही नयी कहानी आन्दोलन से किसी न किसीरूप में जुड़े हुये थे, किन्तु १९६८ में 'नयी कहानियां' पत्रिका का स्वभित्व श्री अमृत राय ने खरीद लिया तथा वे अपने संपादन से इसे इलाहाबाद से प्रकाशित करने लगे। इस पत्रिका के संपादकीय 'सहज कहानी' शीर्षक के अन्तर्गत वे लिखने लगे। उस समय ये लगा कि वे सहज कहानी नाम से एक नये आन्दोलन का सूत्रपात करने जा रहे हैं। अमृत राय ने अपने संपादकीय में कहा - 'नयी कहानी के आन्दोलन की उपलब्धियों का लेखा जोखा इतिहास अपने समय से निश्चित करेगा, लेकिन इतना तो साफ है कि नयी कहानी की खोज में सहज कहानी खो गयी।"[१] यह संयोग की बात है कि सहज कहानी का आन्दोलन इस पत्रिका के संपादकीयों तथा अमृत राय तक ही सामित रहा सुधा अरोड़ा ने भी, जो अकहानी की समर्थिका भी थी अवश्य इसे अपना समर्थन दिया।

हिन्दी कहानी क्षितिज पर इतने आन्दोलन उभरे और बिखरे, कुछ समय के लिए हर आन्दोलन चर्चा का केन्द्र बना किन्तु ऐसा लगता है कि इन आन्दोलनों के बिखरने से कहानीकार आन्दोलनों के प्रति अधिक उत्साही नही रह गये हैं। अन्ततः कहानीकार का रचनात्मक लेखन ही इतिहास का भाग बनता है उसी का मूल्यांकन होता है। आन्दोलन तो क्षणजीवी होते हैं।

<u>प्रमुख विशेषताएं-</u>

अमृत राय नयी कहानी के खारिज करते हुये सहज कहानी की स्थापना करने के लिये इस मैदान में आए सहज कहनी की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उन्होने कहा कि 'सहज कहानी' को ठीक ढ़ग से न पकड़ पाने के कारण नयी कहानी की परिणति 'अकहानी' , 'सचेतन कहानी' तथा 'साठोत्तरी कहानी' जैसे आन्दोलनों के रूप में रही तथा यह स्थिति कहानी के लिए दुर्भाग्यपूर्ण रही। उनकी दृष्टि में - "सहज कहानी से हमारा अभिप्राय किसी खास लेखन शैली की कहानी से नहीं न हितोपदेश की सांसारिक उपदेश मूलक कहानियों से और न जातक की आध्यात्मिक बोध मूलक कहानियों से और न उन कहानियों से जिनमें विशुद्ध कल्पना का रस है जैसे किस्सा अलिफ लैला, ऐंडरसन की परी कहानियां, मिथक और पुराणकथाएं, जिनका रस उनके कल्पना विहार में हैं और जो कदाचित् हितोपदेश या ईसप की कहानियों के समान नैतिक उपदेश के लिये नही लिखी या कही गयी जिसका अर्थ यह न लिया जाय कि हम उन्हें नैतिकता बोध बिल्कुल दूसरे ही स्तर और प्रकार का है, स्थूल नैतिक उपदेश के बदले एक सूक्ष्म ऋजु नैतिक दृष्टि जो कहानी कहने की अपनी मूल प्रतिज्ञा से अनुशासित है।"[२]

सहज कहानी के बारे में अमृत राय का यह वक्तव्य अत्यंत विचारात्मक है। यह व्याख्या बड़ी विचित्र लगती है। इन्होने अपने संपादकीयों में इस कहानी आन्दोलन की विशेषताओं को निम्नवत रूप दिया है। निष्कर्ष रूप में तीन प्रवृत्तियां ही दिखाई दी हैं। सहज कहानी आन्दोलन ने कोई विस्तृत रूप में कहानियां नही लिखी न ही कोई विकल्प रूप धारण किया यह तो क्षण जीवी था।

१.- हिन्दी कहानी : पहचान और परख
(सहज कहानी : अमृत राय)

२.- हिन्दी कहानी : पहचान और परख - इन्द्रनाथ मदान
(सहज कहानी - अमृत राय)

प्रथम प्रवृत्ति ये है कि सहज कहानी के कथाकार की कथा दृष्टि में मूल रस होता है बिना कथारस के सफल कहानी की रचना संभव नही है। द्वितीय विशेषता है कि सहज कहानी के लेखक का विषय ही उसकी रचना का सहज होता है। लेखक के लिये सहज योग की तरह सहज स्थिति भी आवश्यक है। रचना की प्रेरणा उसे सहज स्थिति से ही मिलती है। इस सहज स्थिति में स्वानुभूति और परानुभूति में कोई विरोध नही होता-पिण्ड में ब्रह्माण्ड को देखना भी यही चीज है यही सहज स्थिति है पर इस सहज को पाना सरल नही है।"[१] इसे पाने के लिए अमृत राय परम्परा संबद्ध सहज भूमि सहज संवेदना की भूमि आवश्यक मानते हैं।

तृतीय प्रवृत्ति यह है कि सरसता ही सहज कहनी का एक मात्र गुण नही प्रत्युत उसे अच्छ प्राणवान और सशक्त होना भी आवश्यक है उनकी दृष्टि में सहज कहनी वह है जो हँसा सके, रुला सके। "[२] यह हृदय ग्राहिता की सहज कसौटी है तथा सहज कहानी अनुकरण मूलक नये मन की समर्थिका है।

अमृत राय सहज कहानी को परिभाषित करना कठिन मानते हैं तथापि कहते है - "सहज वह है जिसमें आडम्बर नही हैं, बनावट नही है, ओढ़ी हुयी पद्धति या मुद्रा कोष नही है, आइने के सामने खड़े होकर आत्मरति के भाव से अपने अंग प्रत्यंग को अलग-अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नही है। "[३] सहज कहानी की चर्चा से अमृत राय का मतलब है - "हर आदमी मौलिक है, विशिष्ट है उसने जो कुछ देखा है या सहा है और जिस रूप में देखा है उसका अपना विशिष्ट मूलय है। जिस भी रचना पर उसकी अपनी अनुभूति और संवेदना का स्वाक्षर है वह सहित्य के लिए मूल्यवान है अगर उसे अपने अनुरूप शिल्प भी मिल सका है। यह कोई नही कहता कि संवेदना की सच्चाई मात्र से महत् साहित्य की सृष्टि हो जाती है उसके लिए संवेदन की सच्चाई जरुरी शर्त है। यह ठीक है कि बार-बार के सजेसन और ऑटो सजेशन से रचनाकार अपने भीतर एक प्रकार की छद्मभ चेतना की भी सृष्टि कर सकता है। जिसको ही वह सच समझनें लगता है। "[४]

सहज कहानी किसी भी सांचे का निषेध करती है और लेखकीय कहानी रचना को पाठकीय चेतना से जोड़ती है। "इसके प्रतिकूल नयी हवा को अपने फेंफड़े में बलात् भर लेना, नये भाव को पूरी तरह अपना लेना, सार्त्र, कामू, काफ्का, कीर्केगार्द को पढ़ नये शिल्प को करायन्त कर लेने की चिंता प्रेरणा ही असहज लेखन की प्रेरणा है।"[५]

१.- हिन्दी कहानी के आन्दोलन : 'उपलब्धि ओर सीमाएं' - रजनीश कुमार
२- हिन्दी कहानी पहचान : और परख , इन्द्रनाथ मदान पृ. ८१
३.- नयी कहानी के विविध प्रयोग - पांडेय शशि भूषण शीतांशु पृ. ३८
४.- हिन्दी कहानी के आन्दोलन : 'उपलब्धियां और सीमाएं' पृ. ५६
५- हिन्दी कहान के आन्दोलन : 'उपलब्धिया और सीमाएं' पृ. ५६

मूल्यांकन

साफ जाहिर होता है कि अमृत राय ने नयी कहानी की जगह एक नया नाम चलाने के लिए ही यह द्रविण प्राणायाम किया। वस्तुतः किसी भी अच्छी कहानी के गुण सहज कहानी में होते हैं। साथ में यह ध्यान देने की बात है जो विशेषताएं अमृत राय नें सहज कहानी की बताई उनकी चर्चा नयी कहानी के सन्दर्भ में पहले कर दी गयी थी। साथ ही अंधानुकरण से लिखी गयी कोई भी रचना प्रामाणिक तथा सशक्त नही बन सकती। अमृत राय नें सहज कहानी का यह शास्त्र तो तैयार कर दिया पर उस शास्त्र के अनुरूप कहानियां प्रस्तुत नही की।

सहज कहानी आन्दोलन अमृत राय द्वारा 'नयी कहानियां' का संपादन भार सम्हालने के साथ प्रारंभ हुआ और पत्रिका के प्रकाशन के बंद होने के साथ ही समाप्त हो गया। ये आन्दोलन संपादकीय टिप्पणियों तक ही सीमित रहा। सहज कथ्य को सहज अभिव्यक्ति पर बल दिया गया। उन्होनें सहज कहानी का शास्त्र तो प्रस्तुत किया पर उनके विचार केवल वैचारिक स्तर पर ही रह गये। कहानी के रचनात्मक स्तर पर उनके विचारों को समर्थन नही मिला।

निष्कर्षतः हिन्दी कहानी की विकास यात्रा में १९६० के पश्चात् तीन आन्दोलन बड़ी तेजी से उभरे जो कहानी जगत में प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। १९६० तक आते-आते ये आन्दोलन अवसान को प्राप्त हो गये थे। नये आन्दोलन उदित होने की स्थिति में आ खड़े हुए।

पंचम चरण

समांतर कहानी

१९७० तक अकहानी, सचेतन, सहज कहनी के आन्दोलन अंतिम सांस ले रहे थे। सहज कहानी आन्दोलन का फलक तो वैसे भी बहुत सीमित था। हिन्दी कहानी की विकास यात्रा में यह आन्दोलन कोई प्रभाव नहीं छोड़ पाया। हिन्दी कहानी में फिर एक ठहराव की स्थिति आ गयी थी तथा इस स्थिति से तत्कालीन कहानीकार अच्छी तरह परिचित था। 'सारिका' पत्रिका में इन आन्दोलनों पर तीखे प्रहार किये गये जिसके संपादक नयी कहानी के सशक्त स्तम्भ कमलेश्वर थे। नामकरण - १९६२ के आस-पास कमलेश्वर ने 'सारिका' में अपना संपादकीय 'मेरा पन्ना' स्तंभ में एक नये कहानी आन्दोलन का सूत्रपात किया। जिसे उन्होने 'समान्तर कहानी' का नाम दिया। संपादकीय टिप्पणियों के साथ ही समांतर कहानियों पर सारिका में ही इब्राहीम शरीफ, कामतानाथ, ललित मोहन अवस्थी एंव डॉ. राम वचन राय के लेख छपे। कमलेश्वर के नेतृत्व में 'समांतर कहानी' पर गोष्ठियों को आयोजित किया गया। 'सारिका' पूरी तरह 'समांतर कहानी' के लिये समर्पित कर दी गयी। कमलेश्वर को कामतानाथ, यात्री, इब्राहीम शरीफ, जितेन्द्र भाटिया, राम अरोड़ा, हिमांशु जोशी, दिनेश पालीवाल, मिथिलेश्वर आदि युवा कहानिकारों का समर्थन प्राप्त हुआ।

सन् १९७२ में प्रकाशित 'समांतर-१' सग्रह समांतर कहानी आन्दोलन की घोषणा पत्र है। "मोटे तौर पर 'समान्तर-१' के प्रकाशित होने से नयी कथा संवेदना का प्रारंभ माना जा सकता है। [१] 'समांतर-१' संग्रह की भूमिका में लेखक की प्रतिबद्धता नयी रचना शीलता आदि समांतर कहानी के विविध पक्षों पर हुयी गोष्ठी में चर्चा को रिपोर्ताज के रूप में प्रस्तुत किया गया है। समांतर-१ में अरविन्द, आशीष सिन्हा, इब्राहीम शरीफ, कमलेश्वर, कामता परसाद, जितेन्द्र भाटिया, दामोदर सदन, निरुपमा सेवती, मधुकर सिंह , मृदुला गर्ग, राम अरोड़ा, शीला रोहेकर, विभु कुमार, श्रवण कुमार, सतीश जमाली, सुदीप, सनत कुमार, रमेश उपाध्याय की कहानियां है। समांतर गोष्ठी का आयोजन हुआ। "यह गोष्ठी मात्र लेखकों तक सीमित नहीं रही अपितु आज के सजग, सचेष्ठ पाठकों को भी उसमें भाग लेने का भी अवसर दिया गया जिससे कि लेखक और पाठक के बीच जो सोच और अमल की स्थिति है उसे आमने सामने बैठकर समझा जा सके।"[२]

यह आन्दोलन कमलेश्वर की महत्वकांक्षा का परिणाम था। वे हिन्दी कहानी विकास में अलग स्थिति बनाना चाहते थे। सारिका, नवम्बर १९७४ में प्रकाशित कामतानाथ का 'समांतर कथायात्रा' शीर्षक लेख उक्त तथ्य की पुष्टि भी कर देता है। कामतानाथ समांतर आन्दोलन के एक स्तंभ तथा कमलेश्वर के अनुयायी थे। नयी कहानी के बाद अकहानी की दुर्बलताओं पर प्रहार किया गया। कहानी की स्वस्थ परम्परा को कमलेश्वर से एंव समांतर कहानी से जोड़ने का सफल प्रयास कामतानाथ नें ही किया। उद्‌भव एवं नामकरण के संबंध में तथा इस आन्दोलन की प्रगति में, समांतर कहानी आन्दोलन के मूल में कमलेश्वर की अपने को पुनःस्थापित करने की महत्वाकांक्षा की भी अपनी भूमिका है।

१.- समकालीन कहानी : समांतर कहानी - डॉ0 विनय पृ0 ६३
२.- आज की कहानी - डॉ0 मैरूलाल गर्ग पृ0 ५९

प्रमुख कहानीकार एवं प्रतिनिधि कहानियां

१. कमलेश्वर - 'इतने अच्छे दिन' , 'जोखिम' , 'बयान'

२. ओम गोस्वामी - 'दर्द की मछली'

३. अरुण मिश्र - 'अंधे कुएं का रास्ता'

४. जवाहर सिंह - 'चौथा आश्चर्य' , 'मोहभंग'

५. बसंत कुमार - 'सुरंग में पहली सुबह'

६. दिनेश पालीवाल - 'एक चालू आदमी' , 'दुश्मन'

७. कान्ह·जी तोमर - 'आन्दोलन'

८. आशीष सिन्हा - 'आदमी'

९. जितेन्द्र भाटिया - 'शहादतनामा'

१०. राम अरोड़ा - 'विदा अलविदा'

११. स्वदेश दीपक - 'तमाशा'

१२. आलमशाह खान - 'परायी प्यास का सफर'

१३. सुदीप - 'अंतहीन दो'

१४. केशवदुबे - 'श्रमदान'

१५. मधुकर सिंह - 'हरिजन सेवक' , 'लहु पुकारे आदमी' ,'भाई का जख्म'

१६. कामतानाथ - 'तीसरी आँख' , 'अंत्येष्टि' , 'तीसरी सांस'

१७. से. रा. यात्री - 'गौरव' , 'फिर से इंतजार'

१८. ईश्वर जन्दर - 'न मरने का दुख'

१९. सूर्यबाला - 'निर्वासित'

२०. प्रभुनाथ सिंह - 'कुछ कदमों का फासला'

२१. सतीश जायसवाल - 'जाने किस बंदरगाह पर'

२२. अकुलेस परिहार - 'छुट्टी का एक दिन'

२३. पाल भसीन - 'सौदा'

२४. इब्राहीम शरीफ - 'मक्का' , 'ज़मीन का आखरी टुकड़ा'

२५. रामस्वरूप अखणी - पहली तारीख

२६. हृदयेश - 'वक्तकटी'

२६. चन्द्रकांत बक्षी - 'दूसरी और पहली'

प्रमुख प्रवृत्तियां-

कमलेश्वर ने समांतर कहानी आन्दोलन योजनाबद्ध तरीके से प्रस्तावित किया। स्वयं उस आन्दोलन के केन्द्र में रहे। चारों ओर युवा कहानीकार का एक वर्ग खड़ा किया। इस आन्दोलन को प्रकाश में लाने में 'सारिका' का योगदान है। "समांतर कहानी आन्दोलन सुनियोजित था, जो कमलेश्वर द्वारा पुनः सुर्खियों में आने, हिन्दी कहानी के केन्द्र में खुद स्थित होने और कुछ मित्रों परिचितों को जनुइन कहानीकारों के रूप में स्थापित करने की नीयत से योजनाबद्ध तरीके से शुरू किया गया है।"[१] इसकी प्रथम प्रवृत्ति तो यह है कि ज़मीन के समांतर सार्थक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करें।" [२] जीवन के समांतर सार्थक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए समांतर कहानी ने आम आदमी के आस-पास उस संघर्ष की जमीन देखी और उसके सहयोगी बनने में वह अपनी दिशा तलाश करने में लग गयी।"[३]

द्वितीय प्रवृत्ति समांतर कहानी का संघर्ष आम आदमी के संघर्ष का सहभागी बनना है। इस दृष्टिकोण से समांतर कहानी के सीधे दो पक्ष होंगे। "एक पक्ष में वह उन सारी शक्तियों के उन्मूलन का स्वर घोष करती है जिनके कारण आज के समाज में आम आदमी ऐसे दमघोंटू वातावरण में रहने को अभिशप्त है जहाँ उसकी कम से कम आवश्यकताओं की पूर्ति का आधार भी लुप्त हो गया है। दूसरे पक्ष में वह आम आदमी के संघर्ष की अभिव्यक्ति करते हुए उन सारे कमजोर स्थलों को बेरहमी से चीर रही है जिसके कारण आम आदमी के संघर्ष की पकड़ दुर्बल हो रही है। इस प्रक्रिया में समांतर कहानी को उस बिन्दु की तलाश है जहाँ अंतर्वर्ती दुर्बलता का ह्रास हो और प्रतिगामी शक्तियों के ध्वंस के रास्ते खुलें।"[४] स्पष्ट हो जाता है कि समांतर कहानी आम आदमी के संघर्ष को पहचानने का प्रयास करती है।

तृतीय विशेषता है इन कहानियों में मशीन और मजदूर का, किसान और खेत का रिश्ता तय करने पर बल दिया गया है। चतुर्थ प्रवृत्ति है- समांतर कहानी तटस्थता और निरपेक्षता को पीछे छोड़ संबद्धता की बात करती है वह मूल्यों के व्यवहार में लाये जाने के प्रति सजग है। वह उन्हें कार्यान्वित करना चाहती है।

पंचम प्रवृत्ति है ये कहानियाँ जीवन के स्पंदन के साथ चलने वाली रचनात्मक विद्या है। "समांतर कहानी का नायक सामान्य जन लोक जीवन में विविध स्थितियों और समस्याओं से ग्रस्त और त्रस्त है। वह अतिवाम पंथी का क्रांतिकारी मन भी नही और सामंतवादी चेतना में पालित पोषित , अपनी स्थिति को सहज स्वीकारने वाला व्यक्ति भी नही। उसके पास एक ओर आर्थिक वृत में टूटता खुद का व्यक्तित्व

१- समकालीन कहानी - वेद प्रकाश अभिताभ दिनेश पालीवाल पृ० २७
२.- समकालीन कहानी : समांतर कहानी - डॉ. विनय पृ. ७0
३.- समकालीन कहानी : समांतर कहानी - डॉ. विनय पृ.. ६३
४.- समकालीन कहानी : समांतर कहानी - डॉ. विनय पृ. ६४

है दूसरी ओर समय की सापेक्षता में जन्म लेने वाली द्विविधा रहित अपराजेयता भी।"[1]

छठी प्रवृत्ति जाति और वर्ण, उच्च व निम्न वर्ग तथा संविधान में समानता के अधिकारों का चित्रण है।

सातवीं विशेषता युवा पीढ़ी की इस सोच को उभारा गया है कि अपनी दुर्गति के लिए पुरानी पीढ़ी भी कम जिम्मेदार नही है।

आठवी विशेषता है समांतर कहानी पति पत्नी संबंधों को चित्रित करती है किन्तु सेक्स का खुला चित्रण उसनें नही है। पति पत्नी के संबंधों में आर्थिक मनोवैज्ञानिक कारणो से जो परिवर्तन आया है उसमें पत्नी अपने अधिकारो के प्रति सजग है तथा वह व्यर्थ ही पति की श्रेष्ठता स्वीकार नही करती। समांतर कहानी के केन्द्र में सामान्य जन है तथापि समांतर कहानी जीवन के विभिन्न रूपों को विश्लेषित करती है। समांतर कहानी के प्रार्दुभाव ने कहानी को आत्म केन्द्रित अनुभववाद से मुक्ति दिलायी है। "इस कथा चेतना ने व्यक्ति अनुसंधान को वैयक्तिकता के घेरे से निकालकर समाज के बीचों बीच प्रतिष्ठित किया।"[2]

मूल्यांकन

"आठवे दशक के अंतिम दौर में हिन्दी कहानी में सृजनावरोध की प्रतीति होने लगी थी। सृजनावरोध की स्थिति को कहानीकार तथा समीक्षक दोनो ही अनुभव कर रहे थे। समांतर कहनी की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि उसने भावुक रुचि में कैद लोगों के सामने अपने आप आदमी की तकलीफों को उजागर करने वाली कहानियां बदलते तेवर"[3] के साथ प्रस्तुत की।

समांतर कहानी इस तथ्य को रेखांकित करती है कि आज की स्थितियों में सभी मानव संबंध पूर्ण रूप से आर्थिक पक्ष से संचालित होते हैं समांतर आन्दोलन में काफी विशेषताओं को प्रश्रय मिला एक वृहत् आन्दोलन बनाने का प्रयास किया गया पर फिर भी इसके माध्यम से यह सिद्ध किया गया कि प्रेमचन्द्र के पश्चात् हिन्दी कहानी का सबसे महत्वपूर्ण कहानीकार कमलेश्वर है। जब कोई आन्दोलन किसी व्यक्ति की जय जयकार के लिये बनता है तो वह दीर्घजीवी नही होता। कुछ कहानियां बनावटी संवेदना की कहानियां है। 'सारिका' साहित्यिक नही एक व्यवसायिक पत्रिका थी। समांतर कहानी का समन्य जन पर बहुत अधिक आग्रह रहा और इस आग्रह का दुष्परिणाम देखने को मिला कि "कहानिकार कहानियों में जबरन खोजा हुआ और गढ़ा हुआ आदमी परोसने लगे है।"[4]

१.- समकालीन कहानी - डॉ. विनय पृ. ६५
२.- समकालीन कहानी - डॉ. विनय पृ.. १०६
३.- समकालीन कहानी : समांतर कहानी - डॉ. विनय पृ. १०६
४.- हिन्दी कहानी : एक अंतर्यात्रा - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ पृ. ६९

समांतर कहानी संबंधी चर्चाओं में कहानी के कथ्य पर बहुत अधिक बल दिया गया, कहीं भी उसके शिल्प या रचाव की चर्चा नहीं हुयी। लगभग यही त्रुटि सचेतन कहानीकारों से भी हुी थी। इस दृष्टि से समांतर कहानी आन्दोलन पंगु ही कहा जायेगा कि कथ्य के प्रति आग्रह ने कहानी के रचना विधान के प्रति कहानीकारों को उदासीन बनाया।

ये कहानी आन्दोलन आठवें दशक का प्रारंभिक आन्दोलन था। इसके प्रस्तावन का माध्यम 'सारिका' थी। व्यापकता प्रदान करने के लिये 'सारिका' के विशेषांक निकले। समांतर कहानी नें आम आदमी के संघर्ष को व्यापक सामाजिक संदर्भो में चित्रित किया। उसके लिए सामान्य जन एक संश्लिष्ट इकाई था जो न जाने कितने मोर्चो पर आज लड़ रहा है। समांतर कहानी सामान्य जन की इस लड़ाई में भागीदार है तथा सामान्य जन को नयी दशा प्रदान करती है।

ऊंचे दावों के बावजूद समांतर कहानी आन्दोलन अनेक संकीर्णताओं से ग्रसित था। निश्चय ही कमलेश्वर की महत्वाकांक्षा इसके मूल में थी। समांतर कहानी में 'आम आदमी' को जिस प्रकार प्रयोग किया उससे सामान्य जन का एक बनावटी चित्र ही उभर सका क्योंकि समांतर कहानीकार संवेदना के स्तर पर आम आदमी और उसके संघर्ष से सीधे जुड़े हुए नहीं थे। समांतर कहानी के नाम पर कमलेश्वर ने अपने चारों ओर कहानीकारों की भीड़ जुटा ली थी। 'सारिका' का संपादन छोड़ने के पश्चात् उनके ही मन में इस आन्दोलन के प्रति उत्साह समाप्त हो गया था। कुछ ऐसे कहानीकार इस आन्दोलन की मंच पर उभरे जिनके इस आन्दोलन के बिखरने के बाद जिनके नाम सुनाई तक न पड़े जैसे - राम अरोड़ा, सुदीप, जितेन्द्र भाटिया आदि। समभावना पूर्ण प्रतिभाओं वाले कहानीकार जनवादी कहानी की ओर उन्मुख हो गये। एक आश्चर्य की बात है कि स्वयं कमलेश्वर लेखन स्तर पर इन दिनों मौन रहे।

षष्ठम् चरण

"जनवादी कहानी"

जनवादी कहानी का उदय सांतवे दशक के अंतिम वर्षो में माना जाता है। उसका वास्तविक उभार आंठवे दशक में देखने को मिलता है।"[१]

जनवादी कहानी आन्दोलन जनवादी आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। दिल्ली विश्वविद्यालय में १९७७ नें जनवादी विचार मंच की स्थापना हुई तथा इसी मंच के तत्वाधान में १४-१५ अक्टूबर १९७८ को दिल्ली में हिन्दी के लेखकों का एक शिविर आयोजित किया गया। इसमें विभिन्न प्रान्तों के लगभग २५० लेखकों नें भाग लिया। शिविर का केन्द्रीय विषय था १९६७ से लेकर १९७७ तक जनवादी साहित्य के दस वर्ष। इस शिविर को हम जनवादी कहानी आन्दोलन की भूमिका मान सकते है।

हिन्दी साहित्य में जनवादी आन्दोलन प्रदतिशील आन्दोलन का ही विकसित रूप है किन्तु जनवाद शब्द उतना नया नही है क्योंकि जनवाद का जन्म सामंतवाद के विरुद्ध संघर्ष करते पूँजीवाद के उदय के साथ हुआ' [२] जबकि "हमारे देश में जनवादी व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप साम्राज्य विरोधी, सामंतवाद विरोधी, स्वतंत्रता संग्राम के नेता पूंजीपति वर्ग द्वारा आम जनता के विभिन्न हिस्सों को साथ लेने के लिए उनके साथ संयुक्त मोर्चा बनाने के दौरान विकसित हुआ।"[३] जनवाद का नेतृत्व सर्वहार के हाथ में होता है। वह समाज में सभी प्रकार के शोषण को समाप्त करने के लिए सामंतवादी, साम्राज्यवादी एवं पूंजीवादी शक्तियों का विरोध करता है। अतः स्पष्ट है कि जनवादी साहित्य सर्वहारा वर्ग का पक्षधर साहित्य है और वह समाज को सभी प्रकार के शोषण अन्याय और उत्पीड़न से मुक्त करने का स्वर मुखरित करता है।

१९८२ में 'जनवादी लेखक संघ' की दिल्ली में स्थापना हुयी। १३ फरवरी १९८२ को दिल्ली में जनवादी संघ का प्रथम राष्ट्रीय अधिवेशन हुआ जिसमें इस संघ का संविधान स्वीकृत हुआ। इस अधिवेशन के पश्चात जनवादी कहानी पर 'कलम' कलकत्ता से, 'कथन' दिल्ली से, 'उत्तरार्ध' मथुरा से, 'कंक' रतलाम से, व्यापक रूप से चर्चा इन पत्रिकाओं में प्रारंभ हो गया। अतः हम जनवादी आन्दोलन का प्रारंभ जनवादी लेखक संघ की स्थापना के साथ ही मान सकते हैं। वास्तव में यह आन्दोलन प्रगतिवाद का एक नया स्वरूप मात्र था जनवादी कहानियों का प्रारंभ तो प्रेमचन्द जी की कहानियों से माना जा सकता है। "स्वतन्त्रता

१.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा - डॉ. वेद प्रकाश अभित्भ पृ. ७०

२.- शिवराम - जनवादी साहित्य के मान दण्ड - अभिव्यक्ति नवम्बर १९८१

३.- शिवराम - जनवादी साहित्य के मान दण्ड - अभिव्यक्ति नवम्बर १९८१

से पूर्व विदेशी शासन के तहत प्रेमचन्द ने कहानी ही नहीं, अपने सम्पूर्ण लेखन में जनवादी मूल्यों की स्थापना की .... 'पूस की रात' व 'कफन' जनवादी कहानी की आधार शिला बनकर उभरी।"[१] निराला व नागार्जुन ने भी प्रेमचन्द जी की जनवादी परमपरा को विकसित किया। जनवादी कहानी तो नई कहानी, अकहानी, सहज कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी आन्दोलन के दौर में समृद्ध होती रही है। इसके बाद जनवादी कहानी को समृद्ध करने में एक पूरी पीढ़ी सक्रिय हो गयी जिनमें कुछ कहानीकार समांतर कहानी से व कुछ पूर्व कहानी आन्दोलन से एवं कुछ नये कहानीकार थे।

आज भी पुराने तथा नयी पीढ़ी के कहानीकार जनवादी कहानी की परम्परा को विकसित कर रहे हैं तथा इस आन्दोलन के पक्षधरों का मानना है कि यही हिन्दी कहानी की प्रतिनिधि विकास धारा है क्योंकि- "समकालीन जनवादी कहानी ऐतिहासिक विकास क्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है उससे आगे और भी संभावनाएं हैं।"[२]

१.- जनवादी चेतना का ऐतिहासिक विकास - अवधेश श्रीवस्तव-लहर सितम्बर-अक्टूबर १९८२ पृ. ८

२.- जनवादी चेतना का ऐतिहासिक विकास - अवधेश श्रीवस्तव-लहर सितम्बर-अक्टूबर १९८२ पृ. १३

प्रमुख कहानियाँ एवं कहानीकार

१. रमेश उपाध्याय	-	देवसिंह कौन, कल्पवृक्ष, राजमार्ग
२. रमेश बत्रा	-	कतल का रात, ज़िन्दगी होने के खिलाफ
३. स्वयं प्रकाश	-	आस्मां कैसे-कैसे, सूरज कब निकलेगा
४. हेतु भारद्वाज	-	सुबह-सुबह, अब यही होगा, विश्वास
५. नमिता सिंह	-	राजा का चौक, काले अंधेरे की मौत, समाधान
६. असगर वजाहत	-	दिल्ली पहुचना है, मछलियां
७. उदय प्रकाश	-	मौसाजी, टेपचू
८. राजेश जोशी	-	सोमवार, आलू की आँख
९. सुरेन्दर मनन	-	षडयन्त्र, खून की लकीर
१०. धीरेन्द्र अ स्थाना	-	लोग हाशिये पर, सूरज लापता है
११. भैरव प्रसाद गुप्त	-	हनुमान, मंगला की टिकुली
१२. विजय कांत	-	पहली हार
१३. आनन्द भारती	-	सनीचरा
१४. नीरज सिंह	-	दूसरा आदमी, चक्रव्यूह टूटेगा
१५. संजीव	-	अपराध
१६. शेखर जोशी	-	कोसी घटवार

आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस कहानी की प्रथम प्रवृत्ति है- "जनवादी कहानी अपनी मूल प्रकृति में सामान्य जन के संघर्ष की पक्षधर है तथा उसका वैचारिक आधार मार्क्सवाद है। समकालीन कहानी जो अपनी प्रकृति ओर वस्तुरूप में जनवादी है उसे अपना रास्ता बनाने में कहानी की इस छद्म प्रगतिशीलता से गंभीर मुटभेड़ करनी पड़ी है।"[१]

जनवादी कहानी के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती थी। "एक ऐसे संसार का निमार्ण भी करना था जो फूहड़ और रोमानी कहानियों की बाढ़ में सार्थक और महत्वपूर्ण रचना का आस्वाद देने की तमीज न भूला है।"[२]

द्वितीय विशेषता है जनवादी कहानी नें इस ऐतिहासिक सत्य को स्वीकार किया कि मध्यवर्गीय का भविष्य सर्वहारा के साथ है. और उसे सर्वहारा ही बल प्रदान कर सकता है. जनवादी कहानी का सर्वाधिक बल-मध्यमवर्ग तथा सर्वहारा द्वारा किये जा रहे शोषण के विरुद्ध संघर्ष पर है। यह संघर्ष बहुआयामी है। मध्यवर्गीय संस्कारों से मोह् भंग सामाजिक विसंगतियों के प्रति तीव्र असंतोष और सर्वहारा के निकट जाने की लालसा।"[३] विश्वास (हेतु भारद्वाज) कहानी में एक मजदूर के अंधविश्वास के टूटने की वेदना के साथ उच्चवर्ग की मानसिकता पर चोट है जनवादी कहानी में संघर्षरत पात्र निर्णय लेने की स्थिति मे हैं तथा वे अपने संघर्ष की दिशा को अच्छी तरह समझते हैं। "जनवादी कथाकार जीवन मूल्यों के संघर्ष में अग्रणी भूमिका निभाने के लिए कृत संकल्प है।"[४]

तृतीय विशेषता है "जनवादी कहानी की मूल प्रवृत्ति श्रमजीवी वर्ग के प्रति सहानुभूति है और यह अन्तर्चेतना के निरंतर विकास का ही परिणाम है। "[५] इसका कारण यह भी है कि जनवादी कहानी मूलतः जनवादी विचारधारा से संबद्ध है।

१.- चारूमित्र , प्रदीप पांडव - जनवादी कहानी : स्वरूप और सीमायें जनवादी साहितय के दस वर्ष पृ. ६७

२.- कपिल तिवारी - कहानी की वर्णमाला सं. राजेन्द्र अरुण पृ. ५0

३.- कपिल तिवारी - कहानी की वर्णमाला सं. राजेन्द्र अरुण पृ. ५0

४.- असगर वजाहत : जनवादी कथा रचना की समस्याएं जनवादी साहित्य के दस वर्ष पृ. ५९

५.- डॉ. ब्रज मोहन शर्मा - आठवें दशक की जनवादी कहानी पृ. ७९

चतुर्थ प्रवृत्ति यह है कि जनवादी कहानी का स्वर "अनुभव और वैचारिकता के स्तर पर अपेक्षाकृत स्पष्ट और सशक्त नजर आता है।"[१] जनवादी कहानीकार विचारधारा को अपने अनुभव का अंग बनाकर कहानी रचना कर रहा है उसके पास सही यर्थाथ दृष्टि है।

पंचम प्रवृत्ति सम्मिलित रूप में है। "व्यक्तिगत स्तर पर ईमानदारी, परहित आदि मूल्यों के लिये संघर्षरत चरित्र भी जनवादी कहानी में उपलब्ध है।"[२] जनवादी कहानियों में व्यक्त वर्ग सघर्ष हिंसक नहीं है लेकिन वह बिल्कुल अहिंसक भी नहीं है। उसमें उग्रता और आक्रामकता भरपूर है लेकिन वह बौद्धिक समझ से अनुशासित है।"[३]

षष्ठम एवं अंतिम विशेषता कथ्य एवं शिल्पगत है। जनवादी कहानी में अपने आस-पास की दुनियां से अपना सच्चा रिश्ता स्थापित किया। इसके लिए उसनें "सबसे पहले जादूगरी भाषा को तिलांजलि दे दी। सीधी क्रूर फूहड़. और बिल्कुल सामान्य भाषा के मुहावरे कहानी में आने लगे।"[४]

जनवादी कहानी की भाषा आम आदमी की बोल चाल की भाषा है क्योंकि - "चारों ओर जो जीवन बिखरा हुआ है वही कहानी का मसाला है। पात्रों की कमी नही है। शिल्प के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है। कथ्य का अपना शिल्प होता है उसी को रखते चले जाओ। किसी प्रकार का चमत्कार दिखाना कहानी का कार्य नही है। "[५] कहने का तात्पर्य यह है कि आम जीवन को उसी भाषा में अभिव्यक्त करने काकार्य जनवादी करती है।

१.- जानकी प्रसाद शर्मा - कहानी की यथार्थवादी परम्परा पृ0 ५१
२.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ पृ0 ७३
३.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ पृ. ७४
४.- असगर वजाहत : जनवादी साहित्य के दस वर्ष पृ. ६२
५.- असगर वजाहत : जनवादी साहित्य के दस वर्ष पृ.६२

जनवादी कहानी के केन्द्र में निम्न मध्यवर्ग का संघर्ष है किन्तु यह संघर्ष बनावटी न होकर वास्तविक जीवन का है। जनवादी कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि वह जीवन के वास्तविक स्पंदन को बहुत सहज ढंग से रूपायित करती है। यह समांतर कहानी की तरह आम आदमी के संघर्ष की कथा गढ़ती नही प्रत्युत समस्याओं को जीवन से उठाती है और उसे जीवन की भाषा में ही अभिव्यक्त कर देती है।

जनवादी कहानी वैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी विचारधारा का पोषण करती है किन्तु वह विचारधारा के रचनाकार के अनुभव का अंग बनाकर अभिव्यक्त करने में विश्वास करती है। वहाँ विचारधारा की अनुभव से अलग सत्ता नहीं है। विचारधारा तो लेखक के अनुभव को और पुष्ट करती है तथा सर्वहारा के संघर्ष में उसका मार्ग प्रशस्त करती है।

जनवादी कहानी किसान मजदूर के संघर्ष की कहानी है। तथा वह इस संघर्ष को बहुत सूक्ष्मता के साथ उभारती है। जनवादी कहानी जीवन के यथार्थ के सन्दर्भ में सत्य की पराजय दिखाकर भी सत्य की ओर आकर्षित करने का कार्य करती है क्योंकि वह दृष्टिकोण और विचारधारा को समग्रता के साथ चित्रत करती है। जनवादी कहानी पाठक को दिशा देती है। उसमें आशा का संचार करती है क्योंकि जनवादी कथाकार को "जीवन की प्रगतिशील शक्तियों का पूरा विश्वास है और लेखक परिवेश तथा पात्रों के प्रति ईमानदारी है।"[१]

जनवादी कहानी ने एक ऐतिहासिक कार्य किया है उसने हिन्दी कहानी की विकास परम्परा को प्रेमचन्द से जोड़ते हुए रेखांकित कर हिन्दी कहानी की सच्ची परम्परा के समृद्ध किया है। यह एक संकीर्ण आन्दोलन न होकर एक व्यापक आन्दोलन है।

अपनी समस्त उपलब्धियों के बावजूद जनवादी कहानी अनेक सीमाओं से ग्रसित है. भैरवप्रसाद गुप्त की 'हनुमान' , रमेश उपाध्याय की "राजमार्ग' कहानियां ऐसे उदाहरण है जिनमें आम आदमी का संघर्ष है पर यह संघर्ष कही भी मन को छूता नही है क्योंकि यह सोचा हुआ है। जनवादी कहानी ने बनावटी कहानियों को भी जन्म दिया है। विचित्र बात तो यह है कि "मजदूरों के जीवन उनकी समस्याओं और परिवेश की जानकारी के बिना कुछ लेखक एक बार फिर स्टीरियों टाइप मजदूरों को कहानी में लाने लगे। किसान जीवन का क, ख, ग, जानने वालों नें भूमिहीन किसानों पर लिखते लिखते कलम तोड़ दी।"[२] इस प्रकार जनवादी कहानी फार्मूलेबाजी का शिकार हो गयी।

१- असगर वजाहत - जनवादी कथा रचना की समस्याएं
जनवादी साहित्य के दस वर्ष पृ. ६४

२.- असगर वजाहत - जनवादी कथा रचना की समस्याएं - जनवादी
साहित्य के दस वर्ष पृ. ६३

जनवादी कहानी ने कथ्य के स्तर पर अपने आपको किसान मजदूरों से जोड़ा, परिणाम स्वरूप जीवन का व्यापक क्षेत्र उससे वंचित रह गया। प्रेम, नारी जीवन, बालक्रीड़ा, प्रकृति आदि का चित्रण जनवादी कहानी में अपेक्षाकृत कम हुआ। 'मंगला की टिकुली' (भैरव प्रसाद गुप्त) इस बात का प्रमाण है कि प्रेम तथा नारी जीवन को लेकर भी उच्चकोटि की जनवादी कहानी लिखी जा सकती है। विचार पर अधिक बल देने के कारण जनवादी कहानी शिल्प के स्तर पर कमजोर प्रमाणित हुयी। मुख्यतः विचारों पर दृष्टि रहने से कुछ जनवादी कहानियां रपटमात्र बन कर रह गयी है। कलात्मकता का उनमें आभाव है।"[१] इन बातों के बावजूद भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जनवादी कहानी नें हिन्दी कहानी की मुख्य धारा के विकास से अपने को जोड़कर एक ऐतिहासिक कार्य किया है।

१.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा - डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ पृ. ७५

सप्तम् चरण

सक्रिय कहानी

पाश्चात्य शब्द 'Active story' के अनुकरण पर राकेश वत्स ने अपने संपादकत्व में 'मंच' पत्रिका का मार्च १९७८ का अंक 'सक्रिय कहानी विशेषांक रूप में प्रकाशित किया गया था। राकेश वत्स के शब्दों में "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है - आदमी की चेतनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समझ एहसास और बोध की कहानी जो आदमी की बेवसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर पहले स्वयं अपने अंदर की कमजोरियों के खिलाफ और फिर बाहर की जन आन्दोलन और बदलाव विरोधी काली शक्तियों के खिलाफ खड़ा होने के लिए तैयार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेती है। जो साहित्य की इस सार्थकता के प्रति समर्पित है कि साहित्य संकल्प और प्रयत्न के बीच की दरार को पाटने का एक जरिया है। " [१] राकेश वत्स ने १९७९ में 'मंच' के दो विशेषांक प्रकाशित किये जिनमें उन्होंने 'सक्रिय कहानी' की अवधारणा स्पष्ट की। बाद में यही सामग्री 'सक्रिय कहानी की भूमिका' शीर्षक से पुस्तक रूप में प्रकाशित की गयी। इस प्रकार सक्रिय कहानी आन्दोलन का प्रारंभ हम १९७९ से मान सकते है।

'सक्रिय कहानी' की पृष्ठभूमि पर चर्चा करते हुए राकेश वत्स ने स्पष्ट किया कि स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् भारतीय जीवन में इतना सा परिवर्तन आया कि सत्ता विदेशियों के हाथों से भारतीयों के हाथों में आ गयी। इससे साधारण व्यक्तियों की स्थिति में कोई अंतर नहीं आया। स्वातन्त्रयोत्तर काल में उभरा जन आक्रोश यही प्रमाणित करता है कि सत्ता एक विशेष वर्ग के हाथ से निकलकर दूसरे विशेष वर्ग के हाथ में आ गयी। "सामान्य जन को अंधकार में रहते रहते अंधेरे से प्यार हो गया गहरी गुफा के स्याह अंधेरे में कहीं उसे थोड़ी सी भी रोशनी दिखाई देती है. तो उस रोशनी को मुक्ति का द्वार समझ वह पूर्ण समर्पण के साथ रोशनी की तरफ भागता है। लेकिन वह मुक्ति का द्वार नहीं होता। एक गुफा से दूसरी गुफा में धकेलने के लिए भ्रम की जलती हुयी मशाल होती है। जन समूह के नयी गुफा में प्रवेश करते ही वह मशाल बुझा दी जाती है। जनता फिर रेंगने लगती है, मुक्ति के लिए हाथ छत की तरह उठाये किसी आलौकिक शक्ति का आह्वान करती हुयी। [२]

१- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : सम्पादक डॉ. राम कुमार गुप्त
(सक्रिय कहानी का भूमिका पृ.-१)

२. सक्रिय कहानी की भूमिका पृष्ठ ११-१२

इस निराशापूर्ण स्थितियों में रचनाकार का दायित्व और बढ़ जाता है क्योंकि उसकी लड़ाई तो इन अमानवीय स्थितियों के विरुद्ध है तथा वह अपनी रचनाओं में आम आदमी के आक्रोश को वहन करता है। यह एक संयोग है कि जिस समय सक्रिय कहानी की अवधारणा जन्म पा रही थी, जनता पार्टी सरकार की सफलता प्रमाणित हो रही थी। इस स्थिति में कहानीकार का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। राकेश वत्स ने निराशा के उस वातावरण में लेखक की सक्रियता अथवा संघर्षशीलता को अत्यंत मूल्यवान माना। "वे रचनाकार में उन मूल्यों की मौजूदगी चाहते हैं जो उसे व्यक्तिगत तौर पर भी जुझारु बना सके।" [१] सक्रिय कहानी में एक नयी बात दिखाई पड़ी कि यह रोमांटिक मानसिकता से नहीं जुड़ी है। राकेश वत्स उस रचनाकार को बेहतर मानते हैं जो व्यावहारिक जोखिम उठा सकता है इसलिए उनका आग्रह है कि कहानी में पात्रों का सक्रिय होना आवश्यक है।

वास्तव में 'सक्रिय कहानी आन्दोलन समांतर कहानी आन्दोलन का एक अन्य रुप है क्योंकि राकेश वत्स समान्तर कहानी आन्दोलन से संबद्ध थे एवं उनके आदर्श कहानीकार भी कमलेश्वर रहे हैं। यह आन्दोलन समांतर एवं जनवादी कहानी आन्दोलन का मिश्रण था।

प्रमुख कहानीकार एवं कहानियाँ

राकेश वत्स	-	*काले पेड़*
रमेश बतरा	-	*जंगली जुगराफिया*
कुमार संभव	-	*आखिरी मोड़*
नवेन्दु	-	*एक न एक दिन*
धीरेन्द्र अस्थाना	-	*लोग हाशिये पर*
विवेक निझावन	-	*पहली जीत*
सुरेन्द्र कुमार	-	*उसका फैसला, उत्मृण*

---

१. हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ पृ. ७६

प्रमुख प्रवृत्तियाँ -

सक्रिय कहानी की प्रमुख प्रवृत्ति है- यह व्यक्तिवादी दानवी प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए मानवीय मूल्यों की स्थापना पर देती है। राकेश वत्स के अनुसार - " सक्रियता प्रवृत्तियों का निषेध करके उनके स्थान पर मूल्यों की स्थापना करती है। व्यक्तिगत स्वार्थो और लाभों को समाजगत लाभों में बदलती है। इसलिए ऊर्जा प्रसूत सक्रियता की दिशा वही हो सकती है जिसकी तरफ गोदान की धनियाँ ने संकेत किये है और निमित्त उस साधारण आदमी के होने चाहिये जो गोदान के होरी की तरह खास आदमी की बदौलत भूखा, नंगा और दोहित होने के बावजूद रुढ़ संस्कारों में जकड़ा होने की वजह से बेवसी और निष्क्रियता की मौत मर रहा है।"[१] दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सक्रिय कहानी शोषण का विरोध करती है और साधारण आदमी के हित के लिए प्रयत्नशील है।" राकेश वत्स स्टांच मार्क्सवादियों - विशेषतः किताबी मार्क्सवादियों के बड़बोलपन को अति मानते हैं। वे साधारण जन के लहू को उन व्यापारियों से बचाने की बात करते हैं जो मार्क्सवाद की किताबपर हाथ रखकर पवित्र होजाने का ढोंग करते हैं।"[२]

द्वितीय प्रवृत्ति यह है कि सक्रिय कहानी वर्तमान आर्थिक सामाजिक शोषन के विरोध को अपनी मूल संवेदना मानती है। डॉ. शंभुनाथ के शब्दों में - " रचनाकार के रूप में सक्रियता का बराबर मतलब है, पहले अपनी सीमाओं को समझना, छपाई तन्त्र की सीमाओं को समझना, अपने शोषण पेशागत वर्गगत चरित्र को समझना, लोकशाही तथा निम्नवर्ग के कृषक, मजदूर, वेकार, भूमिहीन संघर्षशील जनता के पूँजीवादी, फासीवादी सामंती और उपनिवेशवादी शत्रुओं को पहचानना फिर रचना के साथ जनक्षेत्रों में चला जाना।"[३] अर्थात् इस आन्दोलन की दृष्टि वाम पंथी है। " जिस तरह देश में कई कम्युनिस्ट पार्टियाँ है और मार्क्सवाद में गहरी आस्था के बावजूद उनमेंकई मसलों पर असहमति है ठीक उसी तरह ये तीनों (जनवादी, समांतर, सक्रिय) आन्दोलन वामपंथी चिंतन से संचालित होने के बावजूद पार्थक्य रखते हैं।[४]

सक्रिय कहानी में अब नयी कोई विशेषता नजर नही आनी सक्रिय कहानी के केन्द्र में आम आदमी है और ऐसा प्रतीत होता है कि सक्रिय कहानी ने "आम आदमी समांतर कहानी से लिया है।, और उसे सक्रियता और तेजस्विता जनवादी चिंतन से लेकर दी गयी है।[५] सक्रिय कहानी समाज में व्याप्त शोषण के विरुद्ध आवाज उठाती है और शोषण के कारणों को रेखांकित करती है।

---

१. सक्रिय कहानी की भूमिका पृ. १७
२. हिन्दी कहानी एक अर्न्तयात्रा डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ पृ. ७८
३. सक्रिय कहानी की भूमिका पृ. ५४
४. हिन्दी कहानी पर अर्न्तयात्रा डॉ. वेद प्रकाश 'अमिताभ' पृ. ७९
५- हिन्दी कहानी : एक अर्न्तयात्रा पृ. ७९

सक्रिंय कहानी के पात्र एक दिशा में - शोषण से मुक्ति पाने को सक्रिय है। सच्चाई ईमानदारी एवं दूसरो की भलाई के लिए संघर्षरत्त पात्रों को सक्रिय कहानी में पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है। सक्रिय कहानी के पात्र जन समर्थक मूल्यों के पक्षधर हैं।

मूल्यांकन - सक्रिय कहानी आन्दोलन अपने आप में अलग व्यक्तित्व नही बन पाया क्योंकि यह समांतर एवं जनवादी कहानी का मिश्रण प्रतीत होता है। किन्तु - " सक्रिय कहानी सक्रिय पात्रों और विचारों की कहानी है। अतः या तो उसमें पुराने मूल्यों को उखाड़ा जा रहा है या जेनुइन मूल्यों की स्थापना के लिए संघर्ष जारी है।"[१] सक्रिय कहानी का सर्वाधिक बल सक्रियता पर है। यह सक्रियता पात्रों तथा विचारों की सक्रियता है जो समाज के सभी प्रकार के शोषण और उत्पीड़न को समाप्त करना चाहती है। सक्रियता के केन्द्र में वह साधारण जन है जिसका शोषण हो रहा है किन्तु यही साधारण जन शोषक शक्तियों के विरुद्ध सक्रिय होकर इन शक्तियों को समाप्त करने के लिए समर्पित है। सक्रिय कहानी आम आदमी के संगठित होकर जूझने, उसके आत्मविश्वास, समाज में जन समर्थक मूल्यों तथा समानता की स्थापना को रेखांकित करती है।

सक्रिय कहानी आन्दोलन कोई व्यापक आधार नही बना पाया तथा वह राकेश वत्स की 'मंच' पत्रिका तक सीमित रहा। राकेश वत्स ऐसे रचनाकारों को श्रेष्ठ मानते हैं जो व्यावहारिक जोखिम उठा सकते हैं। सक्रिय कहानी ऐसे पात्रों को महत्व देती है जो सक्रिय तथा संघर्षशील हों। इस दृष्टि से फणीश्वर नाथ रेणु, अमरकांत, भीष्म साहनी, मोहन राकेश जैसे कहानी कारों की कहानियाँ तो बहुत हल्की कहानियाँ प्रमाणित हो जायेंगी। इस कारण " डॉ. नवल किशोर जैसे समीक्षक सक्रिय कहानी की अमिधा को संगत नही मानते।" [२] इतनी ही नहीं डॉ. विश्वमरनाथ उपाध्याय तो यह प्रश्न भी उठाते हैं कि कहानी किन मूल्यों के प्रति सक्रिय हो ? मूलय किस तरह के जीवन या समाज के लिये हो ? उनका आरोप है कि " राकेश वत्स की सक्रियता में इस तरह के आधारभूत सवालों के लिए कोई उत्तर नहीं हैं।"[३]

'सक्रिय कहानी' कहानी की कलात्मकता पर कोई बात नही करती। वह मात्र कथ्य पर जोर देकर चुप हो जाती है। अतः उसकी अवधारणा ही अपूर्ण है। 'सक्रिय कहानी' आन्दोलन' आपने आप में बहुत सीमित फलक देकर उभरा तथा व्यापक तथा स्थायी प्रभाव नही छोड़ पाया।

हिन्दी कहानी क्षितिज परइतने आन्दोलन उभरे और बिखरे। कुछ समय के लिए हर आन्दोलन चर्चा का विषय बना, किन्तु ऐसा लगता है कि इन आन्दोलनों के बिखरने से कहानीकार आन्दोलनों के प्रति अधिक उत्साही नहीं रह गये हैं। वैसे भी अंततः कहानीकार का रचनात्मक लेखन ही इतिहास का भाग बनता है उसी का मूल्यांकन होता है। आन्दोलन वो क्षणजीवी होते हैं। वर्तमान में किसी आन्दोलन का जोर शोर नहीं है तथा किसी नये आन्दोलन के उभरने की संभावनाएं भी प्रतीत नहीं होती।

१.- हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा पृ. ८१
२.- सक्रिय कहानी की भूमिका पृ. ८९
३.- सक्रिय कहानी की भूमिका पृ. ३५

द्वितीय अध्याय

समकालीन परिवेश

१. सामाजिक परिवेश

२. आर्थिक परिवेश

३. राजनैतिक परिवेश

४. सांस्कृतिक परिवेश

द्वितीय अध्याय

समकालीन परिवेश

नवें दशक की हिन्दी कहानी को भी हम समकालीन कहानी ही कहते हैं। हर कहानी अपने समय के सत्यान्वेषण की कहानी होती है और रचना के धरातल पर परोसी जाकर पाठकीय संवेदना से समवेत होकर उसे झकझोर देती है। "समकालीन कहानी के संबंध में निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि इन सभी दृष्टियों को ओढ़े होने पर भी उसकी आंतरिक चेतना जीवन यथार्थ के अनेक नये नये आयामों के अंतराल में धंस कर, उसके मूलवर्ती संकेन्द्रित कारकों को पकड़ती है और उनका विश्लेषण ऐतिहासिक बोध को पृष्ठभूमि में रखते हुए वर्तमान से गुजरती हुयी, भावी क्षितिजों को छूने का प्रयास करती है।"[१]

विद्वानों एवं रचनाकारों ने 'समकालीन' शब्द के अलग अर्थ दिये हैं। 'समकालीन' को आंग्ल भाषा में Contemporary कहते है। समकालीन का हिन्दी में अर्थ इस प्रकार है- सम+कालीन अर्थात जो काल या समय के साथ-साथ हो। संक्षिप्त् अर्थ होगा समय के साथ। यह शब्द व्याकरण की दृष्टि से एक विशेषण है। इस शब्द को साहित्य की सभी विधाओं में प्रयुक्त किया गया है। "समकालीनता के भावबोध के अभिभवि के पीछे कुछ प्रमुख बिन्दु रहे हैं। यह भावबोध धीरे-धीरे ही विकसित हुआ है। यह प्रमुख बिन्दु इस काल विशेष की देन थे जिनमें : धर्म, संस्कृति, अर्थतन्त्र का विकृत रूप या आर्थिक असंतुलन, भ्रष्ट व्यवस्था, सत्ता की असफलता और असामाजिक तत्व आदि कुछ ऐसे तीखे अनुभव थे जिसने समकालीन बोध को जन्म दिया। इसी से नयी कहानी के उपरांत इस बोध विशेष की कहानी को समकालीन कहानी कहा गया।"[२] समकालीन को एक मानसिकता भी कह सकते हैं। 'समकालीनता' समय सापेक्ष होते हुये भी व्यापक परिवेश से जुड़ी है। यह इतिहास जन्य परिस्थितियों का परिणाम होती है।

समकालीनता ही वह बिन्दु साहित्य जगत में है, जहाँ से साहित्यिक रचना अग्रसर होती है क्योंकि समकालीनता में परम्परा है, संस्कृति है वह केवल 'आज' नहीं है। 'आज' बीते कल से ही निर्मित होता है। आज और कल का जोड़ ही समकालीन है।"[३]

१.- समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम डॉ. ज्ञानवती अरोरा पृ. २२
२.- वही पृ. - २
३.- वही पृ. - ३

साहित्य वस्तुतः रचयिता के अनुभव का प्रतिफलन है और साहित्यकार किसी न किसी परिवेश में ही सांस लेता है। उसका यह विशेष परिवेश उसे कुछ अनुभव प्रदान करता है। ये अनुभव उसकी रचना की प्रेरणा बनते हैं। इस प्रकार रचना में चारों ओर वातावरण का प्रत्यंकन होना स्वाभाविक हो जाता है। रचनाकार का व्यक्तित्व तो कहीं भी गौण नही होता, परन्तु यह सिद्ध अवश्य हो जाता है कि रचना परिवेश की निर्मिति है। "कृति के पीछे उसके कर्ता का व्यक्तित्व रहता है, लेकिन साथ ही यह भी पूरे आग्रह के साथ कहा जा सकता है कर्ता के व्यक्तित्व के पीछे उसका देशकाल विद्यमान रहता है।"[१]

परिवेश का समानार्थी 'देशकाल' और 'पर्यावरण' है। 'देश' का अर्थ भौगोलिक परिस्थितियां एवं जलवायु है। 'काल' शब्द से इतिहास बोध होता है। "पर्यावरण के सन्दर्भ में फ्रांसीसी और अंग्रेजी भाषाओं में 'मिल्यु' शब्द प्रचलित है जिसका व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थ किया गया है - मि = मध्य, ल्यू = स्थान या देश इस प्रकार यह शब्द भौतिक परिवेश का ही द्योतक है।"[२]

देशकाल में निरंतर होने वाले परिवर्तन मिलकर परिवेश का निर्माण करते हैं। 'समकालीन परिवेश' नें कहनी के तथ्य, कथ्य और रूपाकार को नये आयाम दिये हैं। तथ्य और कथ्य के धरातल पर रूप एवं संरचना की दीवारें खड़ी है। 'मन' को गद्य साहित्य की विशिष्ट विधा कहानी के केन्द्र में रखा गया तो जैनेन्द्र से अज्ञेय तक की कहानियां अन्तर्मन में जीते, जूझते मानव का एकांकी चित्र बन गयी। आज व्यक्ति बाह्य परिवेश के साथ अपनी संपूर्णता से जुड़ा हुआ है। परिवेश रचना में उमड-घुमड़ कर उतर आता है। ऐसी रचना अपनी सम्पूर्ण अर्थवत्ता में सार्थकता प्राप्त कर लेती है। नवीन विषय चयन बदलते परिवेश में ही संभव है। नव लेखन का साहित्य जगत ने सदा स्वगत किया है। परिवेश की महत्ता रचना में होती है। रचना की विशेषता या प्रवृत्तियां परिवेश का परिणाम होती है। संक्षिप्त रूप में समकालीन परिवेश के संबंध में कहा जा सकता है - "उसकी कोई एक निश्चित प्रवृत्ति नहीं है। वह अनेक प्रवृत्तियों स्थितियों का अस्त व्यस्त रूप है। एक ओर परम्परावादिता है तो दूसरी ओर आधुनिकता से भी अगला कदम उत्तर आधुनिकतावाद का है। यह अवधारणा पश्चिम से आई है और लुभावनी तथा आकर्षक भी है किन्तु सार हीनव्यक्ति की मनः स्थिति खण्डित हो चुकी है. उसका जीवन असम्बद्धताओं, असंगतियों और विसंगतियों से भरा पड़ा है. सैद्यंतिक तौर पर साहित्य में संस्कृति के महान आदर्श भरे पड़ेहैं परन्तु व्यवहार में अशोभनीयता की स्थिति तक सांस्कृति पतन भी हुआ है।"[३] समकालीन परिवेश से आशय कृतिकार का - राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश जिसमें उसके युग की तमाम प्रवृत्तियां शामिल रहती हैं।

१.- डॉ. नगेन्द्र : साहित्य का समाज शास्त्र - पृ. १२
२.- डॉ. नगेन्द्र : साहित्य का समाज शास्त्र पृ. ९
३.- समकालीन कहानी : यथार्थ के विविध आयाम - पृ. २९

सामाजिक परिवेश

समाज का अर्थ हम सबका जीवन है. हम सबकी सुरक्षा के लिये समाज का निर्माण किया गया। आरंभिक काल में समाज व्यवस्था का स्वरूप सरल था पर धीरे-धीरे यह व्यवस्था प्रक्रिया जटिल होती गयी। समाज टूटने लगा। डॉ. नगेन्द्र ने टूटती वर्ग व्यवस्था को 'क्रमचय संचय (परमुटेशन कम्बीनेशन) का नाम दिया।"[१] समाज एवं साहित्य का घनिष्ट संबंध होता है। एक रचना समाज तथा रचनाकार के बीच सम्पर्क सेतु रहती है। रचना से व्यक्ति विशेष से लेकर एक समाज तक प्रभावित होता है। साहित्य का इतिहास उतना ही पुराना माना गया है जितना समाज। "साहित्य एक ओर समाज का दर्पण है तो दूसरी ओर उसकी समीक्षा।"[२] अमृत राय की 'एक सांवली लड़की' कहानी किसी भी युग, किसी भी समाज एवं किसी भी समय किसी के भी घर की हो सकती है।

साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी है। वह अन्य व्यक्तियों के समान ही सचेतन प्राणी होता है। सामाजिक जीवन चेतना द्वारा ही परिचालित होता है। परिवेश चेतना को नियंत्रित रखता है। परिवेशगत चेतना साहित्यकार के मन मस्तिष्क को ढके रहती है। साहित्यकार की अन्तश्चेतना को परिवेश प्रभावित करता रहता है। रचनाकार अपने सामाजिक परिवेश से अत्यंत सचेतन रूप से संपृक्त रहकर पूरी सच्चाई के साथ अपने रचनात्मक दायित्व को निभाता रहता है।"[३]

परिवेश के प्रति जागरुकता ने व्यक्ति को समाज से बड़ी गहराई से संपृक्त किया है। इसी कारण सामाजिक चेतना बड़ी प्रखर है। समाज के साथ मानव जीवन साक्षात्कार चाहता है।

व्यक्ति जानता है कि समाज के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है। यह भी सत्य है कि रचनाकार समाज के प्रति प्रतिबद्ध हुये हैं। उदाहरण स्वरूप हम साहित्यिक आन्दोलनों को ले सकते हैं जो सामाजिक समस्याओं के प्रति प्रबुद्ध वर्ग की सचेतनता के प्रमाण हैं। हमारा समाज अनेक विसंगतियों से आक्रांत है। श्री पुरुषोत्तम दुबे का कहना है विश्व बिखर गया राष्ट्र टुकड़ों में और टुकड़े बिखर गये है इकाईयों में। उधर समाज बिखर गया है, वर्ग, समूह, संस्था, यूनियन, पार्टी में. और व्यक्ति स्वयं अपने आप में - अपने ही भीतर बिखर गया है- उसका मन बिखर गया है. चेतन, अर्धचेतन, अवचेतन में विभक्त हो गया है। व्यक्ति चेतना बिखर गयी है अहं में, स्वं में, सर्वत्र एक टूटन महसूस की जा रही है,

---

१.- साहित्य का समाज शास्त्र - डॉ. नगेन्द्र - पृ. ६
२.- समकालीन कहानी : यथार्थ के विविध आयाम पृ. २९
३.- समकालीन हिनादी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम प-. ३१

केवल टूटन और कुछ नही। आज की बिखराहट छितराहट आकुलता-व्याकुलता और व्यापक अराजकता 'स्व' को छोड़कर किसी अन्य के नेतृत्व, किसी और के प्रतिनिधित्व में विश्वास नही करता। सारा युग व्यक्तिवादी बन गया है, व्यक्ति चेतनावादी हो गया है। "[१]

मैत्रेयी पुष्पा ने आज के सामाजिक परिवेश में फंसे व्यक्ति का चित्रण सटीक और सार्थक शब्दों में प्रस्तुत किया है। "सामाजिक विसंगतियों के भयानक जबड़े में फंसा अदना आदमी सदियों से किस हद तक चलाया जा रहा है। यह तो उसकी धरती की माटी छूकर वहाँ के पसीने के स्पर्श से ही अनुभव किया जा सकता है।।"[२]

विज्ञान हमारे समाज का महत्वपूर्ण विषय है। इससे एक ओर उन्नति हुयी है तो दूसरी ओर वैज्ञानिक मारक आँखों ने हम सहको आतंकित कर रखा है। आतंकित दुनियां में आजीविका के लिये मानव यंत्रो का दास बनता जा रहा है।

विश्व शांति की तो अब कल्पना भी नही की जा सकती। चारो ओर हिंसा ही हिंसा दिखाई दे रही है। केवल हिंसा है जो सारे समाज को घूर रही है। पूंजीवादी पैसे का दानव अपने पैरों तले सभी को कुचल रहीं है। हमारी अस्मिता के टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं। सन् १९४७ के बाद भारतीय समाज में तीखे परिवर्तन हुये हैं। मैत्रैयी पुष्पा के शब्दों में- "यूँ भी आजादी के बाद परिवेश में बड़ा परिवर्तन आया। स्वतन्त्र भारत का नागरिक अनेक अर्थो में पुराने दासत्वों को छोड़कर अनेक नये दासत्व ग्रहण करता है। जीवन मूल्यों का विघटन और अन्तर्विरोधों के झंझावातों में फंसा तथा-कथित विकास अपने आप में एक बड़ा प्रश्न चिन्ह् बन गया है। अनेक योजनाएं सोपानों की खोखली थोथी मीनारें ढहने को तैयार बैठी हैं।"[३]

औद्योगिकीकरण के कारण ऊँचे-ऊँचे मकान, मशीनीकरण के कारण प्रदूषित वातावरण, फैक्टरियों से निकलता धुआं इंसान की घुटन का कारण बन चुका है। इंसान तिल-तिल कर मर रहा है। गांव में आराम से रहने वाला व्यक्ति शहर की चकाचौंध से प्रभावित हुआ। शहर वाला नारकीय जीवन देखने के बाद उसकी क्या दशा हुयी ये तो बस वही जान सकता है। 'खोई हुयी दिशाएं' नामक कहानी इस वास्तविकता को बखूवी स्पष्ट कर देती है। (यह कहानी कमलेश्वर की प्रसिद्ध कहानी है।) समाज

१.- व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास प.- २३१

२.- आंचलिक कथा दिशा और दशा साप्ताहिक हिन्दुस्तान पृ. ४२

३.- आंचलिक कथा : दशा और दिशा : साप्ताहिक हिन्दुस्तान पृ. ४३
३ मई - ९ मई १९९२

में यातना का स्वरूप बदल गया है। मैत्रेयी पुष्पा के शब्दों में - "अब किसी होरी धनियां को साहूकारी-सामंतवाद का शिकार नही होना पड़ता, अब तो अपने हाथों से निर्वाचित सरकार का तन्त्र उसे पीस पीसकर अधमरा कर देता है। स्वाधीन भारत का आदमी अपनी ही भइया बिरादरी से डरा, सहमा रहने लगा है।"[१]

हमारा परिवारिक विघटन भी सामाजिक परिवेश के विभिन्न कोणों को स्पष्ट करता है। वर्तमान कहानियाँ पारिवारिक विघटन का एलबम हैं। शोषण का शिकार निम्न व मध्यवर्ग है। मध्यम वर्ग के दुःखों के लिये सुनने वालों के कान (राजनेताओं) नही हैं। नवें दशक की कहानियों में समाज एवं परिवेश का चित्रण यथार्थ में प्रस्तुत है और पाठकीय संवेदना को जानने में समर्थ है। पं. द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' की सफर 'कहानी' पारिवारिक संबंधों के बदलाव को रूपायित करती है। वर्तमान में शिक्षित पुत्र वधु वृद्ध सास ससुर का अनावश्यक भार उठाना नहीं चाहती। अपना स्वतंत्र उन्मुक्त एंव अपना इच्छित जीवन जीना चाहती है पति अपने माता पिता को कुछ समय के लिये अपने साथ रखना चाहता है तो पत्नी बच्चों सहित मायके जाने की धमकी देती है। पति चुप हो जाता है. वह माता पिता की परवाह नहीं करता। अपनी गृहस्थी की सुख शांति भंग नहीं करना चाहता इस कहानी की कुछ पक्तियाँ दृष्टव्य हैं - "फिर सुनन्दा का खुद का निर्णय सुन पड़ा ठीक है, मैं दो तीन दिन देखती हूँ - गाड़ी चला पाती हूँ या नही। नहीं चला पाई तो किसी से बिना कुछ कहे सुने चुपचाप माँ के पास चली जाऊँगी बच्चों को लेकर xxxxxxxxxxxxxx चैन से रहूंगी वहाँ। और सारे दिन मण्डल के कार्यक्रमों में भाग लेती रहूँगी। मुझे अपनी प्रेस्टीज़ नही खोनी।" पति को व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहती है- "और तब आप अपनी माँ के हाथ की बनी पकौड़ियाँ खाइएगा चीले खइएगा, xxxx सालों बीत गये हैं बिना खाये। ये सब मैं आपको कहाँ खिला पाई हूँ।"[२] असगर वजाहत की 'जख्म' साम्प्रदायिक दंगों के शिकार लोगों की कहानी है। गंगा प्रसाद विमल की 'फूल कह रहे हैं' पुलिस व्यवस्था की अव्यवस्था को स्पष्ट कर देने वाली कहानी है। "जेल में बेकसूर लोगों के बारे में सोचकर मुझे लगा कि असली कसूर वार लोग तो बाहर हैं और अन्दर इस अल्प संख्या में ज्यादातर बेकसूर लोग। सिर्फ इस दीवार के पार हवा में कसूरवार अपराधी मजे ले रहे हैं।xxxx खाना लाने वाला जमादार हंसकर कहता, "साहब बाहर भी इसी तरह फूल खिले होंगे? तब मैं जेल के बगीचे की ओर देखता। हवा में हिल-हिल कर फूल जैसे कह रहे होते----।"[३]

१.- आंचलिक कथा : दशा और दिशा :साप्ताहिक हिन्दुस्तान पृ. ४३ ३ मई - ९ मई १९९२
२.- पं. द्विजेन्द्रनात मिश्र 'निर्गुण' : सफर : 'आनन्दमंजरी'(पत्रिका पृ. १५ अक्टूबर १९९०)
३.- गंगाप्रसाद विमल : फूल कह रहे हैं : आनंदमंजरी पृ. २९ अक्टूबर १९९०

डॉ. पुष्पपाल सिंह ने 'दरकते संबंधों की कहानी' नाम दिया है जिन कहानियों में पारिवारिक बिखराव है।[१] जगदीश चतुर्वेदी के 'निहंग'[२] नामक कहानी संग्रह नें हिन्दी संसार का ध्यान अपनी ओर खींचा। इनकी कहानियाँ विशेष साहसिकता लिए हुये हैं। इस संग्रह के ज्यादातर सभी पात्र प्रौढ़ एवं परिपक्व है। इसमें काम संबंध किसी छिपाव या दुराव का शिकार नही है। विवाह प्रेम संबंधी मूल्य यहां नैतिक आदर्श, मान मर्यादा की दृष्टि से न देखे जाकर स्वार्थ और उपयोगितावादी दृष्टि से देखे गये हैं। उन्मुक्त प्रेम का चित्रण इस दशक में कहानियों में छाया रहा है। विशेष रूप से कहानियां त्रिकोण प्रेम पर आधारित है।

सामाजिक परिवेश का विश्लेषण करते समय दस वर्ष की कहानियां ली है उनके उद्धहरण भी लिये है। संक्षिप्त रूप में "इन कहानियो की आंखों में मोहक सपने नही तैर रहे हैं, वेद और गीता के उपदेश वाक्य नही हैं। मंहापुरुषों के आदर्श खो गये हैं माता पिता के दिये संसकार और परम्पराओं के नाम पर समयकालीन जिया जाने वाला जीवन पूरी सच्चाई के साथ उभरा है।"[३] परिवार में माता पिता की उपेक्षा होती है। दो सम्प्रदाय एक दूसरे को भाई कहकर गले मिलते हैं होली के रंग से एक दूसरे को रंगते हैं, मिलजुलकर चमकदार आंखों से ईद का बारीक चाँद आसमाँ की दूर दूर तक फैली नीली चादर पर देखते हैं और अचानक एक दूसरे के रक्त के प्यासे हो जाते हैं। सड़के गलियाँ लहुलुहान हो जाती है। कर्फ्यु लग जाता है। पुलिस की गाड़ियाँ गश्त लगाती हैं। छोटे चोर जेल में रहते हैं, मार खाते हैं, खाना नही मिलता बड़े चोर जेल से बाहर ऐशो आराम से रहते हैं। उन्हें पुलिस नहीं पकड़ती वे चोर नही कहे जाते। पति पत्नी संबंध दिखावे के भी हैं। उनका मन पूर्व प्रेम को ही रटता रहता है। स्त्री पुरुष सोचने लगे हैं कि प्रेम और वासना में कोई अंतर कैसे हो सकता है? दोनों एक दूसरे के सहारे ही चल सकते हैं। प्रेम करने में स्वतन्त्रता है। एक के बाद दूसरा प्रेम क्यों नही किया जा सकता। प्रेम कोई पाप नही है।"[४]

सन् १९८५ तक की कहानियों की प्रवृत्तियां आठवें दशक के समान ही है। फिर आधे दशक में कुछ बदलाव आये हैं। सामाजिक जीवन के जितने भी सरोकार हो सकते हैं, कहानी सबके प्रति पूर्ण सचेत रहती है वह व्यवस्था की भ्रष्टता से लड़ती हुयी महत्वपूर्ण प्रश्नों के प्रति एक सही सोच जगाती और विकसित करती है। साथ ही मन के अनेक अन्तर्गह्वरों में प्रवेश कर मानवीय रिश्तों की सच्चाई को पुर्नपरिक्षित करती है। इन कहानीयों में एक ओर सत्ता पदलोलुप, अर्थपिपासु स्वार्थी व भ्रष्ट तथाकथित समाज उन्नायकों के चरित्र का निदर्शन रहता है और दूसरी और नारकीय जीवन को तिलत्तिल

१.- समकालीन कहानी : सोच और समझ पृ. १२५
२.- वही पृ. १४२
३.- समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम डॉ. ज्ञानवती अरोरा पृ. ३६
४.- वही।

जीते विपन्न वर्ग के पतित असामाजिक अपराधिक हिंसक और समस्त कुत्सित वृत्तियों से युक्त चरित्रों का चित्रण मिलता है। अव्यवस्था, असुरक्षा, आतंक और अनैतिकताके विष ने वर्तमान जीवन को विषाक्त बना दिया है। समयकालीन समाजिक परिवेश का परिवर्तित रूप ज़िन्दगी के यथार्थ के अनेक आयामों को पूर्ण कालात्मकता और रचनात्मक ईमानदारी तथा सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ प्रस्तुत करता है तथा पाठकीय संवेदना को जाग्रत करता है। सारांश रूप में कहानीकारों नें अपनी अनुभवजन्य धारदार दृष्टि से परीक्षण करके सत्य को अनावरित किया है। अंधकार भरे मोड़ों से गुजरने के दौरान सार्थक जीवन को तलाशा है।

२. आर्थिक परिवेश

परम्परागत भारतीय जीवन प्रणाली को व्यवस्थित बनाने में 'पुरुषार्थ की धारणा' का महत्वपूर्ण स्थान है। "व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन को प्रभावित करने और उसके प्रमुख कर्त्तव्यों को चार प्रमुख भागों में विभाजित करने वाली योजना को ही हम 'पुरुषार्थ' कहते हैं।"[१] सर्वविदित है कि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष चार पुरुषार्थ माने गये हैं। भारतीय दर्शन में इनका बड़ा महत्व है। 'अर्थ' दूसरा महत्वपूर्ण पुरुषार्थ है जिसके बिना वैयक्तिक पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों की पूर्ति नहीं की जा सकती।

यस्यास्ति` वित्तं स नरः कुलीनः।
स पण्डितःस श्रुतिमान गुणज्ञः।।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः।
सर्वे गुणा कांचनमाश्रयंति।।[२]

भर्तृहरि ने अर्थ का सर्वव्यापक प्रभाव माना है। परिवेश के निर्माण में अर्थ की एक विशेष भूमिका होती है. समाज का महत्वपूर्ण अंग है अर्थव्यवस्था।अर्थव्यवस्था का संबंध धन, सम्पत्ति के उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रविधि या प्रक्रिया से होता है। मार्क्सवादी चिंतन के अनुसार भी अर्थव्यवस्था सम्पूर्ण समाज के संचालन का आधार है। यह सत्य है आज हमारी चेतना जीवन को परिचालित नहीं कर रही अपितु आर्थिक व्यवस्था जीवन को गति दे रही है। यदि धन का अभाव हो तो एक पग भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। भूख व्यक्ति को पागल सा बना देती है। गरीब व्यक्ति कुछ भी सोचने की स्थिति में नही रहता। देश की समस्याएं देश की व्यवस्था एंव समाज दर्शन अध्यात्म दर्शन से उसे कोई सरोकार नही होता। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में - "अर्थव्यवस्था की नींव पर मानव की विभिन्न बौद्धिक और रागात्मक प्रवृत्तियों - अर्थात दर्शन, विज्ञान, धर्म, संस्कृति तथा कला साहित्य आदि की अधिरचना होती है।"३

श्रेष्ठ साहित्य रचना के लिए समाज लेखक और पाठक की आर्थिक स्थिति भी ठीक होनी चाहिये। यदि लेखक आर्थिक दृष्टि से मजबूत नहीं हें तो उसके लेखन में निराशा होगी। आर्थिक परिवेश युगीन परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। भोगवादी तथा व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि अर्थमहत्ता स्थापित करती है। उस काल में अर्थ की विकृत लीलाओं का बोलबाला इसी जीवन दृष्टि की बदौलत है वैसे अर्थ विकृत सत्ता क्या नही थी? पर साथ में अन्य तीन पुरुषार्थो का भी महत्व था। "आज अर्थ एकमात्र पुरुषार्थ

१.- भारतीय सामाजिक संस्थाएं - जी. के अग्रवाल पृ. ८३ संस्करण १९८६
२.- सुभाषितानि : संस्कृत दिगदर्शिका इण्टरमीडिएट बोर्ड संस्करण १९९०
३.- डॉ. नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र पृ. ६५

ही नहीं वल्कि जीवन मूल्य बनकर उभरा है। व्यक्ति का मूल्यांकन और महत्व अर्थ के आधार पर आंका जाने लगा है यहाँ तक कि आर्थिक संकट ने परिवारगत संबंधों में भी परिवर्तन की स्थिति उत्पन्न कर दी है। पति पत्नी संवंधों में परिवर्तन लाने के लिये किसी हद तक आर्थिक संकट भी उत्तरदायी है, जिसने पति के स्वाभित्व के परम्परागत मूल्य को खण्डित कर दिया। आज सभी संबंधों की पृष्ठभूमि में आर्थिक प्रभुत्व की भावना प्रचछन्न रूप से विद्यमान रहती है।"[१]

दिन-ब-दिन बढ़ती मंहगाई के कारण परिवार के सभी सदस्य अर्थ प्राप्ति के लिये तितर बितर हो गये हैं। सभी सदस्यों की कमाई के बावजूद परिवार जरूरतों की पूर्ति नही कर पा रहा है। मंहगाई और खर्च के दो पाटों में हर व्यक्ति पिसता हुआ महसूस कर रहा है- "कितने मोटे हैं पाट कभी घिसते ही नही, पिस-पिस कर और मोटे होते जा रहे हैं कितना तोड़ दिया है इन पाटों नें मेरे परिवार को। सब अलग अलग हो गये हैं एक घर रहकर भी कितनी दूर।"[२]

अर्थ का अभाव और निरन्तर बढ़ती हुयी जरूरतें दोनों में मेल न होने के कारण व्यक्ति अतिरिक्त धन प्राप्ति के लिये बुरे मार्ग भी बेहिचक अपनाता जा रहा है। सरकारी एवं सहकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार, घूसखोरी, राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त अनाचार, वाणिज्य क्षेत्र में व्याप्त साठेबाजी जीवन दृष्टि के विकृत पहलू हैं। आज राजसत्ता भी अर्थसत्ता की मुट्ठी में हैं। चुनाव के दौरान मतदाताओं को खरीदकर राजसत्ता को अर्थसत्ता ने अपना गुलाम बनाया है। रोजरगैराड़ी के शब्दों में "आज मनुष्य क्रय विक्रय की चीज भर बनकर रह गया है, विशेषतः उस जन समुदाय में जहाँ हर चीज बेची और खरीदी जाती है।"[३] श्री रघुनाथ भट्ट के शब्द इन पंक्तियों को सार्थक भी कर देते है- "आर्थिक विपन्नता के दवाव में व्यक्ति का स्वातन्त्र्य और उसकी सामाजिकता की धज्जियां उड़ गयी हैं। व्यक्ति जिन्दगी के गरल को पी रहा है। 'जीना मरना (हिमांशु जोशी) में माँ मर जाती है। बच्चा बीमार है। बरखा बहन के कपड़े तार तार हो गये हैं. अमेरिका से मेहमान आने वाले हैं घर में उनको ठहरने का प्रवंध नही हो सकता है। आर्थिक दवाव से केवल सामाजिकता ही शिकार नहीं होती है, आदमी की नैतिकता और आपसी संबंधों के ताने बाने भी बिखर जाते हैं।"[४]

१.- कहानी की संवेदनशीलता : सिद्धांत और प्रयोग - भगवानदास वर्मा पृ. २०२
२.- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन : डॉ. मेरूलाल गर्ग पृ. ९१
३.- टूटते हुये - डॉ. सुरेशचन्द्र 'शुक्ल' पृ. १२
४.- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी : सम्पादक डॉ. रामकुमार गुप्ता पृ. ११५
(हिसाशु जोशी की कहानियाँ : आम आदमी की कहानी) रधुनाथ भट्ट

औद्योगीकरण ने सबको महानगरों की ओर खींच लिया है। श्रम और मूल्य के बीच में व्याप्त फासला औद्योगिक कलह की समस्या बढा रहा है। साथ ही नगर विस्तार और उसकी यांत्रिकता अनेकों नयी समस्याओं को पैदा किये जा रही हैं। लगाव नगर की ओर बढ़ने से कृषि व्यवसाय उपेक्षित हो रहा है अन्न समस्या भी जटिल होती जा रही है। वर्तमान में कृषि व्यवसाय दिन-बदिन खर्चीला होता जा रहा है इस कारण छोटे किसानों की स्थिति और भी गिरती जा रही है। फिर से कृषि सम्पदा सामंतयुगीन बनने की ओर जा रही है।

अर्थ समस्या सुलझाने के लिये शासन द्वारा अनेकों योजनाएं बनवाई जाती है लेकिन स्वार्थ केन्द्री भोगवादी, जीवन दृष्टि से गंदले, सामाजिक एंव राजनैतिक परिवेश के कारण वह योजनाएं कागज पर ही रह जाती हैं। नैसर्गिक आपत्तियां अतिवृष्टि, भूचाल आदि बढती आबादी और नाकाम शिक्षा साथ ही भ्रष्ट राजनैतिक एवं वाणिज्य नीति के कारण समूचा आर्थिक परिवेश तंगी से भर गया है। आम आदमी अर्थ संकट में पिसता जा रहा है। "अर्थ का अभाव इन्हें वैचारिक स्तर पर सोचने को विवश करता है। मजबूरियोंसे निरंतर घिरे रहने के कारण उनके मन में कुण्ठाए इस कदर जन्म ले लेती है कि बाहर से प्रसन्नता बिखेरने वाले चेहरे के भीतर खोखलापन नजर आता है। व्यक्ति बाहर से जो कुछ दिखाई देता है, भीतर से उसका स्वरूप वह नही होता। उसके जीवन में प्रायः एक घुटन, खिन्नता, टूटन, विक्षोभ, आकुलता के दर्शन होते हैं।"[१] श्रीकान्त वर्मा को 'ठन्ड' कहानी संग्रह 'दूसरे के पैर' कहानी संग्रह उदाहरण स्वरूप ली जा सकती है।

समकालीन आर्थिक अस्त व्यस्तता परिस्थितियों की उपज है जिसका समकालीन कहानी में चित्रण हुआ है। अर्थसंकट से त्रस्त निम्न और मध्यवर्ग, महगाई और बेकारी, बेरोजगारी ने व्यक्ति को अपंग बना दिया है। उसका नैतिक बल या तो घटा है या निराश होकर वह असामाजिक कार्यो में प्रवृत्त हुआ है। जिससे देश व समाज का अहित ही होगा। आर्थिक विपन्नता की झलक इस कहानी में दृष्टव्य है।

'चमगादड़' में बूढ़ा बाप घरवालों को चमगादड़ से भी बदतर नजर आता है। कमाऊ बेटे उसे घर से निकाल देते है। वह एक अमरूद के बगीचे में रहने लगता है। रात भर चमगादड़ भगाया करता है क्योंकि वह कमा नही सकता इसलिये परिवार के लिये उसका कोई अस्तित्व नहीं।"[२]

१.- द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
१.- अब्दुल बिस्मिल्लाह : समकालीन भारतीय साहित्य (त्रैमासिक) प.- ९,
१ सितम्बर १९९०

सामाजिक नियमों की अवहेलना, सत्ता विरोध, आतंकवाद या (आसामाजिक तत्वों का अव्यवस्था उत्पन्न करना) जिनसे जीवन असुरक्षित हो गया है। सुखद अनुभूतियां खो गई हैं। मजदूर, मिल मजदूर आदि समाज के निम्न स्तरीय जीवन जीने वालों की आर्थिक विशेषताओं एवं जीवन में व्याप्त निराशा का चित्रण भी अत्यंत सशक्त रूप में सतीश जमीली, राकेश वत्स, रमेशचन्द्र शाह, कामतानाथ, सुदीप, जितेन्द्र भाटिया, सुभाष पंत आदि ने अपनी कहानीयों में किया है। राकेश वत्स की 'ताजा रोटी की महक' और 'छुट्टी का एक दिन' कहानियों में मजदूर की जिन्दगी का यह पक्ष अत्यन्त प्रमाणिकता से चित्रित हुआ है। 'छुट्टी का एक दिन' कहानी एक मजदूर की जिन्दगी की आर्थिक दशा के बीच बुनी गयी सराक्त कथा है। बाजार में छुट्टी के दिन घूमता मजदूर परिवार और उसके बच्चे आइसक्रीम न खा पाने के कारण अपने भाग्य को कोसते हैं। इससे बड़ी आवश्यकता उस मजदूर के सामने अपनी पत्नी के लिये धोती का जुगाड़ करने की है। मारकीन की सामान्य सी धोती को वह अगले वेतन में से सूद समैत पैसे देने की अंगूठा लगाकर खरीद पाता है। शहर घूमने आया यह थका मांदा परिवार अपनी जगह लौट जाने के लिये बस में चढ़कर भी इसलिये उतरने को मजबूर है कि बच्चों के भी टिकिट लायक चार रुपये पचास पैसे उनके पास नही है। उन्होने तो सोचा था कि बच्चों के टिकिट नही लगेंगे। बस से उतरने पर "उस भीषण गर्मी में औरत और उसके तीनों बच्चों के पैर नितान्त बेआवाज़ और नंगे थे।" वस्तुतः यह बेआवाज़ और तंगाई उस गरीबी की है जिसे इस कहानी में गहरी सामाजिक संलग्नता से अभिव्यक्त किया गया है।"[१] कीमतें घटने के सरकारी आंकड़ो और घोषणाओं पर भी यह कहानी तीव्र व्यंग्य प्रस्तुत करती है।

समाज का सामान्य आदमी या निम्नवर्गीय व्यक्ति ही इस अर्थाभाव से ग्रस्त हो ऐसा नही है। अफसर नुमाउच्च वर्गीय समझा जाने वाला व्यक्ति भी अपने प्रकार से अर्थ की मार से पीड़ित है। श्रवण कुमार की 'मैं' कहानी एक ऐसे ही तथाकथित उच्चवर्गीय व्यक्ति की आर्थिक तंगी को जाहिर करती है। "मैं जिसके दायी ओर के एक कोने में रेफरिजिरेटर पड़ा है, मैं जिसके बायी तरफ सनमाइका टाइप वाला डाइनिंग टेबिल है, मैं जिसके दूसरे कमरे में छह फुट ऊँची, आइने वाली स्टील की अलमारी खड़ी है और जिसके पास ही नया नया सा लगने वाला दीवान बिछा है। चारों तरफ सब कुछ है पर कुछ भी नहीं। एक सौ पैंसठ रुपये मकान किराया, तीस रुपये बस भाड़ा, पचास रुपये माँ को मनिआर्डर---- कुल जमा सात सौ दस रुपये पैंतीस पैसे। हर महीने बैंक में तन्खवाह आकर जुड़ जाती है और हर महीने बैंक वैलें स वही ---- ।"[२] यह कहानी मैं की नहीं, इस वर्ग के 'सब' की कहानी है। इस प्रकार आज समाज का प्रत्येक वर्ग अपने अपने रूप में अर्थभाव से पीड़ित है।

१.- राकेस वत्स, 'छुट्टी का एक दिन' - रविवार, २ मार्च १९ अंक

२.- श्रवण कुमार, 'जहर' - मैं , पृ. ५-६

"सामान्य व्यक्ति आर्थिक समस्याओं से जुझते हुए जिन्दगी का यह दुर्वर भार ढो ही रहा है। सरकार का यह नारा 'गरीबी हटाओ' जले पर नमक छिड़कने का कार्य कर रहा है। इसने गरीबी को टस से मस नही किया है किन्तु जन सामान्य को एक आक्रोश और विक्षोम से अवश्य भर दिया।"[1] कहानी ने 'गरीबी हटाओ' के इस नारे की व्यर्थता और उसके प्रति आक्रोश को भी वाणी दी है। रवीन्द्र कालिया ने तो 'गरीबी हटाओ' नामक कहानी संग्रह ही देकर इस नारे के थोथेपन को उजागर किया है। माहेश्वर ने 'मृत्युदण्ड' कहानी में कथा नायक के द्वारा इस नारे की निस्सारता को इस प्रकार प्रकट किया है- "यह एक नया तनाशा शुरु किया है सालों ने। हुँह। गरीबी हटाओ। जैसे गरीबी इनके घर की नौकरानी है कि जब चाहा कान पकड़कर सड़क पर खड़ा कर दिया। गरीबी को जिन्हें हटाना होता है वे पहले अमीरी को हटाते हैं। जहाँ लाखों करोड़ों आदमियों को भरपेट खाना नहीं मयस्सर होता और सारी दौलत चंद आदमखोरों की अंतड़ियों में समा रही हो वहाँ से गरीबी क्या खाक हटेगी।"[2]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है यद्यपि एक ओर ज्ञान विज्ञान ने प्रगति, उपग्रह और सैटेलाइट, यंत्रीकरण मे विकास, प्रति व्यक्ति औसत आय में वृद्धि, शिक्षा प्रसार, बिजली, पानी का प्रबंध, ग्रामों तथा पर्वतीय अंचलों का विकास, विदेश संबंधो में सुधार परन्तु उतना ही ऋण का बोझ बढ़ता गया, निर्यात अधिक होने लगा। और आयात पर कर वृद्धि, परिणाम स्वरूप मूल्य वृद्धि हुयी। देश की प्रगति होने पर भी आम आदमी की स्थिति में इच्छित सुधार नही हो सके हैं।

वर्तमान समाज मे नैतिकता या अनैतिकता का प्रश्न अब इतना महत्वपूर्ण नही रह गया है जितना आर्थिक उपलब्धि का उद्योगों की प्रगति के साथ धन बढ़ रहा है, दूसरी ओर अपराध बढ़ रहें हैं। अपराध और अर्थव्यवस्था से समाज संत्रस्त है। आज की दुनियाँ में सभी कुछ चूंकि पैसे से मिलता है और पैसे कम समय में चरित्र खोये बिना मिल नहीं सकता है। अतः चरित्र से अधिक पैसा बहुमूल्य हो गया है। व्यक्ति जीवन का सबसे महत्वपूर्ण मूल्य 'धन' ही बन चुका है। समकालीन कहानी की सामाजिक संचेतना ही आर्थिक परिवेश है।

सम्पन्नता का नशा जनमानस पर बुरी तरह छा गया है। जिसे पाने के लिये किसी भी मूल्य या आदर्श को चूरचूर किया जा सकता है। सुरेन्द्र अरोड़ा की एक सशक्त और सार्थक कहानी -'सीढ़ियाँ' है। जिसकी नायिका सफलता की अंतिम सीढ़ी तक पहुचने के लिये बीच की सभी सीढ़ियों को (जैसे नैतिकता, मूल्य और आदर्श) छलांग लगाकर छोड़ती चलती है। उसका लक्ष्य केवल अंतिम सीढ़ी है, जहाँ सम्पन्नता, अधिकार, वैभव और समृद्धि है।"१

१.- डॉ. पुष्पपाल सिंह - समकालीन कहानी : युगबोध का सन्दर्भ पृ. ११६
२.- माहेश्वर , 'स्पर्श' - मृत्युदण्ड पृ. ३२-३३
१.- सुरेन्द्र अरोड़ा : 'सीढ़ियां' : साप्ताहिक हिन्दुस्तान पृ. ४० नवम्बर १९८६

गिरिराज किशोर का 'हम प्यार कर लें' सन् १९८० में प्रकाशित महत्वपूर्ण कथा संग्रह है। इस 'कहानी संग्रह' का नाम बड़ा चौंकाने वाला है। कुछ 'चीप' जैसा भी है। इस दशक में कहानी आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों से जूझ रही है। इस शीर्षक से भले ही रोमानीबोध हो पर यह संग्रह आम आदमी की आर्थिक स्थिति को उभार रहा है।

'ठण्डक' का श्रीकर भी रोटी की जुगाड़ में बाहर जाता है किन्तु वहाँ से भी वह निराशा का दंश लेकर लौटता है और उसकी पत्नी इस सत्य को महसूस करती सोचती है, "रोटी का मिलना बाहर जाने या अन्दर रहने पर निर्भर थोड़ी ही करता है। बाहर जाकर भी आदमी रहेगा तो मुल्क में ही। मुल्क भर की हालात लगातार एक सी होती जा रही है।"[१] वस्तुतः यह स्थिति 'सारे मुल्क' और प्रत्येक व्यक्ति की है। व्यक्ति को पग पग आज यह एहसास हो रहा है। दुनियाँ में सबसे बड़ी चीज़ पैसा और पोजीशन है।

आज व्यक्ति अर्थतन्त्र के शिकंजे में जकड़ा हुआ है। इस दशक में (१९८०-९०) कहानी संसार को अर्थतन्त्र काफी हद तक प्रभावित किये रहा है। इन दस वर्षों की कहानी व्यक्ति की आर्थिक समस्याओं, भूख, गरीबी और विभिन्न प्रकार के अर्थाभावों का बहुआयामी चित्रण कर आज के सामाजिक परिवेश से हमारी गहरी पहचान स्थापित करती है।

१.- गिरिराज किशोर, 'हम प्यार कर लें'(कहानी संग्रह) - 'ठण्डक' (कहानी) (पृ. २५ सन् १९८०)

३. राजनैतिक परिवेश

'परिवेश' शब्द को हम पहले ही परिभाषित एवं व्याख्यायित कर चुके हैं, अब 'राजनैतिक' शब्द का अर्थ जानना है। इस शब्द को सम्यक् रूप में परिभाषित करना कोई सरल कार्य नही है। वैसे तो 'राजनैतिक' शब्द से तात्पर्य समाज और देश व्यवस्था की नीतियों का, सत्ता द्वारा निर्धारण से ही लिया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है "राजनीति का अर्थ राज्य का समयक् या सुव्यवस्थित संचालन है।"[१]

राजनीति का संबंध सत्ता या सरकार से सीधा रहता है। राजनीति शासन की नीतियों को गढ़ती है। उसका संबंध उन सभी संस्थाओं और संगठनों से रहता है, जो समाज में सुव्यवस्था कायम रखने के लिये आवश्यक हों। 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत पर ही हमारा राजनैतिक परिवेश निर्भर करता है। उस दशक के राजनैतिक परिवेश ने इस कहावत को और भी सार्थक बनाया है।

कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ इस दशक के राजनैतिक परिवेश को आधार बनाकर चली हैं। राजनैतिक परिवेश को सही रूप में प्रस्तुत करने में सक्षम भी रही है। राजनैतिक, कहानी में राजनीति और रचनाकार की प्रतिबद्धता और ईमानदारी पर बड़े सशक्त शब्दों में एक प्रतिष्ठित कहानीकार के विचार- "राजनीति जिससे हम दो चार हो रहे हैं, अगर वही राजनीति है तो यह राजनीति लेखक का कितना अपना क्षेत्र हो सकता है यह कहना और समझाना कठिन है। राजनीति केवल 'राज' की ही नीति नही होती, सामान्य जन की भी होती है वह उसे आर्थिक, सामाजिक और भौतिक और आध्यात्मिक रूप से प्रभावित करती है राजनीति उसके अपने देश और समाज की है जिससे वह उसके समाज के अंग के रूप में प्रभावित होता है या उसे प्रभावित करता है। अगर प्रभावित नहीं कर सकता तो उससे कुण्ठित होता है। फिर राजनीति उसे मोहरा बना लेती है। यह राजनीति धर्म की हो या सम्प्रदाय की, या कठमुल्लेपन की या अर्थ की। कई बार तो वह अपनी लेखकीय स्वतन्त्रता को बनाये रखकर उस राजनीति को अपने ऊपर हावी नही होने देता। उससे सीधे टक्कर लेता है।"[२] xxxxxxxxxx राजनीति का अपना एक स्वभाव होता है- "उसके पास खरीद फरोख्त की अदम्य सामर्थ्य है, वह तब तक अपने को सक्रिय रखती है, जब तक समाज उसको पूरी तरह अस्वीकार नही कर देता।"[३] राजनीति का ये अर्थ भी लिया जा सकता है "व्यक्ति या व्यक्ति समूह के द्वारा संघर्ष या सहयोग के माध्यम से सत्ता के इस्तेमाल के लिये प्रयत्नशील गत्यात्मक गतिविधि ही राजनीति है।"[४]

१.- समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम डॉ. ज्ञानवती अरोरा पृ. ४९२
२.- गिरिराज किशोर : राजनीति में लेखकों की सक्रिय भागीदारी : वैचारिकी (त्रैमासिक) पृ. ४४ जनवरी-मार्च , १९९२ संपा-मणिका मोहिनी
३.- वही : पृ. ४५
४.- डॉ. जितेन्द्र वत्स : साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना पृ. १६

'राजनीति' परिवेश का एक आवश्यक पहलू है ओर यही कारण है कि १९८०-९० तक कहानी में मानव और समाज पर राजनीतिक प्रभावों, उनके परिणामों और नीतियों को कलात्मक बनावट के साथ पिरोया गया। राजनीति की गंध साहित्य को दूषित नही करती, अपितु दोनों परस्पर संबद्ध है। "समकालीन परिवेश में राजनीति गतिविधियों का जोर शोर अधिक है। अतः साहित्य ये अनिवार्यता महसूस करता है कि राजनीति को साथ लेकर चलें।"[१]

नवें दशक का राजनैतिक परिवेश अनेकों दुखद घटनाओं और विवादों से भरा पड़ा है। पंजाब समस्या के तहत ही इंदिरा गाँधी की हत्या हुयी इस घटना ने हमारे राष्ट्रीय जीवन को, राजनीति के हर अंग को झकझोर दिया। इंदिरा गाँधी के बाद उनके बेटे 'मिस्टर क्लीन' की छवि में राजीव गाँधी ने देश की बागडोर संभाली। आरम्भिक दिनों की फुर्ती और संयत दृष्टि से लोग ज्यादा दिन प्रभावित नहीं रह पाये। बस पंजाब एवं आसाम संधियों के कारण उनकी सफलता के डंक कुछ दिन ही बज पाये कि अचानक 'बोफोर्स' तोप प्रकरण उनके राजनैतिक पतन का कारण बन गया। कानून भी अव्यवस्था का पर्यायवाची बनने लगा। सरकारें अस्थाई आयी। मिलजुलकर सरकार में तालमेल नही बन पाया मण्डल कमीशन का हंगामा इसने तो सरकार में विश्वास की जड़ें हिलायीं। नेताओं की गुटबंदी, चुनाव के लिये वोट अभियान तथा राम मंदिर बाबरी मस्जिद में ही देश की राजनीति उलझ कर रह गयी। दल-बदल ने नेताओं की साख कम कर दी। अभिनेता नेता बनने लगे। राज्यों मे राष्ट्रपति शासन, आतंकवाद, गोलियां, रक्तपात, अपरहण, फिरौतियां, आगजनी हमारे वातावरण का अंग बनने लगी। अमेरिका से खाद्यान्न लिया गया। अनाज कर्ज मांगने से ज्यादा किसी राष्ट्र के लिये और क्या शर्म की बात होगी। देश की हरित क्रांति झुलसा गयी। अन्न पाने की यह दिक्कत मरने को और बेरोजगारी युवामौत को आसान बना रही है।

राजनीति के ये मोहरे (नेता) हर समस्या का समाधान भाषण देकर कर देते हैं। 'गरीबी हटाओ' , 'बेकारी हटाओ' , 'रोजगार योजना' ये नारे इनकी प्राथमिक शिक्षा के पहाड़े बन गये हैं। रोजगार कार्यालय खुलते जा रहे हैं और रोजगार बंद होते जा रहे हैं। लोकतन्त्र अब एक सपना बनता जा रहा है। हर जगह नेतातन्त्र बनाम गुण्डातन्त्र स्थापित हो गया है। राजनीति के प्रभाव से ग्राम, नगर, औद्योगिक संस्थान, शिक्षा जगत यहाँ तक कि न्यायालय भी नही बचे रह सके है. पक्षपात, भाई-भतीजावाद पार्टीबाजी, जातीयता, क्षेत्रीयता ने अपने पांव मजबूती से जमा लिये हैं।

१.- समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम डॉ. ज्ञानवती अरोरा पृ. ५१

नवें दशक की कहानी भी समकालीन कहानी ही कही गयी हैं। समकालीन कहानी को यदि देश की राजनीतिक स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि कहानी में प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना, हलचल और क्रिया कलाप का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ा है। कहानीकार किसी भी परिवेश में रहा हो राजनीति उस पर हावी रही है।

गोविन्द मिश्र, अमृत राय, गिरिराज किशोर, काशीनाथ, सनत कुमार, माहेश्वर, इजराइल, सिद्देश, कामतानाथ, श्रवण कुमार, सतीश जमाली, ध्रुव जायसवाल, मणि मधुकर आदि ने बहुत अच्छी कहानियाँ लिखकर राजनैतिक व्यवस्था को उजागर किया है। आपात स्थिति और उसकी दमघोंटू परिस्थितियों (कर्फ्यु) में व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता के हनन और उसमें छटपटाते व्यक्ति तथा नौकरशाही के अत्याचारों पर भी समकालीन कहानिकारों की दृष्टि गयी। साहित्यकार व्यवस्था या राज्यभक्ति का आश्रय पाकर किस प्रकार उस भ्रष्ट व्यवस्था का हिस्सा बन जाता है इस का भी पर्दाफाश किया गया है। गोविन्द्र मिश्र के शब्दों में "सामाजिक यथार्थ का ढ़ंचा बहुत कुछ राजनीति ही निर्धारित करती है। हमारे रोज-बरोज जीवन पर कहर ढाने वाली यह राजनीति अपने आप में एक संस्मरण है, जीवन प्रणाली है, जिसके कायदे कानून हैं और जो समाज को मरोड़ते समय उस रूप में नही आती जिसमें वह एक धुंध के रूप में होती है।"[१] "जनता के सेवक कहे जाने वाले नेताओं की 'जनसेवा' की पोल अच्छे से खोली है इस दशक की कहानियों ने।"[२] यह तो स्पष्ट है कि लेखन में राजनैतिक परिवेश विशेष रूप से विद्यमान है। राजनीति के समावेश में समकालीन को राजनीतिक चेतना की सम्पन्न दृष्टि देकर उसके ऐतिहासिक महत्व में वृद्धि की है।

लेखक चिंतन से भी प्रभावित होता है। परिवेश पर भी राजनैतिक चिंतन का प्रभाव पड़ता है। जो राजनैतिक विचारधारा जितनी सशक्त और ठोस होती है तथा जनहित के उद्देश्य को लेकर चलती है, आम आदमी पर उसका उतना ही प्रभाव पड़ता है और वह उसी के अनुरूप नेताओं से समाज हित और देश हित की अपेक्षा रखती है। यदि चिंतन के अनुसार ही राजनेता की कथनी और करनी होती है तो आम जनता में उनकी साख बनी रहती है। वे सम्मान के पात्र बनते हैं। देश प्रगति के पथ पर बढ़ता है। आम जन में भी इससे आत्मविश्वास और सजगता उत्पन्न होती है। और देश के प्रति पूरी भागीदारी समझनी चाहिये। इसके विपरीत हमें देखने को मिलता है। राष्ट्रीय चरित्र में गिरावट आयी है।

१.- समयकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम डॉ. ज्ञानवती अरोरा पृ. ५७

२.- गिरिराज किशोर : हम प्यर कर लें (मेत्रीपद, ततैया)

आठवें दशक के अंत के कुछ वर्ष व नवें दशक के प्रारंभ के कुछ वर्षों तक 'जनवादी' और 'सक्रिय' कहानी ने सर्वहारा के शोषण और उसके मुक्ति संघर्ष का चित्रण किया। ये कहानियाँ वास्तव में साम्यवादी दर्शन के प्रभाव से युक्त थी। सर्वहारा वर्ग अपनी स्थिति में पूर्ण बदलाव चाहता था। इसके पात्र थके टूटे न होकर जुझारू और संघर्षशील थे। आम आदमी की अस्मिता आज भी नहीं बन सकी है। समकालीन कहानी ने आम आदमी को न केवल चेतना दी, उसे सक्रिय भी बनाया। अपितु उसे बताया कि यदि स्थिति में सुधार करना है तो उसे सक्रिय होना पड़ेगा। अब व्यक्ति भाग्य या भगवान के सहारे नही बैठता। उसकी विपन्नता की जिम्मेदारी व्यवस्था की है, स्वयं उसकी है, भाग्य की नहीं। संघर्ष के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहा है। राज्य के कानून पूंजीपतियों का समर्थन करते हैं। चुनाव प्रणाली सर्वहारा के लिये एक झूठा आश्वासन है। चुनाव के बाद उन्हें कोई नही पूछता। पुलिस भी शोषण करने में नहीं चूकती।. उग्रवाद का प्रभाव उन्ही कारणों से बढ़ रहा है इसका एक मात्र कारण शोषण और अन्याय है। रमेश बतरा, स्वदेश भारती, राकेश वत्स ने अर्थव्यवस्था द्वारा सताये गये व्यक्तियों की कहानियां लिखी हैं। ये कहानीकार कहानी के माध्यम से संघर्ष चेतना उत्पन्न करना चाहते हैं। आम आदमी जिससे शोषण के विरुद्ध खुला विद्रोह कर सके।

राजनैतिक परिवेश से घिरी फंसी नारी व उसके ही आंचल तले लिखी गयी ये कहानियां नवें दशक की राजनीतिक व्यवस्था को सशक्त रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती है। यह राजनीति है जो किसी को नही छोड़ती है, यह राजनेता है जो किसी का सगा नही हो सकता है। राजनीति में अव्यवस्था इस कदर बढ़ चुकी है कि संभावना कठिन है। विष्णु प्रभाकर के शब्दों में - "मैं जानता हूँ कि नेताओं की सदारत में दल के दल कर्मचारी प्रतिज्ञा लेंगे। उत्साह का ज्वार उमड़ पड़ेगा। लेकिन एक दिन फिर ज्वार-भाटा आयेगा और फिर गाड़ी पहले की तरह अपनी लीक पर चलने लगी। इस काजर की कोठरी में सभी काले हैं, शासन व्यवस्था के सबसे ऊँचे शिखर से लेकर, सबसे नीचे की ---- तक।"[१]

"कहानी सिर्फ राजनीति की कहानी हो और राजनीति से इतर जो मानवीय प्रेरणाएं हो सकती हैं इनका कोई स्थान ही नहीं रहा हो कहानी में, यह मानने को मैं तैयार नहीं हूँ। लेकिन ऐसे अतिवादी लोग हैं जो कहते हैं कि कहानी को केवल राजनीति में भी किसी एक मतवाद से संबद्ध होना चाहिये। इसे मैं सही दृष्टिकोण नहीं मानता।"[२]

१.- विष्णु प्रभाकर : सलीब (व्यवस्था विरोधी कहानियाँ)
पृ. १३९ संपादक नरेन्द्र मोहन, बदीउज्जमा

२.- अज्ञेय : कथारंग : पृ. ३३ सुरेन्द्र तिवारी

गाँव में राजनीति का विकृत रूप जा घुसा है। व्यक्ति राजनीति से जुड़े व गुण्डे बने या फिर राजनीतिक शोषण का शिकार बने। फसलें जलवा देते हैं त्राहि-त्राहि मचाने में अपनी भूमिका विशेष रूप से अदा करते हैं राजनीति की व्यवस्था गाँव में भी बड़ी भयंकर व दिल दहला देने वाली है।

राजनीति जानने के लिये अब शिक्षित अशिक्षित होना बिलकुल जरूरी नही रह गया। राजनीति इतनी भ्रष्ट हो चुकी है कि एक आम अनपढ़ व्यक्ति भी राजनैतिक चालों को समझनें लगा है। सोमारू हरिजन है, पर चुनाव प्रचार कार्यो में रहकर वह राजनीति के दाँव पेच समझने लगा है,- "मारो गोली साले ऐसे चुनाव फुनाव को --- क्या होने वाला है इस चुनाव से? ----- सब साला चार सौ बीसी का खेल है..... धोखा है.... फरेब है....।" सोमारू एक लम्बी सांस छोड़कर बोला "तुम्हारा ही कहना ठीक था मुनिया, हम सब हरिजन हैं, हरिजन ही रहेंगे। यह चुनाव की राम लीला इसी तरह हर पांच साल पर बाबू लोग धूम धाम से मनाते रहेंगे। उन्ही में से कोई राम बनेगा और कोई रावण ......पूंछ जलेगी मेरे जैसे हनुमानों की उनका तो बाल भी बांका न होगा।.... सचमुच कहीं कुछ बदलने वाला नही है। सरकारें बदलेंगी पर सरकार के लोग नहीं बदलेंगे... और हमारा भाग्य भी नहीं बदलेगा।"[१]

निर्वाचित नेता से ज्यादा तो विपक्ष का नेता शक्तिशाली होता है। विपक्ष का नेता 'स्कैण्डल' बनाने की प्रतीक्षा करता है जिससे सत्ता पक्ष पर कीचड़ उछाल कर उसकी छवि को धूमिल बनाया जा सके। इन पक्तियों में यह कथन स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगा- "यह चर्चा विपक्ष के नेता के पास भी पहुंची। इन दिनों विपक्ष की स्थिति बहुत अच्छी नही थी, जिसे लेकर वह सत्तापक्ष के नेता को बदनाम कर सकता था, यह वह अच्छी तरह से जानता था कि अपनी स्थिति को मजबूत करने का तरीका अब यह नहीं रहा कि खुद अच्छे काम करके प्रकाश में आयें बल्कि अपने विपक्षी को किसी तरह से बदनाम करके अपने को लगातार चर्चा में रखें। इस नीति का पालन करते हुये उसने चटपट एक प्रेस कांफ्रेंस बुलाकर नेता के घर चल रहे 'स्कैण्डल' की भर्त्सना की और कहा कि जो आदमी अपने घर को ठीक से संभाल नही सकता वह देश को कैसे संभाल सकता है उसे फौरन इस्तीफा दे देना चाहिये। यदि इस्तीफा नही देता तो उसके बिरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव"[२]

१.- जवाहर सिंह : मोहभंग (राष्ट्रीय विदूषक) पृ. ८०-८१ प्रथम संस्करण १९८०
२. सुरेश उनियाल : 'किस्सा एक चोर की मौत का' पृ. २३
युवा कथाकारों की प्रतिनिधि कहानियां पृ. २३ संपा विपिन जैन १९८९

राजनीति ने 'जनतन्त्र' की भी परिभाषा बदल दी है। जनतन्त्र का अर्थ जनता का तन्त्र या शासन नहीं रह गया है। जनतन्त्र अव्यवस्था और कानून भंग करने का पयार्य बन चुका है। गोविन्द मिश्र की 'जनतन्त्र' कहानी की प्रस्तुत पंक्तियाँ इसका खुलकर मानों समर्थन कर रही हीं - "यूँ अगर हर कत्ल पर सजा होने लगे तो कत्ल होने न बन्द हो जाय? बिना कत्ल के कहीं चल सकता है, फैसले कैसे होंगे मामले उलझे न बने रहेंगे। कचहरियाँ तो सालों साल लगा देंगी। लाठी किस दिन के लिये होती है? कलट्टर के टाइप बाबू कहते हैं जाने कितने कलट्टर उनकी टांग के नीचे से निकल गये, शुरु में जो आता है कहता है, फौजदारी कम करा देंगे। आजकल तो लौंडे कलट्टर बनाकर भेज दिये जाते हैं, कुछ ही दिनों में ठण्डे होकर तबादले के लिये लखनऊ दौड़ने लगते हैं, जिले की नम्बरदारी कोई आज की है...."[१]

जनतन्त्रं में सब कुछ चुनाव पर निर्भर करता है अतः चुनाव जीतने का हर संभव प्रयास किया जाता है। "क्षितिज बाबू म्युनिसिपेलिटी के मेम्बर थे और शिक्षा के इंचार्ज थे। खूब पैसा कमाया था।xxxxxxxक्षितिज बावू अब मस्खा लगाते रहते हैं। वे नही चाहते कि पोलें खुलें और अगला चुनाव गड़बड़ाय।"[२] हर अनुचित काम अधिकारी बन कर कर दिया जाता है और चुनाव से पहले उस हर अनुचित को दबा दिया जाता है।

हमारी जनतन्त्रीय व्यवस्था चरमरा रही है। 'जनतन्त्र' कहानी में स्कूली लड़के कहते हैं, "मास्टर साब्व अच्छी स्वतन्त्रता मिली, मंहगाई बड़ती जा रही है। मैं समझता हूँ कि भई स्वतन्त्रता तो अच्छी चीज़ है, अब तुम्ही लोग मारपीट करते हो तो मैं क्या करूं? xxxxxxx माटसाब, लोग कहते हैं तुमने जिसे ट्रेनिंग दी वह गधा है, तुम्हें कुछ नही आता। माटसाव बोले- 'बकने दो सालों को'। तुम अपनी गैल चलो - तुम्हें ट्रेनिंग एक दम ठोक दी गयी है।"[३] प्रजातन्त्र का जमाना है कहानी में नायक - "मुख्य अतिथि की तरफ मूँह करके कुछ कहने से पहले ही हँस पड़ा "जैसे वह एक बड़ा चुटकुला था (मुख्य अतिथि) "[४] हंसता है 'प्रजातन्त्र' और 'जन्तन्त्र' मात्र अब चुटकुला बन कर रह गये हैं।

१.- गोविन्द मिश्र : (जनतन्त्र) (धांसू) पृ. १५ द्वि. सं. १९८२
२.- वही पृ. १७
३.- वही पृ.१९
४.- गोविन्द मिश्र : (प्रजातन्त्र का जमाना) (धांसू) पृ. १०७ द्वि. सं. १९८२

काशीनाथ सिंह् की 'तीन काल कथा' में जनतन्त्र और देश की अव्यवस्था का खाका खीचा गया है। सारे देश में अकाल पड़ा है। अकाल देखने प्रधानमंत्री आ रही हैं। जंगल के बीच से नमूने के तौर पर ५० कंकाल जुटाये जाते हैं। दूसरे क्षेत्र के नेता सोचते है, कि उनका क्षेत्र अकाल से क्यो वंचित रह् गया। प्रधानमंत्री दस रुपये की साड़ी में सौ वर्ग मील की यात्रा करती हैं, "प्रधानमंत्री खुश रहती हैं, क्योंकि लोग भूखे हैं फिर भी उन्हें देखने के लिये सड़कों पर खड़े हैं जनता प्रधानमंत्री के प्रति पूरे विश्वास और विनय के साथ अकाल में मर रही है। अंत में प्रधानमंत्री का दस मिनट तक कार्यक्रम होता है।"[१]

लोकतन्त्र के जमाने में तो हर चीज़ का अर्थ बदल गया है। 'आजादी से पहले जय हिन्द' शब्द सुनते ही खून ठाठे मारता था आज इसका अर्थ शोषण हैं।"[२]

इस दशक में राजनीतिक ज्वलंत प्रश्न भी कही सांकेतिक रूप से और कही गंभीर रूप से उमड़े हैं। कथाकार उनसे बच नहीं सका है। 'नमक की सलीब' में वैलफेयर इंस्पेक्टर भानुमूर्ति कहता है कि वह श्री लंका जाना चाहता है परन्तु अब वहाँ कौन जायेगा, 'वहाँ तो तमिलियन्स के जिस्मों' को खेत में खाद की जगह मिलाया जा रहा है। ब्राह्मणवाद और गैर ब्राह्मणवाद को लेकर भी परस्पर जनता में वैमनस्य फैला हुआ है, "भानुमूर्ति नान ब्राहमन्स के प्रति असहिष्णु है जिन्होनें तमिलनाडु में अपनी सरकार बना ली है और ब्रह्मणों की तरक्की के रास्ते बन्द हो गये हैं। उन्हें नार्थ की ओर गमन करना पड़ रहा है।"[३]

आज भ्रष्ट राजनीति और व्यापक व्यवस्था में अच्छा तालमेल हो जाता है। लोग पैसे की खातिर अपने ही घर की बेटियों से कैसे पैसे कमाने का कुकर्म कर रहें है। कहानीकार विजय की ये कहानी सांठ गांठ की पोल खोलते रही हैं- "समझ गई, नार्कोटिक्स का धंधा। पर बुरा क्या है। जिस मुल्क में पैसे जैसी अपाहिज चीज आदमी की शक्ति है वहाँ कोई भी धंधा बुरा नही है। राजनीति और व्यापार की सांठ-गांठ में साम दाम दण्ड भेद......चोरी आदि सब जायज है। लोग जिन्दा बच्चों को छील उनके कंकाल निर्यात करते हैं।"[४]

१.- काशीनाथ सिंह् तीन काल कथा (प्रति कहानियां) पृ. २३ - १९८८
२.- स्वदेश दीपक : जय हिन्द (प्रति कहांनिया) पृ. ८० - १९८८
३.- विजय : 'नमक की सलीब' (बौ सुरीली तथा अन्य कहानियाँ) पृ. ३१ प्र. सं. १९८७
४.- विजय : पूर्वा, तुम्हें सिर्फ पति चाहिये (बौसुरीली तथा अन्य कहानियां) पृ. ७९ पृ.सं. १९८७

राजनेताओं के अत्याचार, मानवीय शोषण, नारी जगत की असुरक्षा आदि प्रश्न जनता के सामने है पर जनता गूंगी बनकर सुनती है क्योंकि कोई अपने हाथों कानून नही लेना चाहता। पुलिस व्यवस्था व पुलिस का सहयोग व सुरक्षा तो मात्र उन राजनेताओं के लिये हैं जो समाज में इन सभी काले कारनामों को करते हैं व करवाते हैं। बचा केवल अब पुलिस का डण्डा वो आम जनता के लिये है। 'गृह प्रवेश' कहानी में इस प्रसंग को देखिये - "वही कहानी जो बिहार के गाँव में रोज दुहरायी जाती है... जलते हुये झोपड़े.. चीखते हुये.... फरियाद करते हुये लोग..... लड़कियों का अपरहण.... बलात्कार और फिर अंधे कुंओं से सड़ाध मारती हुयी उनकी लाशें। पुलिस की भाग दौड़... नेताओं के टेलीफोन और फिर ढाक के तीन पात वाला अंत। पकड़ा जाता है लड़की का भाई-बाप...। थानेदार गालियां बकता है...हरामजादा बेटी से ही पेशा करवाता था।"[१]

राजनीति की गिरफ्त में अब मासूम किशोर वर्ग उभरता युवा वर्ग भी आ गया है। छात्रों का दिशा निर्देशन राजनेताओं द्वारा किया जा रहा है। जो कि छात्र हित में न होकर नेता के अपने हित में या पार्टी के हित में होता है युवा छात्र गुमराह किये जाते हैं। अनुशासनहीनता का एक मात्र कारण यह भी है कि किसी नेता की संरक्षता में वे मनमानी करते हैं और उन्हें संरक्षण देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। राजनेताओं की चाल का शिकार पढ़ा लिखा छात्र वर्ग है। 'सरकारी नौकरियों' में 'कोटा' और राजनीति समाचार पत्रों की एक निश्चित खबर बन चुका है। जैसे मूर्खो का साम्राज्य राजनीति संसार में है। वेसे ही ये नेता मूर्खो से वयवस्थापिका व कार्यपालिका का संचालन करवाना चाहते हैं।

सरकारी नौकरियों में पिछड़े वर्ग के लिये 'कोटा' निश्चित कर दिया गया है। पिछड़े वर्ग के बच्चों को पढ़ने के उपरांत निश्चित 'कोटा' की नोकरी अवश्य मिल जाती है, चाहे वे उस पद के योग्य हो अथवा नही। "सोचा, चार आखर पढ़ लेगा तो कोटा वाली नौकरी मिल जायेगी। लोग कहते हैं दसवीं पास करके सरकार अपने दफ्तरों में कोटा वाली नौकरी दे देती है।"[२] इसी कारण सरकारी दफ्तरों में ऐसे व्यक्ति काम कर रहें हैं जिनसे कार्यालय के काम सुचारू रूप से नहीं हो पा रहे है और आम जनता को इससे कष्ट उठाना पड़ रहा है। राजनीति में जातिवाद पर भी पर्याप्त जोर है। अपनी-अपनी जाति को राजनीति में खुला समर्थन दिया जा रहा है। प्रगति की योजनाएं बनाकर नेता खूब फल फूल रहे हैं। राजनीति अब छोटे-छोटे जाती संघों का अखाड़ा बनती जा रही है। राजनीति प्रेरित युवावर्ग ग्राम प्रधान सरपंच से कहता है,"अब तुमहारे दिन आ गये है। चमट्टो को सिर पर धर लिया है तुमने। जुलाहे लुहार, भैया बंदी में बैठ रहे हैं तुम्हारी अपनी ही खून की ऐसी बेज्जती ... है।"[३]

१.- विजय : गृह प्रवेश (बौसुरीली तथा अन्य कहानियां) पृ. १०५ वही
२.- नमिता सिंह : दर्द (नील गाय का आँखें) पृ. १२० द्र.सं. १९९०
३.- मैत्रैयी पुष्पा : हवा बदल रही है, हिन्दुस्तान, नई दिल्ली रविवार पृ. २, २९ अक्टूबर १९९०

आतंकवाद एक महामारी के रूप में फल फूल रहा है। इसका जितना उपचार किया जा रहा है उतना ही यह रोग उग्र रूप में बढ़ रहा है। इस आतंकवाद के पीछे क्या कारण हैं? सत्ता व पुलिस उसे रोक क्यों नही पाती है। पंजाब की धरती ने हिन्दी कहानी संसार को अपने अनगिनत पुत्र दिये हैं। इस दशक में आतंकवादियों की गतिविधियों ने जनमानस को भयभीत कर रखा है। पंजाब के काहानीकारों ने अपनी कहानियों में इस व्यथा को जन्म देने के कई कारणों का खुलासा किया है। कतरिसिंह दुग्गल की कहानी 'मंगलो' में इसकी कारण राजनीति को बताया गया है। "आसपास के सारे इलाकों में आतंक फैला हुआ था। तड़-तड़ गोलियां चलती थीं। बम फटते थे, आंगन सूने हो रहे थे। सुहाग लुट रहे थे। गली गली सिसकियां सुनायी देती थी। बैंक लुट रहे थे। गाँव खाली हो रहे थे।.... मंगलो सुनती और अनसुना कर देती। वह सोचती ऐसे तो हुआ ही करता है। जब राज्य बदलते हैं तो उथल-पुथल होती ही है। खून तो बहता ही है।....... क्या मजाल जो कभी किसी 'सिपाटे' ने उधर मूँह दिखाया हो, और तो और पटवारी भी कभी देखने में नही आया था।"[१] आतंकवादियों के पास अब धन की कमी रहती नही है - "जब से अमेरिका आतंकवादियों के साथ जा मिला था, उनके घर चाहे पैसे की कमी न रही हो, पर अब जब भी घर लौटता चाहे वह दूसरे सप्ताह आये, चाहे तीसरे....उसकी जेबें नोटों से भरी रहती हैं। आतंकवादी पुलिस से भी नहीं डरते, "और तो और साथ के गाँव में पुलिस ने अपनी चौकी कायम कर ली थी। पहली रात ही उसके बेटे अमेरिका, (नेता के) , और उसके साथियों ने ऐसी आंख दिखाई कि अगली सुबह पुलिस वाले अपना बोरी बिस्तर उठाकर चल दिये। गाँव-गाँव इसकी चर्चा होने लगी कोई बताये राज किसका था, आतंकवादियों का या सरकार का?"[२]

यह प्रश्न उभरता है कि आतंकवाद समाप्त क्यों नहीं होता? किसके आँचल तले यह फल-फूल रहा है? आतंकवादी हम सभी से क्या चाहते हैं? आतंकवादी पुलिस से भी क्यों नहीं डरते? इसका संरक्षक कौन है ये हम सभी से क्या चाहते हैं? आजादी कितने प्रयत्नों बाद मिली पर ये आतंकवादी अब पुनः अपने ही देश को क्यों गुलाम बनाना चाहते हैं?

हमारे भारतीय साहित्य पर राजनीति हावी हो चुकी है। जीवन के हर क्षेत्र में राजनति छा गयी है। कहानियों में राजनैतिक परिवेश का महत्वपूर्ण स्थान है। इस दशक की कहानियाँ किसी न किसी राजनैतिक परिस्थितियों का परिणाम है। संक्षिप्त रूप में राजनैतिक परिवेश- विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में - "हम लोग जो राजनीति को दिन रात कोसते रहते हैं, राजनीति से कुछ कराने की आशा लगाये रहते हैं। कवि की जन्मशती मनानी है, तो ऋतु मंगल उत्सव करना है, तो लड़के की शादी का भोज देना है, तो मरे व्यक्ति की अन्तयेष्टि करना है तो राजनीति की उपस्थिति की कामना जरूर भीतर

१.- कत्तरिसिंह दुग्गल : मंगलो : सारिका पृ. ६ - - १५ नवम्बर १९९०
२.- कत्तरिसिंह दुग्गल : मंगलो : सारिका पृ. ६ - - १५ नवम्बर १९९०

रहेगी। अमुक नेता जी आये। अपने आप हम कुछ नही कर पाते ऐसा क्यों? राजनीति धन से नहीं चलती, केवल मत से नही चलती, वह तन्त्रों यन्त्रों से भी नहीं चलती वह चलती है उस उपेक्षा से जो राजनीति की चर्चा नही करती। राजनीति को कभी कभार एहसास कराती है कि वह अंततः निःसार है। वह मनुष्य के लिये साधन मात्र है। वह जीवन के किये साध्य नही है, क्योंकि वह समूचा जीवन हो जाये तो सब कुछ विरस हो जाये, जैसा आज हो रहा है।"[१] मिश्र जी का उपर्युक्त मत आज की प्रासंगिकता में अत्यंत सार्थक है। उसे इतना ही महत्व दिया जाये जितना अपेक्षित है। सुरक्षा व्यवस्था कायम रखने की बजाय यदि वह तीज त्यौहार, शादी ब्याह में भी घुसे तो यह उसकी निरर्थकता है। उसे सार्थक बनाने को देश को मजबूत होना चाहिये।

१९८०-९० तक कहानियों में राजनीति के समस्त बिन्दुओं का अध्ययन करने उपरांत निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि राजनीति राज्य संचालन की नीति न रहकर विशुद्ध व्यवसाय बन गयी है। जिसका प्रयोग राजनेता या राजनीति अपने स्वार्थ में कर रही है। यह प्रजातन्त्र या लोकतन्त्र का दुर्भाग्य है। राजनीति का संचालन ऐसे लोगों के हाथ में पहुंच चुका है जो भ्रष्ट हैं, देशहित जैसा महान लक्ष्य उनके समक्ष न होकर क्षुद्र स्वार्थों ने जिन्हें घेर रखा है।

राजनीति के ज्वलंत प्रश्न सिर उठाये खड़े हैं, अपना उत्तर माँग रहे हैं। परन्तु ये उत्तर किसी के पास नही है। धर्मनिर्पेक्षता, सम्प्रदायवाद, जातिवाद ने देश को टुकड़ों-टुकड़ों में बांट दिया है। आतंकवाद का भय लहू बन कर बह रहा है। अपनी धरती अब पराई होती जा रही है।

राजनीति का व्यवसायीकरण हो गया है। लेन-देन, क्रय-विक्रय जहाँ बुरा नही माना जाता। स्वार्थो के लिये कुछ भी किया जा सकता है। राजनीति में नैतिकता का अब कोई महत्व नही रहा। पुलिस व्यवस्था पर से भी इसका नियंत्रण हट चुका है। पुलिस जन सुरक्षा के स्थान पर राजनीति के निहित स्वार्थो में लगी है। छात्र जगत में भी राजनीति ने प्रवेश करके उस भोले वातावरण को दूषित कर दिया है। छात्र शिक्षा प्राप्त करने की अपेक्षा नेतागिरी, दादागिरी अधिक करने लगे हैं। सरकारी नौकरियों में 'कोटा नीति' ने छात्र जगत को और अधिक असंतुष्ट कर दिया है।

१.समकालीन कहानी यथार्थ के विविध आयाम - डॉ. ज्ञानवती अरोरा

चुनाव जो कि लोकतन्त्र की आधारशिला हैं, अब ईमानदारी से नही होता। चुनाव पैसा, बल व शक्ति के आधार पर जीते जाते हैं। भगवान ही जाने अबलोकतन्त्र कितने दिन और सांस गिनेगा। बार-बार होने वाले चुनावों ने भी देश की आर्थिक स्थिति को गिराया है।

समाचार पत्र राजनीति और राजनेता की चर्चा जोरदार शब्दों में करते हैं। कुछ पत्र सत्तापक्ष का समर्थन करते हैं और कुछ पत्र छिद्रान्वेषण का कार्य करते हैं। केवल दोषारोपण ध्येय रहता है बस ये समझिये कि जनमत को गुमराह कर रहे हैं। राजनीति हमारे समकालीन परिवेश पर, हमारे साहित्य पर किस हद तक छा चुकी है इसका अनुमान इस दशक की कहानियों को पढ़कर लगाया जा सकता है।

'संस्कृति' शब्द आजकल अत्यंत व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस शब्द की व्याख्या धार्मिक, साहित्यिक, एवं इतिहास वेत्ता विद्वानों ने अपने-अपने दृष्किोण के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। "संस्कृति धार्मिक विद्वानों का विचार है कि संस्कृति - सम् (उपसर्ग) + कृ (धातु) से सुट् का आगमन करके (क्तिन) प्रत्यय लगाकर बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ है संशोधन करना उत्तम बनाना सुन्दर या पूर्ण करना या परिष्कार करना" [१] श्री कारपात्री जी ने संस्कृति की व्याख्या करते हुये लिखा, "लौकिक, पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक अभ्युदय के उपयुक्त देहेन्द्रिय मन, बुद्धि, अहंकार आदि की भूषण भूत सम्यक् चेष्टाएं एवं हलचलें ही संस्कृति है।"[२] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में -"संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं कीसर्वोत्तम परिणति है।"[३] संस्कृति के बारे में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है- "संस्कृति मन और मस्तिष्क का संस्कार परिष्कार करने वाली मानव जाति का श्रेष्ठ सम्पादन करने वाली है, संस्कृति को प्राप्त करने के लिये जीवन के अंतस्थल में प्रवेश करना पड़ता है।"

अंग्रेजी में संस्कृति शब्द (CUlture) कहलाता है। यह कल्चर "लैटिन मे (cultura) कुलतुरा शब्द से निकला है। Culture में वही धातु है जो 'एग्रीकल्चर' में है।"[४] इसका अर्थ पैदा करना व सुधारने से लिया जाता है। मैलिनोव्हीस्की ने कल्चर की परिभाषा इस प्रकार दी - "पैतृक निपुणताएं, श्रेष्ठताएं, कलागत प्रक्रिया, विचार, आदतें और विशेषताऐं सम्मिलित रहती हैं। अतः संस्कृति का संबंध दर्शन और धर्म से लेकर सामाजिक संस्थाओं तथा रीतिरिवाजों तक मानव जीवन की समस्त महत्वपूर्ण विचार प्रणालियों से है।"[५]

संस्कृति का संस्कारों से अत्यंत घनिष्ट संबंध है। सामयिक जीवन की आंतरिक मूल प्रवृत्तियों का सम्मिलित रूप ही संस्कृति है। सभ्यता बाह्य रूप है और संस्कृति आंतरिक रूप है। अतः किसी देश की संस्कृति से उस देश के रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, ज्ञान-विज्ञान, परम्परागत अनुभव जीवन यापन, कलाप्रेम, रुचि, धर्म, दर्शन आदि का बोध होता है।

१.- कल्याण - हिन्दू संस्कृति अंक पृ. २४

२.- वही पृ. ३५

३.- विचार ऐर वितर्क पृ. १८१

४.- भारतीय संस्कृति की रूप रेखा पृ. १

५.- Eneyelopaedia of social sience Vol III. VI Page. 621

"संस्कृति शब्द का अर्थ 'सुरुचि' या 'परिष्कृति' भी मान लिया जाता है। संस्कृति का अर्थ सामूहिक जीवन की उत्कृष्ट उपलब्धियां भी माना गया है।"[१] मानव विज्ञान में 'संस्कृति' शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। चिंतन, मनन, आचार विचार और मान्यताओं को भी संस्कृति के अंतर्गत लिया जाता है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में - "संस्कृति का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म एवं जटिल है। सामान्य अर्थ में संस्कृत अवस्था का नाम ही संस्कृति है- अर्थात् संस्कृति मानव जीवन की वह अवस्था है जहाँ उसके प्राकृत रागद्वेषों में परिमार्जन हो जाता है। यह परिमार्जन, यह संस्कार उसे अपनी स्वभावगत इच्छा-आकांक्षाओं, प्रवृत्ति-निवृत्तियों के उचित सामंजस्य द्वारा करना पड़ता है। xxx मनुष्य को राग विराग में संयम और समन्वय की आवश्यकता पड़ती है। उनको व्यष्टि तल से उठाकर समष्टि तल पर लाना होता है। अपने को दूसरे की सापेक्षता में देखना पड़ता है। यही संस्कृति का जन्म होता है।xxx संस्कृति की साधना के लिये जीवन के अंतस्तल में प्रवेश करना होता है। स्थूल आवरण के पीछे मानवता का जो सत्य, शिव और सुन्दर रूप छिपा होता है, संस्कृति उसको ही पहचानने का प्रयास करती है। जड़ता से चैतन्य की ओर, शरीर से आत्मा की ओर, रूप से भाव की ओर बढ़ना ही उसका ध्येय है। यह संस्कृति की आंतरिक धारणा है। संस्कृति के बहिरंग तत्व है- आचार-विचार, विश्वास परम्पराएं, शिल्प कौशल और माध्यम है- कला, साहित्य आदि।"[२]

भारतीय संस्कृति विश्व विख्यात रही है। पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय संस्कृति की विशेष प्रशंसा की है। वर्तमान में थोड़ा बहुत परिवर्तन हो चुका है। प्राचीन भारतीय संस्कृति का यह रूप जिस पर विदेशी विद्वान मोहित हो उठे थे, आज के समाज में नहीं है न ही हमारा समाज संस्कृति से अवांछित को निकाल पाया है और न ही विदेशी संस्कृति से वांछित प्राप्त कर सका। इस मिश्रित संस्कृति नें समाज को कहीं का नही रखा। पुरानी पीढ़ी अभी परम्परित ढ़ंग से चल रही है यद्यपि वह रूढ़िवादी नहीं है। युवा पीढ़ी नये संस्कारों को ग्रहण कर रही है, पूर्ण रूप से ग्रहण नही कर पायी है। --------------- वर्तमान युग संस्कृति की दृष्टि से संक्रमण का युग है।

कार्लमार्क्स, जुंग एवं फ्रायड ने संस्कृति एवं उसके सहयोगी अंगो के बारे में अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं। मार्क्सने 'संस्कृति' और उसके परिवर्तन के कारण बताते हुये कहा है किप्रचलित नैतिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक और राजनैतिक यहाँ तक कि कलात्मक धारणाएं और मान्यताएं समाज के आर्थिक ढ़ाचे पर निर्भर करती है। वैज्ञानिक प्रगति के कारण उत्पादन के साधन बदलते रहते है। नई उत्पादन प्रणाली को व्यवस्थित ढ़ंग से चलाने के लिये एक नयी समाज व्यवस्था निर्मित होती है। यही कारण है कि पुरानी आर्थिक व्यवस्था पर आधारित सारे सांस्कृतिक मूल्यों का एक ढेर हो जाता है। नयी आर्थिक व्यवस्था की बुनियाद पर नव संस्कृति का निर्माण आरंभ हो जाता है।

१.- समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम डॉ. ज्ञानवती अरोरा पृ. ६१
२.- डॉ. नगेन्द्र : साहित्य का समाज शास्त्र पृ. ८

युंग सांस्कृति परिवर्तन की व्याख्या इस प्रकार करते है- "सांस्कृतिक परिवेश में परिवर्तन होते रहते हैं। साहित्य में परिवेश अवश्य भावी रूप से प्रतिबिम्बित होता है। xxxxxxx समय-समय पर उन व्यक्तियों में उन्माद की लहर उठा करती है जो एक दीर्घ अवधि से अपनी संस्कृति की सीमाओं में बंदी थे। परिवेश परिवर्तन से संस्कृति परिवर्तन का आधार बन जाता है।"[१]

फ्रायड ने मानव मन को संस्कृति का आधार माना है जबकि समाज शास्त्रियों का मत है कि संस्कृति से मानव व्यक्तित्व बनता है।"[२] मैलिनोवस्की फ्रायड के मत से सहमत नहीं है। मैलिनोवस्की कहते हैं "सांस्कृतिक मूल्य का एक प्रभाव से स्थायी भाव ही है, जिन्हें परम्परा तथा संस्कृति के प्रभाव के कारण सर्वसम्मत रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।"[३]

परिवेश के अनुकूल ही मूल्य बनाये या परिवर्तित किये जाते है, अन्यथा 'मूल्य संकट' रचनाकार के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। जैसे समकालीन कहानी में 'मूल्य संकट' का अहसास हमें कहानीकारों में दिखाई दे रहा है। निर्मल वर्मा की 'एक दिन मेहमान' व कमलेश्वर की 'तलाश' मूल्य संकट और मूल्यों के अन्वेषण की कहानियाँ हैं।

१.- Jung two essays on Analytical Psychology Vo. 7. p. 18

२.- समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम पृ. ६३

३.- Malinavsky : Sex & Represesion in savge society p.162

मानव विज्ञान के अध्येताओं ने संस्कृति का सुस्पष्ट स्वरूप इस प्रकार निधारित किया **डॉ. त्रिलोक चंद के अनुसार-** " उपकरण अथवा शिल्प तथ्य, कार्यकलाप अथवा सामाजिक तथ्य विचार और भाव अथवा मानसिक तथ्य। दैनिक जीवन में उपयोग की वस्तुओं को उपकरण कहा है। कार्यकलाप में समाज में व्यक्तियों के प्रत्यक्ष आचरण का समावेश रहता है। विचार तथा भाव के अंतर्गत मानव सोच का अध्ययन किया जाता है। × × × पहला अंग यानी उपकरण की सभ्यता कहा गया है। कार्यकलाप तथा विचार और भाव को संस्कृति कहा गया है। "[१] मैकाइवर का मत है। " Our Culture is what we are Our Civilization is what we use"[२] (जो हम हैं वह हमारी संस्कृति है जिसका हम उपयोग करते हैं वह हमारी सभ्यता है)

साहित्य में संस्कृति के तीसरे अंग अर्थात् मानव के उच्च विचारों को जो संसार का उन्नयन करते हैं उन्ही का समावेश रहता है और उसी की कालजयी साहित्य के अन्तर्गत गणना की जाती है। हिन्दी कहानियों ने भी हमारी सांस्कृतिक विरासत को प्रस्तुत किया है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' उदाहरण स्वरुप ले सकेत हैं।

हिन्दी साहित्य में अव सांस्कृतिक मूल्यों में गिरावट आ गयी है। समकालीन कहानी में मूल्यों का संक्रमण स्पष्टदृष्टिगत होता है। मूल्य आयातित होते हैं, बनते है, टूटते हैं और नये मूल्यों का अन्वेषण होता है। वर्तमान कहानी की गहरी चिंता सांस्कृतिक और अस्तित्वगतभी है। अपने राष्ट्रीय जातीय और सामाजिक संस्कारों को सुरक्षित रखना रचना का धर्म है। इसके साथ ही विश्व मानवता से भी नाता जोड़ा जाता है। 'वुसुधैव कुटुम्वकम्' हमारी संस्कृति की विशेषता रही है। भारतीय भूमि में अनेक जातियाँ बाहर से आयी और यहीं बस कर भारतीय हो गयी। विश्व बंधुत्व जैसी उदात्त भावना उभर कर दृढ़ हो गयी। परन्तु इसके साथ ही प्रत्येक देश अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं की अभिव्यक्ति भी कर रहा है। साहित्य अपने अंतिम रूप में कितना भी सार्वभौमिक हो परन्तु अपने देश की संस्कृति को कभी भी छोड़ नही पाता है। संस्कृति में साम्प्रदायिकता के लिये स्थान नही है। जबकि किसी देश विशेष के रीति रिवाजो, आदतों धर्म विधि निषेध आदि के संकेत स्पष्ट रूप से मिलते हैं। एक संस्कृति के अभाव में राष्ट्रीय चरित्र नही बन सकता है। हमारी भारतीय संस्कृति बड़ी जटिल है, जिसे समझना कठिन कार्य है इसका कारण यह है कि इसमें अर्न्तविरोध अधिक है। सबसे बड़ी बात यह है कि यह

---

१. डॉ. त्रिलोक चंद. परिवेश मन और साहित्य : पृ. ४०

२. Maciver & Page : Society : An Introductory Analysis

धर्म को सभी तत्वों से प्रमुख मानकर चलती है। एक ओर धर्मनिरपेक्ष समाज की स्थापना करना और दूसरी ओर हिन्दुत्व को तलाशना यह असंगति की स्थिति पैदा करता है। भगवान दास वर्मा के शब्दों में, "भारतेन्दु और द्विवेदी काल में लोकोन्मुखी चेतना जाग्रत हुयी। प्रसाद, प्रेमचन्द, निराला के साहित्य में व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिली और सामाजिक सन्दर्भो के माध्यम से समाज की महत्ता सिद्ध की गयी। प्रेमचन्द ने भारतीय संस्कृति की पुर्न प्रतिष्ठा की। प्रगतिवादी साहित्य ने राजनीतिक चेतना जाग्रत की।"[१]

वर्तमान रचना दृष्टि समता स्वतन्त्रता और मानव गरिमा को लेकर चली है। वह शोषण का विरोध करती है। शोशित व्यक्ति के संघर्ष का चित्र प्रस्तुत कर रही है। नयी रचना दृष्टि ने भाषा को नया संस्कार दिया, प्रतिमानों के तेवर बदल गये। वर्तमान साहित्य एक अराजकता का अनुभव कर रहा है जिसमें उसे नई संस्कृति विकसित करनी पड़ी है। जो प्राचीन संस्कृति से भिन्न है। परन्तु अपनी संस्कृति और अस्तित्व को सुरक्षा देना साहित्य का प्रथम दायित्व है।

आज के युग को हम संस्कृति की दृष्टि से विघटन का युग कह सकते हैं। विघटन शब्द का अर्थ है टूट जाना। परन्तु टूटने का अर्थ सदा विनाश ही नही होता। टूट-फूट द्वारा नव निर्माण भी हो सकता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में मनुष्य अपनी एक सामान्य संस्कृति पाने के लिये बहुत व्याकुल है। उसने उसे अभी तक पूरी तरह पाया नहीं है: पर उसे पाने के लिये व्यग्र भाव से उद्योग कर रहा है। यह मार काट नोंच खसोट और झगड़ा टंटा भी उसी प्रयत्न के अंग है।

जिन स्थितियों को सांस्कृतिक विघटन माना जा रहा है, हो सकता है कि वह संस्कृति के नवनिर्माण की शुरुआत हो। सांस्कृतिक विघटन से संबद्ध शब्द 'सांस्कृतिक एकीकरण' है। 'इंटरनेशनल एन साइक्लोपीडियां' ऑफ दी सोशल साइंसेज' (भाग ७ पृ. ३७४) के अनुसार- "सांस्कृतिक एकीकरण, संस्कृति, संस्कृति की उस स्वस्थ दशा का परिचायक है जिसमें सांस्कृतिक मूल्यों, परम्पराओं तथा आदर्शो के विषय में मतैक्य होता है। सांस्कृतिक एकीकरण से तात्पर्य किसी संस्कृति के विभिन्न अंगों की पारस्परिक संबद्धता से हैं। एकीकरण का गुण संस्कृति में सम्पूर्णता में भी प्राप्त नहीं होता, परन्तु साथ ही यह कभी अनुपस्थित भी नही रहता है।

संस्कृतिक संक्रमण से अभिप्राय है कि जब दो संस्कृतियों में परस्पर आदान प्रदान होता है तो संस्कृति में परिवर्तन निश्चय ही होता है। पश्चिमी संस्कृति की भारतीय संस्कृति से टकराहट होने पर भारतीय संस्कृति में बदलाव आया, उसे हम सब जानते हैं। संस्कृति में परिवर्तन दो रूपों में होता है।

---

१. डॉ. भगवान दास वर्मा परम्परा और आधुनिकता : वैचारिकी (त्रैमासिक) पृ. ४५ १९८७ अक्टूबर-दिसम्बर सम्पा-मणिका मोहिनी

संस्कृति के वाहक मनुष्य होते हैं। भारतीय संस्कृति को पश्चिमी संस्कृति के कारण संकट उठाना पड़ा और जो बदलाव आये अत्यंत तीव्र गति से, अनियमित ढंग से। यद्यपि भारतीय संस्कृति बड़ी पुरानी थी। इसका कारण था अंग्रेजों का प्रभुत्व। पुरातन संस्कृति की उपेक्षा हुयी और नवीन का स्वागत। नेतृत्व में भी परिवर्तन आते हैं। युवा वर्ग का महत्व बढ़ गया। ऐसे समय में देशीयता या स्थानीय भावना की प्रवृत्ति अपनी पुरातन संस्कृति की रक्षा करने का प्रयास करती है। राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त एवं जयशंकर प्रसाद ने भारत के स्वर्णिम अतीतके गान इसीलिये गाये थे। किसी भी रचना में महत्व लेखक की जीवन दृष्टि से अधिक उसके सांस्कृतिक परिवेश का होता है। इसी सांस्कृतिक परिवेश में लेखक जीवनदृष्टि और मूल्य बोध विकसित होते हैं।

आजादी के बाद नया भारत बना। साहित्य की विद्या कहानी में भी आजादी के बाद कई परिवर्तन दिखाई दिये। आधुनिकता या नवीनता का बोध अस्पष्ट सा था। युवा वर्ग बेकार व बेरोजगार था। भ्रष्टाचार से पीड़ित था। सभी काम सरकारी फाइलों में दबे थे। इसका प्रभाव संस्कृति पर पड़ा। नवयुवक अपनी पुरानी संस्कृति को इस माहौल में अनुपयुक्त समझने लगे। सांस्कृतिक मूल्य टूटे, जिससे अनाचार को बढ़ावा मिला।दूसरी ओर सरकारी कर्मचारी अपनी ही सरकार से असंतुष्ट रहने लगे।

आजकल 'सांस्कृतिक विघटन' शब्द का प्रयोग अधिक किया जा रहा है जिससे अर्थ लिया जा रहा है सांस्कृतिक पतन अथवा विनाश। सांस्कृतिक विनाश का अर्थ बताते हुये डॉ. पुष्पा बंसल कहती है, " जब एक जाति की पूर्ण पराजय की अवस्था में उसके आंतरिक स्थापित मूल्यों का पूर्णतया निषेध कर दिया जाय। सांस्कृतिक पतन यह अवस्था होती है जबकि एक आचरण संहिता तथा चिंतन को दबाकर दूसरा चिंतन उस पर हावी हो जाये। सांस्कृतिक विघटन उस समय होता है जबकि स्थापित आचार व मूल्यों के स्थायित्व पर प्रश्न चिन्ह लग जाय और नैरन्तर्य व स्थायित्व का पूर्ण नाश हो जाये।"[१]

हमारी संस्कृति के दूषित होने का कारण है- कर्त्तव्य के स्थान पर अधिकारों को प्रमुखता मिलना। इसी से शोषण का आरंभ हुआ। दीनता एवं विनम्रता के साथ पर 'अहं' का जन्म हुआ। सम्पूर्ण समाज शोषक और शोषित वर्ग में विभाजित हो गया है। धनी, निर्धन का शोषण करता है। इस विकृति का कारण आधुनिकता या अंग्रेजी संस्कृति को पूर्ण रूप से नहीं कहा जा सकता है, आंशिक तौर पर तो यह सत्य ही है। आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिक जीवन में लोगों की रुचि बढ़ गयी। भोगवादी संस्कृति विकसित हो रही है।

---

१. डा. पुष्पा बंसल : हिन्दी गद्य का विद्या वैविध्य पृ. २३ प्र. सं. १९८७

नई संस्कृति के निर्मित होने के उपर्युक्त कारण ही प्रमुख कहे जा सकते हैं। समकालीन मानव की इस नई संस्कृति की कुछ विशिष्टताएं है। उसकी आकांक्षाएं अत्यधिक बढ़ गयी है। स्वतन्त्रता की भावना प्रबल हो गयी है। समाज का हर वर्ग समान अधिकारों की बात करता है। अवर्णो को विशेष सुविधाएं दी जा रही हैं।

फ्रायड ने कामवासना को ही मानव को मूल वृत्ति माना और उसके अन्तश्चेतनावाद ने नई मानसिकता को जन्म दिया। फ्रायड ने बताया कि मानव मानसिकता उसके वासनाजन्य संस्कारों का ही परिणाम है। उसके प्रत्येक कार्य वासना पर आधारित है। इसी कारण समाज में स्त्री पुरुष संबंधों में बदलाव आया है। इसका प्रभाव तत्कालीन कहानी ने ग्रहण किया है।

सैकड़ों वर्षो तक मुगलों एवं अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों का राजनैतिक शोषण अभाव, भूख, बेकारी, गरीबी, भ्रष्टाचार अव्यवस्था ने संस्कृति को मलवे का ढेर बना दिया है। इस संबंध में शिव प्रसाद सिंह कहते हैं "आज का मानव सभी प्रकार की नैतिक आस्थाओं से हीन है। उसके सामने न व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का प्रश्न है, न सामाजिक। आत्मा की भूख का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता।" अनाचारों एवं अत्याचारों से तो वर्तमान में जनता निराश हो चली है। एक नई चेतना का संचार हो तभी भारतीय संस्कृति अपने वास्तविक रुप में पुनः साहित्य में स्थापित हो सकती है।"[१]

संस्कृति परम्परा और नैतिकता आज अर्थहीन शब्द है। वर्तमान और 'क्षण' को जीने की ललक है। गोविन्द मिश्र की 'इन्द्रलोक' की नायिका भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिये नैतिकता के पुरातन मूल्यों को नकारती है कुछ साहसिक प्रयोग भी प्रस्तुत कहानी में हैं जिनमें निषेधों को भी लिया गया है, वर्जनाएं भी है और कुरुप सत्य भी है जो कि विशिष्ट अनुभव बना है। मानव जीवन की आस्थाएँ और ऊँचे आदर्श इनमें नही है। ये तो मानव पीड़न की कहानियाँ है। वर्तमान कहानी न तो शास्त्रीय है न ही रोमानी। न ही नये मूल्यों की स्थापना करती है। बस ये है आज के जीवन अनुकूल है। जीवन के दोहरे मूल्य भी इस कहानी में नही है। बनावटीपन तो बिलकुल भी नहीं है।

---

१ शिव प्रसाद सिंह - आधुनिक परिवेश और नव लेखन

साहित्य में आदर्श के स्थान पर 'यथार्थ' की अभिव्यक्ति नई संचेतना का प्रमाण है। एक नवीन संस्कृति के निर्माण की व्याकुलता है। परिवर्तित जीवन परिस्थितियों के स्वीकृत मूल्य ही व्यवहार में अपनाये जाने पर, चिन्तन के स्तर पर आकर सांस्कृतिक मूल्य बन जाया करते हैं। इस प्रकार संस्कृति की गतिशीलता बनी रही है। नवें दशक की कहानियों में प्रेम के पुरातन आदर्शो की अपेक्षा व्यवहारिकता को महत्व ज्यादा मिला है। ऐसा भी नहीं है कि वर्तमान कहानी अपने रस्मों रिवाज तीज त्यौहार आदि को भूल गयी हो। त्याग और बलिदान ये शब्द महत्वहीन हो गये हैं। स्नेह सहानुभूति और प्रेम के अर्थो में थोड़ा परिवर्तन आ गया है।

रवीन्द्र वर्मा की 'प्रेम कहानी का एक अध्याय' की नायिका अपने दो प्रेम प्रकरणों को अनुचित नहीं मानती और कोई 'गिल्ट' भी उसमें नहीं है। "मधु हमारा शरीर हमारा नहीं है। आओं हम ईश्वर को चकमा दे और एक दूसरे के शरीर में छिप जायें।"[१] यह सांस्कृतिक बदलाव ही कहेंगें। (पुरुष प्रधान देश में पुरुषत्व के घिनौने नमूने प्रस्तुत कर रही है।) धन, सम्पन्नता और वैभव को ही जीवन का सबसे बड़ा मूल्य मान लिया गया है।

शालिग्राम शुक्ला की 'क्रीत' का नायक कमल सामंत अपार धन सम्पत्ति, पाकर जड़ हो जाता है। मानवीय संवेदना मर जाती है। पत्नी, पुत्री और दामाद के लिये उसके मन में कोई दर्द नहीं है। "अपनी घोर आर्थिक सफलता ही अर्थहीन हो चले अस्तित्व के मूल में थी, इससे वे बेखबर थे। इस सफलता के पीछे वे भूमि से इतने ऊपर उठ गये थे कि उनकी जड़े सूखती चली जा रही थी। उन्हें अपने अकेलेपन पर अपनी नैतिक और आध्यात्मिक दरिद्रता पर गर्व था। उनके लिये न तो ईश्वर की कोई महत्ता थी न ही मनुष्य की। किसी दूसरे से किसी भी प्रकार का रागात्मक संबंध स्थापित करने की उनकी क्षमता कभी की जलकर खाक हो चुकी थी।" [२]

भारत जैसे देश में नारी शब्द का रुपान्तरण हो चुका है। 'यंत्र नार्यस्ते पूज्यत्ते रमन्तेतत्र देवता' सुक्ति का मूल्य अब कितना निकृष्ट हो चला है। मृणाल पाण्डे की कहानी 'उमेश जी' में देखें --

---

१. रवीन्द्र वर्मा : प्रेम कहानी का एक अध्यायः इन्द्र प्रस्थ भारती (त्रैमासिक) हिन्दी आकादमी दिल्ली पृ. २३

२. शालिग्राम शुक्ल : क्रीत मासा (त्रैमासिक पृ. ३६)

नायक उमेश जी एक नेतानुमा व्यक्ति हैं जो कि नौकरी की जरुरत मंद एक लड़की की माँ को उसकी बेटी के लिये नौकरी दिलाने का आश्वासन देते हैं लड़की न चाहने पर भी जाती है और दफ्तर मे उमेश जी से मिलती है- "ये नौकरी के लिये बिना कोशिश नौकरी पाना चाहती है।" उमेश जी बोले। × × × × × × (समझ गयी) उमेश जी की ऊँगलियों ने अचानक मेरे बालों को स्पर्श किया मेरा बदन गनगना उठा। बगल के फूलदान से एक गुलाब निकाल कर उमेश जी ने अलसाई ऊँगलियों से मेरी वेणी में यूँ खोंस दिया था। × × × × " बहुत सुन्दर बाल हैं तुम्हारें। " " क्या-क्या कर सकती हो?' उनका ऐसा चेहरा लग रहा था कि बस × × × × उनका सुर मेरी कनपटियों पर भाप सी छोड़ने लगा। "घर से कैसे आयी "।[१] उमेश जी उस लड़की के पिता की उम्र के थे। बेटी जैसी कुमारी कन्या से यह व्यवहार नैतिक पतन की घोर पराकाष्ठा है। पुलिस के पास तो कोई सांस्कृतिक विरासत, नैतिक मूल्यों जैसे शब्द बचे ही नही है। वे तो रक्षक की जगह भक्षक बन गये हैं। नारी अस्मिता को पुलिस वालों ने भी दूषित किया है। उदय प्रकाश की 'थर्ड डिग्री' कहानी उदाहरण है। पुलिस के महिलाओं पर किये गये अनाचार तो रोंगटे खड़े कर देते हैं। हमारी संस्कृति के मूल्यों में गिरावट का कारण राजनेता, अफसर, फेक्ट्री मालिक, कॉलिजो के समिति प्रभारी, पुलिस, और टुटपुंजिया देशी गुण्डे हैं।

उपर्युक्त विवेचित कहानियों द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी संस्कृति का स्वरुप बदला है। अभी तक बिडम्बना यह थी कि विचारणा और अवधारणा के स्तर पर दोहरे रुप में हम जी रहे थे। परन्तु इस दशक के कहानीकार ने मूल्य परिवर्तन को निर्भीकता से अनुकूल शब्दावली में कहा है। चाहे उसे अश्लील ही क्यों न कहा जाय। भाषा की श्लीलता भी हमारी संस्कृति की एक विशेषता रही है परन्तु समकालीन कहानी के कथ्य के अनुसार उसका रुप और तेवर तथा मुहाबरे बदले हुये हैं संक्षिप्त सार यह है कि भाषा मुँह फट हो गयी है।

नई पीढ़ी रुढ़ संस्कारों से मुक्त रही है। संस्कृति का वही रुप उसे स्वीकार्य है जो आज उपयुक्त है। आँख मूँद कर संस्कृति के नाम पर वह कुछ भी मानने को तत्पर नहीं है। इसका कारण उसका मुक्त चिंतन है जहाँ मात्र जीवन की वर्जनाएं ही नही है, व्यक्ति का अपना अस्तित्व भी है। वह स्वयं अपना जीवन अपने ढ़ंग से जीना चाहता है। हर बात जो उसकी निजी है उसमें परिवार या

---

१. मृणाल पाण्डे : उमेश जी : कामकाजी महिलाओं की कहानियां (संकलन) सम्पादकः डॉ. ज्ञान राजेन्द्र पृ. 136

समाज की दखलंदाजी उसे रुचिकर नहीं लगती। इसका यह अर्थ भी नहीं लगा लेना चाहियें कि उसमें सामाजिकता नही है। सामाजिकता पक्ष को वह नकारती नही है। उसकी प्रबुद्ध चेतना में यह स्पष्ट है कि समाज को या सामाजिकता को नकारने का अर्थ स्वयं अपने ही जीवन को अल्यवस्थित बना देती है। अतः संस्कृति को समयानुरुप बदलना कुछ अनुचित नही है, यदि उसका स्वरुप बना रहता है।

सांस्कृतिक विघटन के युग में 'कोशिश' कहानी की नायिका पति के अमेरिका प्रवास पर सिद्धार्थ की यशोधरा की भाँति रोती बिलखती है।"[१] वह अपने पति वियोग में रीतिकालीन नायिका बनी हुयी है।

१९८०-९० तक की कहानियों में सांस्कृतिक विघटन की झलक तो दिखाई ही दे रही थी। सांस्कृतिक विघटन हुआ है परन्तु कहानीकारों ने विघटन को चित्रित करते हुये भी सही दिशा में मुड़ने के स्पष्ट संकेत दिये हैं। इस दशक की कहानी में मूल्य स्थापना की अपनी दृष्टि है और रचना धर्मिता में सामाजिक प्रतिबद्धता के दायित्य का निवहि सफल रुप से करने में समर्थ हैं। सत्य तो यह है कि यथार्थ के विद्रूप को दिखाने का अर्थ सांस्कृतिक विघटन नहीं होता। रचनाकार की सृजन धर्मिता संस्कृति की विरुपता को रचना में कलात्मकता से प्रस्तुत करके संस्कृति के उस रुप की निर्मित चाहता है। जहाँ व्यक्ति समाज की गरिमा और प्रतिष्ठा का उत्कर्ष हो।

नवें दशक के समकालीन परिवेश में नारी कहानी संसार में कितने रूपों में आयी, नारी हृदय ने कितने हृदय विदारक कष्टों को भोगने में किस किस भूमिका का निवहि किया इसका अध्ययन 'नारी के प्रतिबिम्ब' में चित्रित एवं व्याख्यायित है।

---

१. प्रदीप पंत कोशिशः इन्द्र प्रस्थ भारती : अप्रैल जून, १९९० हिन्दी आकदमी, दिल्ली

तृतीय अध्याय

हिन्दी कहानी में नारी की स्थिति एवं नवे दशक में उसके प्रतिबिम्ब"

(i) नवे दशक से पूर्व की कहानियों में नारी

(2) नारी के शाश्वत् रुप नवे दशक की कहानियों में (माँ, पत्नी, बेटी बहन)

(3) नवे दशक की कहानी में चित्रित विविध वर्गों की नारियाँ

(अ) शहरी नारियां - उच्च, मध्य व निम्न वर्ग की नारियाँ

(ब) ग्रामीण नारियाँ - जमीदार, कृषक व मजदूर वर्ग की नारियाँ

हिन्दी कहानी में नारी की स्थिति

नारी प्रकृति की एक अद्‌भुत कृति है। नारी के स्वरुप ने जहाँ नर को सदैव आकृष्टकिया है, वहीं उसके अन्तस की शक्तियों ने उसे आक्रांत भी किया है। पुरुष नारी को विविध रुपों से बांधने का प्रयास करता रहा है। कभी तो उसने नारी को आदि शक्ति, मातृरुप, जगदम्बा देवी इत्यादि के विशेषणों से अभिहित किया और कभी उसे 'नरक का द्वार', 'पतन का कारण' जैसी उपाधियाँ देकर हेय एवं त्याज्य माना। दोनों ही रूपों में नारी को सामान्य मानवी के रुप में प्रतिष्ठित नही होने दिया। नारी के संबंध में पुरुष की यह दोमुखी प्रवृत्ति आज तक विद्‌यमान है।

नारी प्रेन, श्रद्‌धा, भक्ति और समर्पण की साक्षात् प्रतिमा है। प्रारंभ से लेकर आज तक यदि नारी में जो कमियाँ और दोष उत्पन्न हुये उसके लिये वह स्वयं उत्तरदायी नहीं बल्कि हमारा समाज ही जिम्मेदार रहा है। उसका स्वतन्त्र अस्तित्व तो कही दिखाई नही देता "उसके लिये बचपन में पिता, यौवन में पति, और बुढ़ापे में पुत्र उसकी रक्षा करे।"[१] जबकि स्वतन्त्र रूप से नारी प्रेम, दया, वात्सल्य, सहृदयता, क्षमा, कोमलता, त्याग, श्रद्धा आदि सभी उच्च भावनाओं का सम्मिश्रण है।" [२] प्रारंभिक कथाकारों से लेकर आज तक कथाकारों ने नारी को प्रतिबिम्बित किया है।

प्रारंभिक कहानियों में नारी - जब से हिन्दी साहित्य में कहानियों की शुरुआत हुयी, उनमें 'रानी केतकी की कहानी,[३] इंशा अल्लाखाँ का नाम प्रमुख रुप से लिया जाता रहा है। इस कहानी में नारी के चरित्र एवं छवि को चित्रित किया गया है। इसके बाद 'प्रणयिनी परिणय'[४] , (किशोरी लाल गोस्वामी) प्रकाशित हुयी। इसमें नारी के सच्चे प्रेम को दर्शाया गया है। 'इन्दुमती'[५] (किशोरीलाल गोस्वामी) प्रकाशित हुयी। इसके बाद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' प्रकाशित हुयी। प्रारंभिक कहानियों में इन कहानियों का महत्वपूर्ण स्थान है।

---

१. मनुस्मृति
२. प्रेमचंद का नारी चित्रण - डॉ. गीतालाल/पृ. १८८
३. हिन्दी कहानी के सौ वर्ष - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ पृ. १०
४. हिन्दी कहानी के सौ वर्ष - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ पृ. १०
५. हिन्दी कहानी के सौ वर्ष - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ पृ. १०

इसी समय चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' एक नक्षत्र की भाँति उदित हुये और उन्होंने हिन्दी कहानी संसार को तीन अमर कहानियाँ प्रदान की। 'उसने कहा था'[१] , 'सुखमय जीवन '[२] , 'बुद्दू का काँटा' [३] ये तीनों कहानियाँ नारी श्रद्धा प्रेम और कर्त्तव्य की भावना से अनुप्राणित है। प्रारंभिक कथाकारों में प्रेमचन्द का नाम हिन्दी के श्रेष्ठ कथाकारों में से एक है। उनकी कहानियों की श्रृंखला में 'बेटों वाली विधवा' बाल विवाह पर लिखी गयी कहानी ' नैराश्य लीला' विवाह की कुरीतियों पर तीखा प्रहार करती 'नाग पूजा', 'पंचपरमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'गरीब का हाथ' आदि असहाय विधवाओं की कहानियां हैं।[३] उन्होंने तिरस्कृत नारी का रूप 'वैश्या' को भी सम्मान व श्रद्धा की दृष्टि से देखा व नारी के वैश्या होने के कारणों की खोज की।

प्रेमचन्द जी ने अनुभव किया- "सामाजिक कुरीतियाँ विधवा की बुरी सामाजिक स्थिति, अपने ही घर में नारी को उचित स्थान न मिलना, बुरी आर्थिक स्थिति के साथ भोग विलास की लालसा, नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा का अभाव, धन का लोभ, रुप का अभिमान ----- आदि मुख्य है।"[५] वैश्यावृत्ति वाली श्रृंखला में 'नरक का मार्ग' '[१]' , 'लाछन'[२]' , 'निवसिन'[३]' वहिष्कार'[४]', 'आगापीछा'[५]' प्रमुख कहानियाँ हैं। प्रेमचन्द जी ने नारी के आदर्श एवं नैतिक रुप को उजागर करने का भरसक प्रयत्न किया है। उनकी नारियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं।[७]

प्रेमचन्द जी के बाद जयशंकर प्रसाद जैसे प्रारंभिक रुमानी कथाकार ने नारियों पर अपनी कहानियों लिखी जिनकी संख्या लगभग ७५ है।[८] प्रसाद जी ने स्वतन्त्र चिंतन से, अनुवादों से बचते हुये नारी के अन्तःस्थल में झांकने की कोशिश की है। पुरुस्कार, आकाशदीप, वृतभंग, नीरा, दासी, भिखारिन, इन्द्रजाल, ग्रामगीत, विजया, ममता, ग्राम, सालवती, चूड़ीवाली, प्रमुख कहानियाँ हैं।

---

१. कहानी नवरत्न/ पृ. ८
२. कालजयी कथा कृति और अन्य निबंध/ पृ. १९
३. कालजयी कथा कृति और अन्य निबंध/ पृ. १९
४. आठ अच्छी कहानियाँ - सं. मारकण्डेय/मानसरोवर भाग ६
५. वारांगना रहस्य तीसरा भाग- चन्द्रशेखर पाठक/पृ. ७
६. १. २. ३. ४. ५. - मानसरोवर भाग ३. ४. ५.
७. साठोत्तरी हिन्दी कहानी - सं. हरिहर प्रसाद पृ. ११
८.- हिन्दी के सौ वर्ष - डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ / पृ. १६१

प्रेम नारी की सबसे बड़ी धरोहर है, वह इसे किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहती प्रेम प्रायः प्रसाद के पात्रों में एक अव्यक्त थरथराहट, एक असफल मिलन, एक अशोर टीस बनकर रह जाता है। किन्तु प्रायः यह टीस अपने साथ आदर्श की कौंध भी छिपाये रहती है।"[१] इतना ही नही उनकी नारियां स्वाभिमानी भी है। एक कहानी की नायिका कहती है- "अत्याचारी समाज पाप कहकर कानों पर हाथ रखकर चिल्लाता है, वह पाप का शब्द दूसरों को सुनाई पड़ता है पर स्वयं नही सुनता। आओ चलो हम उसे दिखा दें कि वह भ्रांति है। मैं चार आने का परिश्रम प्रतिदिन करती हूँ।"[२] परिणाम स्वरूप इतना कहना अनुचित न होगा कि उनके ये नारी पात्र दो शक्तिशाली मनोभावों की टकराहट से निर्मित है, जिसे एम्बिवैलेंसी कहा जाता है।"[३]

मनोविज्ञान के माध्यम से नारी की सम्पूर्ण स्थिति को एक अलग ढ़ंग से जैनेन्द्र जी ने प्रस्तुत किया है। 'खेल' , 'पत्नी' , 'जान्हवी' , 'अपना पराया' , 'नीलम देश की राजकन्या' , 'दो चिड़ियां' , 'स्पर्धा' , 'पाजेब' , 'एक दिन एक रात' , फ़ाँसी' , 'जयसिंघ' आदि इनकी श्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक कहानियां हैं।"[४] इन कहानियों में जैनेन्द्र की नारियाँ आत्म कुण्ठाओं, घुटन, जलन, और प्रेम की ऊहापोह में जीवन के आखिरी दाँव को या तो सामाजिक परिस्थितियों के कारण या फिर ईश्वरीय महिमा कहकर हारती दिखाई देती है।

अज्ञेय की कहानियों में दो प्रकार की नारियां हैं- जो मानवीय तत्वों की जिजीविषा और सामन्ती मूल्यों का विरोध करके बड़े सहज और आरोपित ढ़ंग से सामान्य आदमी के दुखः दर्द आकांक्षाओं और संघर्ष की बात करती है और दूसरी रोमानी आदर्श और भावुकता की शिकार है। 'रोज' [५] , 'शत्रु' [६] , 'बदला' [७] , 'शरणदाता' , 'लेटरबॉक्स' आदि अज्ञेय की प्रमुख कहानियां हैं।

१.- हिन्दी कहानी : एक अंतरंग पहचान - रामदरश मिश्र / पृ. २०
२.- प्रसाद का नारी चित्रण / पृ. २४१
३.- कालजयी कथा कृति तथा अन्य निबंध / पृ. १९
४.- जैनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां
५.- कहानी नवरत्न - सं. डॉ. रामेश्वर शर्मा
६.- कथाकुसुमांजलि - सं. डॉ. गुलाबराय डॉ. किरण कुमार गुप्ता
७.- आठ अच्छी कहानियाँ - सं. मार्कदण्डेय

नारी के हृदय में स्थित दर्द की परिभाषा बड़े निराले ढ़ंग से यशपाल ने अपनी कहानियों में प्रस्तुत की है। 'पर्दा' , 'पीर की मज़ार' , 'समय' , 'पराया सुख' , 'ज्ञानदान' , 'अपनी चीज़' , 'धर्म युद्ध' , 'तीसरी चिता' , 'भगवान के पिता के दर्शन' , 'भगवान का खेल' , 'नकली माल' , 'धर्म रक्षा' , 'चौरासी लाख यौनि' , 'काला आदमी' , 'चार आना' , 'प्रतिष्ठा का बोध' , 'पतिव्रता' , 'फूलों का कुर्ता' , 'कर्मफल' , 'परलोक' आदि कहानियों में नारी की बेपसी, उसके दुखः, असहनीय स्थिति एंव उसके शरीर की खरीद फरोक्त को बड़े ही प्रभावपूर्ण ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। निष्पक्ष दृष्टि से यदि देखें तो "यशपाल की कहानियाँ नारी के हर क्षेत्र से संबंधित है। नैतिक-अनैतिक, गरीबी-अमीरी सभी क्षेत्रों को छूती हुयी कहानियाँ लिखना यशपाल की कलम का जादू है।"[१]

इलाचंद जोशी की कहानियों में नारियाँ अपमान, तिरस्कार, दरिंदगी, घृणा एवं पुरुष की नीचता का शिकार हैं। उनकी 'परित्यक्ता' [२] श्रेष्ठ कहानी है। इन्होंने विवाह जैसी समस्याओं को बहुत उठाया है। भगवती प्रसाद बाजपेयी की कहानियों में दमित यौन वासना है। दमित यौन वासना के दर्द और उदात्तीकरण के ताने बाने से बुनी हुयी उनकी कहानियाँ अपना एक विशेष प्रभाव छोड़ती है।"[३] 'मिठाईवाला' ,'निंदिया लागी' श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। "उनकी मानवीय चेतना के आदर्श ने उन्हें रीझने नही दिया और उनके पात्रों में यौन आसक्ति नही है केवल संकेत द्वारा उसका गृहण और व्यंजना है।[४]

महिला कथा कारों ने भी हिन्दी साहित्य को श्रेष्ठ कहानियाँ दी हैं। उन्होने भी राष्ट्र प्रेम, आत्म समर्पण एंव श्रद्धा को बहुत ही प्रभावशाली ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। महिला कथाकारों की श्रृंखला में ऊषादेवी मित्रा, श्रीमती कमला चौधरी, श्रीमती सुमद्राकुमारी चौहान, श्रीमती रामेश्वरी चकारी, महादेवी वर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

प्रतिष्ठित कथाकारों के अतिरिक्त कुछ वे कथाकार हैं जो साहित्य को ज्यादा कहानियाँ

१.- कथा कुसुमांजलि / पृ. ६३
२.- हिन्दी कहानी - एक अंतरंग पहचान / ६०
३.- कथा कार भगवती प्रसाद बाजपेयी - डॉ. सुरेन्द्र दोषी/पृ. ३७८
४.- हिन्दी कहानी के सौ वर्ष - डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ/पृ. ३३

तो नही दे सके परन्तु जो कहानियाँ दी हैं वे अपना अलग स्थान रखती है। 'ताई' , 'मोह' , (विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक') [१] 'एक चित्र की दो आकृति'(सुदर्शन)[२] , 'संजोग'(अमृतलाल नागर)[३] 'भाई बहिन' (प्रफुल्लचन्द ओझा) [४] 'जल्लाद' , 'चांदनी' , 'उसकी माँ' , 'कुमुदनी' , 'कला का पुरस्कार' , (पाण्डेय बैचेन शर्मा 'उग्र') , 'कामकाज' , 'मास्टर साहब' (चन्द्रगुप्त विद्यालांकार) 'धरती अब भी घूमती है' , 'गृहस्थी' , 'रहमान का बेटा' ,'जज का फैसला' , 'मेरा वतन' (विष्णु प्रभाकर), 'डाची' , आकाशचारी (उपेन्द्रनाथ अश्क) , 'स्मृति की रेखाएं' (महादेवी वर्मा) हिन्दी साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

प्रारंभिक कहानियों में नारियाँ प्यार, क्षमा, बलिदान की साक्षात् प्रतिमा हैं। ये गृहणी में समर्पित होने के लिये भी बनी हैं। मनोवैज्ञानिक कथाकारों की नारियाँ तो मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण हैं। गरीबी व निर्धनता का चित्रण बहुत प्रभावी है। कुछ कथाकारों ने धर्म व विश्वास को बहुत ही तत्परता से प्रस्तुत किया है। प्रारंभिक कहानियों में कथाकारों नें नारी के आदर्श रूप को प्रस्तुत किया इसमें तनिक भी सन्देह नही। कुछ कथाओं में विधवा विवाह को प्राथमिकता दी गयी है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सहारा लेकर लिखी गयी कहानियों में नारी के प्रेम, आत्म सम्मान एवं आत्मसमर्पण को प्रस्तुत किया है। इतनी विशेषताओं के साथ नारी कही कहीं आर्थिक जीवन से उलझती व हारती चली आ रही हैं।

१.- कहानी कुंज / पृ. ६०
२.- रस वल्लरी - डॉ. सीताराम सहगल / पृ. २४३
३.- इण्डिया टुडे - मार्च १९९० यह कहानी नागराजी की मृत्यु के बाद प्रकाशित हुयी।
४.- रसवल्लरी / पृ. १७८

नई कहानियों में नारी

नई कहानी की परिकल्पना सर्वप्रथम प्रवर आलोचक डॉ. नामवर सिंह ने की थी जिसमें उन्होंने कहा था कि - "मेरे मन में यह सवाल उठता है कि नई कविता की तरह नई कहनी नाम की कोई चीज़ है क्या।" [१] आगे चलकर उनकी यही परिकल्पना नई कहानी को चरमोत्कर्ष पर पहुचाने में सहायक हुयी। नई कहानी का समय सन् १९५०-१९६० के दरम्यान था।"[२] जिसमे वे कहानियाँ लिखी गयीं जो जीवन के व्यापक एवं जटिल यथार्थ बोध से सीधा साक्षात्कार करती थीं, मध्यमवर्गी जीवन में चेतना का संचार करती थी यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखें तो नई कहानी में स्थापित नैतिक बोध को चुनौती दी गयी। जीवन के यातनामय पक्ष को निखारा गया, आशावाद की स्थापना करने की कोशिश की गयी एवं सतही भावुकता से मुक्ति दिलाने के लिये कोशिश कर यथार्थपरक भाषा और सजग शिल्प को प्रस्तुत किया गया।

"कथाकारों ने जनता के सुख दुःख को सामाजिक सन्दर्भों से उठाकर अपनी कहानियों में इस तरह प्रस्तुत किया जैसे वे इस असहृय स्थिति को समाप्त करने के पक्षधर हों।"[३] इस समय के प्रमुख कथाकार हैं- कमलेश्वर, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, श्रीपत राय, शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी, मन्नू भण्डारी, ऊषा प्रियवंदा कृष्णा सोवती, अमरकांत, धर्मवीर भारती, रांगेय राघव आदि।

नई कहानी की नारी अपने जीवन के तमाम ऐसे बंधनों में बंधी हुयी है जहाँ सिर्फ टूटन ही टूटन है। जहाँ पर बाहर से तो सब कुछ ठीक है, सुसज्जित है परन्तु अंदर सब कुछ बिखरा हुआ है। कही आर्थिक तनाव तो कहीं पारिवारिक घुटन। कहीं सामाजिक झूठी मान मर्यादाओं के भंवर जाल में डूबती नारी की हारती हुयी दयनीय स्थिति चित्रित है।

---

१. कहानी- नई कहानी - डॉ. नामवर सिंहय पृ. १९
२. मधुकर गंगाधर - सारिका १६-३१ जुलाई १९८४ पृ. १६
३. आठ अच्छी कहानियाँ - सं. मार्कण्डेय/ पृ. १ भूमिका

आर्थिक परिस्थितियों में नई कहानी की नारी के अस्तित्व को तत्कालीन कथाकारों ने बड़े ही प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। " जहाँ लक्ष्मी कैद है" [१] (राजेन्द्र यादव) में एक बेवस और असहाय कुँवारी लड़की की मनोदशा को उसके जीवन को बर्वाद होने को कहानीकार ने स्पष्ट रुप से प्रस्तुत किया है। मोहन राकेश की कहानी 'जानवर और जानवर' [२] की अनीता भी रातदिन माँ और अपने भाई के लिये अपना सर्वस्व-बलिदान करती हुयी स्त्रयं को मिटा रही है। 'चीफ की दावत' (भीष्म साहनी) कहानी में शामनाथ अपने आफीसर के घर आने पर अपनी ही माँ को नौकरानी बताता है एवं व्यर्थ समझता है ताकि उसका सम्मान उसके अधिकारी के आगे कम न हो तभी तो कहता है, "अब सो जाओ माँ, कहते हुये तनिक लडखड़ाते हुये अपने कमरे की ओर घूम गये।"[३]

"राजा निरवंसिया" (कमलेश्वर)[४] में भी पति पत्नी में एक अर्थवैषम्य बना रहता है जिससे तनाव, कुण्ठा और घृणा से उत्पन्न दिखाई देती है। आर्थिक परेशानियों के कारण नारी पुरुष संबंधों में विखराव सा आने लगा था।

नई कहानियों में सबसे अधिक संख्या उन कहानियों की है जो प्रेम संबंधों को लेकर लिखी गयी है। प्रेम के किसी विशेष रुप की किसी अनौखी अनुभूति को अपने ही ढंग से प्रस्तुत करना उस समय के कहानीकारों की अपनी अलग ही विशेषता है। निष्कर्ष रुप में कह सकते हैं कि "प्रेम का रुप रुमानी या सरल नहीं है परन्तु इसमें नारी की मनः स्थितियों या परिस्थितियों एक जटिलता, द्वन्द्व तनाव, नैतिकता भावनाओं की टकराहट स्पष्ट रुप से दिखाई देती है।[५]

प्रेम के दो पहलुओं जहाँ प्रेम की पवित्रता एवं शारीरिक स्वछन्दता की बात होती है, नई कहानी का कथालेखन इससे दूर नहीं है। शारीरिक प्रेम को भी स्पष्ट रुप से प्रस्तुत करना इस समय के कथाकारों की अपनी अलग पहचान है। काम संबंधो की वास्तविकता को उजागर करती ये नई कहानियों में नारी भी उच्श्रृंखलता की सीमा को पार कर गयी है।

---

१. राजेन्द्र यादव की प्रतिनिध कहानियाँ - सं. मोहन गुप्त/पृ. २९
२. मोहन राकेश की प्रतिनिधि कहानियाँ - सं. मोहन गुप्त/ पृ. ५०
३. भीष्म साहनी की प्रतिनिधि कहानियाँ - सं. मोहन गुप्त/ पृ. २३
४. कथा सरिता - सं. डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ
५. सत्तरोत्तरी हिन्दी कहानियों में नारी - पूरन सिंह पृ. ५६

'देवा की मां', 'मुर्दो की दुनियाँ','माँस का दरिया', (मन्नू भण्डारी) 'गुल की बन्नो' (धर्मवीर भारती), अभी तो मैं जवान हूँ (भीष्म साहनी) अंधेरे में (निर्मल वर्मा), दो दुःखों का एक सुख (शैलैश मटियानी) ब्लटिंग पेपर (महीप सिंह), त्रिकोण (कृष्ण वल्देव वैद) प्रमुख हैं।

ग्रामीण सन्दर्भो में भी ऐसी बहुत सी कहानियाँ है जो नारी के हृदय में कही न कही छिपे प्रेम, बलिदान, त्याग और शील को प्रस्तुत करती हैं। अपनी तमाम परिस्थितियों के बाद भी नारी अस्तित्व को नहीं छोड़ती। संवेदनाओं, जटिल परिस्थितियों को प्रेषित करती ग्रामीण आंचलिक कहानियों के संदर्भ में फणीश्वर नाथ रेणु का नाम प्रमुख रुप से लिया जाता है। "तीसरी कसम', रस प्रिया, नैना जोगनि, ठेस, लाल पान की बेगम, पंचलाइट, शुभ नामें, कस्बे की लड़की आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।"[१] रेणुजी के अतिरिक्त शिव प्रसाद सिंह ने भी ग्रामीण नारी के अंतर में देखने का भरसक प्रयत्न किया है। ग्रामीण परिवेश में कहानीकारों ने नारी के प्रायः सभी पहलुओं पर कहानियाँ लिखी हैं जिनमें 'अदरक की गांठ', (प्रभाकर द्विवेदी), टोना (मेहरुन्निसा परवेज) एक प्यास एक पहेली (राजेन्द्र अवस्थी) आदि विशेष उल्लेखनीय है। नारी की विभिन्न दशाओं को कथाकारों ने अपने अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। कथाकारों ने संत्रास, घुटन एवं शील तथा संवेदना को विशेष रूप से प्रस्तुत किया है। मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोवती, ऊषा प्रियम्बदा, विजय चौहान, शशि प्रभा शास्त्री, आदि महिला कहानीकार आज के नारी जीवन के भीतर पनपती, कसमसाती नयी चेतना को उसकी पीड़ा के सन्दर्भ में प्रस्तुत करती हैं।[२]

नई कहानी में शहरी एवं ग्रामीण दोनों तरह की कहानियाँ है। जहाँ स्वछन्दता, सेक्स एवं समाज के साथ-साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाली शहर की नारी हैं तो कहीं ग्रामीण परिवेश में पली, धुन्ध और धुएँ में अपने अस्तित्व को मिटाती तो कहीं संवारती नारी भी है। इस सन्दर्भ में सावित्री नं. दो, एक और जिन्दगी, मिसपाल, खोई हुयी दिशाएं, डेढ़ इंच ऊपर महानगरों की कहानियाँ हैं। तीसरी कसम, उर्फ मारे गये गुलफाम, 'अंधेरा हंसता है', 'एक औरत एक जिन्दगी' प्रेत मुक्ति, मेले का ठाकुर ग्रामीण आंचलिक कहानियाँ हैं।

---

१. फणीश्वर नाथ रेणु की प्रतिनिधि कहानियाँ- सं. मोहन गुप्त
२. हिन्दी कहानी एक अंतरंग पहचान - रामदरश मिश्र/ पृ. ६०

साठोत्तरी कहानियों में नारी-

सठोत्तरी कहानी को नई कहानी से अलग करने के बहुत से प्रयास किये गये किन्तु वे सभी कही-कही असफल प्रतीत होते हैं। नई कहानी की धारणाओं को ही साठोत्तरी कहानी में विकसित किया गया। कुछ अलग कारणों से भी साठोत्तरी कहानी नई कहानी से अलग दिखने लगी। इस समय में (१९६0 के बाद) जीवन मूल्यों को चुनौती देती हुयी कहानियाँ लिखी जाने लगी उनमें संत्रास, उत्पीड़न, ऊब, अकेलापन, असंगति का चित्रण स्पष्ट रूप से किया गया। इस समय की कहानी जीवन के एक विशेष कोण पर टिक कर नही रह गयी बल्कि सम्पूर्ण जीवन को आत्मसात् करने लगी। इस प्रकार - "साठोत्तरी कहानी सामाजिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों एवं जीवन दशाओं के साथ संघर्ष को आंतरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर अधिक तीव्रता के साथ सामने लाती है। जीवन में यदि कहीं विखराव है, भटकाव है, समझौता है तो इसने इसे यथातथ्य रुप में प्रस्तुत किया है।" [१]

मानव जीवन के प्रमुख रूप से दो घटक हैं- स्त्री और पुरुष एक के बिना दूसरे की कल्पना संभव नहीं है। हिन्दी कथाकारों ने भी नारी को अपनी कहानियों में बड़ी ही जिम्मेदारी से प्रस्तुत किया है। यदि हम अच्छी तरह से अवलोकन करें तो ज्ञात होता है कि आम आदमी के आस पास बिखरी कहानियो में किसी न किसी तरह से नारी अपना स्थान लिये हुये है। साठोत्तरी हिन्दी कहानी में नारी की वास्तविक स्थिति को बिना किसी आवरण के स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत कर मुक्त आकाश प्रदान किया है जिसमें महिला कथाकारों ने अग्रणी भूमिका निभाई है। " सॉंतवे दशक में होश संभालने वाली नई पीढ़ी भी प्रकाश में आई, इसमें एक बड़ी घटना महिला लेखिकाओं की बड़ी संख्या भी है।"[२]

इन महिला कथाकारों की बढती संख्या का महत्वपूर्ण कारण यह भी था कि पुरुष ने नारी को स्वार्थ सिद्धि एवं आदिम आवश्यकताओं के लिए भी उपयुक्त समझा जो इन कथाकारों को स्वीकार न था। वैसे भी, "साठोत्तरी कहानी में नारी पुरुष संबंधों को लेकर जो प्रवृत्ति स्पष्ट

---

१. साठोत्तरी हिन्दी कहानी - डॉ. विजय द्विवेदी - सं. हरिहर प्रसाद/ पृ. ९४
२. कहानी नवरत्न - भूमिका - सं. डा.ॅ रामेश्वर शर्मा / पृ. १0

दृष्टिगोचर होती है वह यह है कि पुरुष का मानसिक रूप से नपुंसकत्व व नारी की आत्मरति।" १
रवीन्द्र कालिया की एक डरी हुयी औरत', विजय मोहन सिंह की 'वे दोनों', गिरिराज किशोर की 'फ्रॉक वाल घोड़ा', श्रीकान्त वर्मा की ट्यूमर आदि उल्लेखनीय कहानियाँ हैं। इस समय के कहानीकारों के लिये, "मै- एक यौन जीव हूँ और प्रेम ऋणात्मक मनोवृत्ति है।" [२] इस तरह साठोत्तरी कहानियों में नारी में एक ओर सेक्स के प्रति लगाव है वहीं उससे लड़ने की सामर्थ्य भी।

'नारी को उसके आधुनिक रुप में फालतू वर्जनाओं और रोज की समस्याओं से जूझते हुये दिखाया गया है उसका विद्रोह अपनी अस्मिता खोजने के लिये है न कि कपड़े उतारकर फेंकने के लिये।" [३] लौपर रखी हथेली (रामकुमार भ्रमर), और कुछ भी (महीप सिंह) विशेष रुप से उल्लेखनीय है इनमें काम संबंधों में एक भयानक टकराहट है।

यौन संबंधों में नारी के अत्यंत खुले रुपों का चित्रण करके साठोत्तरी कहानीकारों ने नैतिक वर्जनाओं को तिलांजलि दी है। इस समय के कहानीकार ने "कहानी में संबंधहीनता, ऊष और विसंगति का बोध उभारने के लिये औरत का सहारा लिया है। उनकी रचनाएं यौन के घने जंगलों में गुम होती दिखाई देती हैं।"[४] इस संबंध में 'झाड़ी (श्रीकान्त वर्मा), रीछ (दूधनाथ सिंह) 'नौसाल छोटी पत्नी' (रवीन्द्र कालिया), दूसरी गुलामी (विश्वेश्वर) आदि प्रमुख हैं।

नारी अपने उत्थान व पतन के लिये स्वयं जिम्मेदार है। वह अर्जक है, अपना विकास चाहती है। पति के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलती है। कुछ कारण फिर भी ऐसे हैं जिनसे उसे अपमानित होना पड़ता है। इन्हीं कारणों को कहानीकारों ने अलग-अलग प्रकार से प्रस्तुत किया है। "रजनी पन्निकर की 'मोमबत्ती', 'तुम और साहिल', में प्रेम की उस स्थिति को उभारा है जहाँ पुरुष अपनी बोरियत मिटाने के लिये किसी भी नारी से प्रेम का खेल, खेल सकता है।" नारी नहीं नारी का विज्ञापन में एक ऐसी सुन्दरी की कथा है जो अपने नारीत्व

---

१. साठोत्तरी हिन्दी कहानी - डॉ. विजय द्विवेदी - संहरिहर प्रसाद /पृ. ९१
२. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेम परिकल्पना - विजय मोहन सिंह / पृ. २९
३. हिन्दी कहानी एक अर्न्तयात्रा - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ/ पृ. ५६
४. सत्तरोत्तरी हिन्दी कहानी में नारी - पूरन सिंह/पृ. ३७

को बनाये रखने के लिये नारी का एक विज्ञापन बन कर रह जाती है। 'नारी के हृदय की पीड़ा को उजागर करती' जिन्दगी के फूल गुलाब के कांटे" में भी नायिका कहती है- "मैं जानती हूँ कि मुझे चलते ही जाना है।"[१] कहीं पहुंचना नहीं है किसी के प्रेम को पाना नही है। महिला कथाकारों की कहानियों के अध्ययन के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि वैवाहिक जीवन बाहर से जितना आकर्षक है अन्दर से उतना ही कठोर। ऊपर ऊपर से ही खुशियाँ दिखाई देती है बाद में जीवन नष्ट होता, टूटता व बिखरता नजर आता है।

"शशि प्रभा शास्त्री ने नारी के प्रेम, मर्यादा, बंधन तथा बलिदान को एवं पुरुष के नारी के प्रति दृष्टिकोण को चित्रित कर विभिन्न कहानियाँ लिखी हैं। 'एक तिकोन की तीन मछलियाँ", में अधूरे प्रेम में तड़पती नारी की मनोदशा 'तट के बंधन' में प्रेम एवं विवाह की समस्या तथा 'प्यार की दीवार' में एक बिखरी हुयी नारी की पीड़ा स्पष्ट दिखाई देती है। प्रेम के बहाने नारी को लूटने की साजिश को उन्होंने अपनी कहानी 'गहराइयों में गूँजते प्रश्न' में दिखाया है।"[२] पुरुष के दृष्टिकोण को उन्होंने इन शब्दों में प्रस्तुत किया है " रुप सौन्दर्य विहीन नारी के मन में प्यार के सपने करवट लेते हैं चाह की शहनाइयाँ बजती हैं और पुरुष युग-युग से मात्र सौन्दर्य का प्यासा बना रहा।" [३]

महिला कथाकारो की बड़ी लम्बी कतार है। सभी महिलाओं ने एक जुट होकर नारी की समस्त भावनाओं को चित्रित किया है। कही-कही ऐसी नारियाँ है जो परम्पराओं में बंधी हुयी है। जहाँ से उनके लिये छूटना संभव नही है। नारी ही नारी के दर्द को भली भाँति जान सकती है। इस कारण से भी साठोत्तरी महिला कथाकारों का विशेष योगदान है। उन्होंने विभिन्न परिस्थितियों के बीच संघर्षरत नारी और उसके जीवन मूल्यों को बड़े ही प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। महिला कथाकरों के अतिरिक्त कुछ पुरुष कथाकार भी हैं जो नारी की दशा को अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। शैलेश मटियानी की 'डब्बू मलंग' [४] में झोपड़ पट्टियों में रहने वाली निरीह महिलाओं का चित्रण है जो मन से गंगाजल की तरह पवित्र है पर समाज उन्हें गन्दी निगाहो

---

१. गुलाब के फूल जिन्दगी के कांटे - रजनी पणिकर
२. साठोत्तरी महिला कथाकर - डॉ. मधु सन्धु/ पृ. २७
३. घुली हुयी शाम शशि प्रभा शास्त्री/ पृ. ८८
४. डब्बू मलंग - हारा हुआ - कहानी संग्रह - शैलेश मटियानी
५. डब्बू मलंग - हारा हुआ - कहानी संग्रह - शैलेश मटियानी

से देखता है। 'ब्राह्मण' [५] में तो पिता ही पुत्री की तरफ बुरी निगाह से देखता है। 'अतीत' [१] में औरत की वास्तविकता को इस तरह व्यक्त किया गया है, "औरत होने की जो वास्तविकता है, जो यथार्थता है, उसमें लाचारी तभी महसूस होती है जब औरत अपने लिये पुरुष या पुरुषों का चुनाव करने में असमर्थ या असफल होती है या असफलता अक्सर सामाजिक या नैतिक असफलता में तब्दील की जा सकती है।"[२]

रामदरश मिश्र की कहानी 'मुर्दा मैदान' में यह कथन बड़ा मर्मस्पर्शी है- "लक्ष्मी जैसी गरीब मासूम स्त्रियों को कोई क्यों इज्जत दे। क्योंकि इज्जत तो उनकी गरीबी है और गरीब की कोई इज्जत नहीं होती।" [३]

सन् १९७० के बाद तो नारी पुरुष के दाम्पत्य जीवन के टूटने बिखरने और पुनः जुड़ने की बहुतायत में कहानियाँ लिखी गयी है, "चूँकि मानवीय संबंध में परिवर्तन का एक बाह्य हिस्सा दाम्पत्य जीवन के ईद गिर्द घटित होता है इस कारण इस दशक की ढेर सारी कहानियाँ दाम्पत्य संबंधों में व्याप्त ऊब, जड़ता और तनाव से एक सम्पूर्ण साक्षात्कार करती है"[४]

स्त्री पुरुष संबंध की गिरावट पर आठवें दशक में बहुत लिखा गया। संबंधों पर एक साक्षात्कार में डॉ. महीप सिंह ने अपना मत व्यक्त किया-"मेरी चिन्ता का एक दूसरा कारण मानवीय संबंधों की कोमलता का निरन्तर मरते जाना है, चाहे इसे आप मेरी भावुकता मानों। मुझे लगता है कोमल मानवीय संबंध जिनका धरातल मात्र सम्बन्ध होता है या धीरे-धीरे हमारे हाथ से जा रहा है। सभी संबंध व्यावसायिक बनते चले जा रहे हैं।"[५]

संबंधों का खोखलापन मानव को अपने उत्तर दायित्वों से लगातार अलग करता चला जाता है। यहाँ माँ-बाप, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन सभी संबंध व्यर्थ जान पड़ते हैं। इन सभी बातों को साठोत्तरी कहानियों में खूब दर्शाया गया है। शीर्षकहानी 'गंगा प्रसाद विमल में पिता को पुत्र द्वारा औरत देने की बात सोचना, धक्का पहुंचाने वाली बात है।"[६]

---

१. अतीत तथा अन्य कहानियाँ - शैलेश मटियानी
२. अतीत तथा अन्य कहानियाँ - शैलेश मटियानी
३. कथा सरिता - सं. डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ /पृ. ११२-११३
४. हिन्दी कहानी के सौ वर्ष - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ/ पृ. ११०
५. इक्यावन कहानियाँ - साक्षात्कार/ पृ. १३
६. हिन्दी कहानी एक अर्न्तयात्रा - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ

साठोत्तरी हिन्दी कहानी में नारी को एक नया क्षितिज प्रदान किया गया है और उसके यथार्थ जीवन को विविध बिन्दुओं से उद्घाटित किया गया है इस प्रकार इस युग की कहानियों में प्रतिबिम्बित नारी अपने सम्पूर्ण नारीत्व की अस्मिता एवं सजगता के साथ उपस्थित है। साठोत्तरी कहानी ने आज की नारी के अर्जिका रूप को बड़ी बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया है। इतना ही नहीं-"साठोत्तरी कहानी में आम आदमी के आस पास की कहानियों में भी किसी न किसी रूप में आम औरत या नारी समायी हुयी है...... परम्परागत गुणों से मुक्त होकर भी साठोत्तरी कहानी में नारी ने नया रूप ग्रहण किया है।"[१] आठवें दशक में नारी खोखली अस्मिता को लेकर चली है। उपर्युक्त चित्रण के अलावा आठवें दशक में नारी का नारीत्व कहीं गुम हो गया है।

---

३. साठोत्तरी हिन्दी कहानी सं. हरिहर प्रसाद/ पृ. ८८८९

नवें दशक की कहानियों में नारी के शाश्वत् रुप

नारी का सम्पूर्ण जीवन बलिदान एवं त्याग की धुरी पर टिका है। विभिन्न कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुये वह स्वयं पयार्य बन गयी है। क्षमा, शील एवं विश्वमैत्री की वह साक्षात् प्रतिमा है। इन कर्त्तव्यों को निभाने पर समाज ने नारी को क्या पारितोषिक दिया यह एक विचारणीय प्रश्न है। समाज ने उसे दासत्व की बेडियां, सिसक-सिसक कर जीने की राह और अपमान से भरा दलदल, जिसमें से निकलने की चाह में वह निरन्तर उसमें धंसती चली जा रही है। वास्तव में, "नारी हमारे समाज का ऐसा अभागा प्राणी है जिसके पास जीवन से मृत्यु तक अपना घर नहीं होता, पिता की छत के नीचे एक परायी अमानत की भाँति या अतिथि के रुप में अपने दिन गुजारती है। युवा होती है तो पति के घर एक सेविका की तरह जीवन व्यतीत करती है। वृद्ध होती है तो बेटे की छत के नीचे एक अनुपयोगी वस्तु की तरह मौत की घड़ियां गिनती रहती है।"[१] शाश्वत् सत्य है कि उसकी स्वतन्त्रता और सुरक्षा मात्र पुरुष के अधीन सिमट कर रह गयी है। वह जीवन पर्यन्त पिता, भाई, पति और पुत्र को ही अपना अभिभावक मानती रहती है जब कि वास्तविकता यह है कि "भारतीय पुरुष भी तो नारी के बिना सम्पूर्ण जीवन जी पाने में स्वयं को एकांकी, असहाय पाता है। माँ, बहिन पत्नी पुत्री की सहायता की उसे पग पग पर अपेक्षा रहती है। पुरुष मकान बना सकता है घर नहीं। घर की संज्ञा तो नारी ही प्रदान करती है नारी और पुरुष रथ के दो पहिये हैं एक को निकाल देने पर गाड़ी चरमराने लगेगी। सच पूछा जाये तो सामान्य भारतीय परिवार में नारी पुरुष का जितना संरक्षण पाती है- उससे कहीं अधिक उसे देती हैं..... यह बात अलग है कि संरक्षण का क्षेत्र अलग-अलग हो... ।"[२] परन्तु अब स्त्री की मानसिकता में बदलाव आ चुका है।

विगत पचास वर्षो में भारत में जो परिवर्तन हुये हैं उनसे यहाँ का जनजीवन प्रभावित हुआ है किन्तु समाज के कुछ वर्गो पर उसका प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है। नगर समाज में इन परिवर्तनों ने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक प्रभावित किया है। विशेषतः स्वतन्त्रता

१.- नारी उत्पीड़न की कहानियाँ - सं. डॉ. गिरिराज शरण
(उत्पीड़न के बीच घूमते हुये- गूंगी नदी - डॉ. गिरिराजशरण / पृ. ५
२.- परिचर्चा - विस्वज्योति - "पुरुष बिना नारी कैसे जिये बिचारी"
डॉ. आशा सरसिज - आयोजक श्री प्रेम कुमार बेअसर / पृ. ८१

के बाद बदली हुयी सामाजिक, आर्थिक स्थितियों में महिलाओं की शिक्षा और रोजगार के अवसरों में काफी वृद्धि हुयी है। इन कई परिस्थितियों के फलस्वरूप नारी के लिये अपनी समानता की अभिव्यक्ति और रोजगार के नये रास्ते खुल गये हैं। बदलती हुयी परिस्थितियों में उनकी भावनाओं, विचारों विवाह, प्रेम, यौन, संबंधों, सामाजिक परम्पराओं और धार्मिक विश्वासों तथा स्त्री पुरुष चरित्र की नैतिकता के प्रति दृष्किोण में बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है। इस दृष्टिकोण ने "सदियों से स्थापित भारतीय नारी के जीवन मूल्यों को - जिन्हें तथाकथित शाश्वत् मूल्यों के नाम से पुकारते आये हैं - जबरदस्त चुनौती दी है।" [१] आज की नारी पति को भगवान मानने को तैयार नही हैं इस तरह के परिवर्तन तो स्पष्ट है साफ हैं। किन्तु स्त्रियों की मानसिकता उस स्थिति में अर्न्तविरोध, टकरावों में फंसकर अधिक जटिल हो गयी है उसे दोहरा व्यक्तित्व जीना पड़ता है। घर में उसे दया सहनशीलता, त्याग और तपस्या की मूर्ति बनना पड़ता है। घर से बाहर उसे अस्तित्व के लिये जूझना पड़ता है। घर में उसकी स्थिति पति तथा पिता से नाची ही रहती है। यदि ज्यादा महत्व या भी देती है तो संक्रान्त मनः स्थितियों के कारण द्वन्द्वों, मानसिक तनावों और बाहरी अर्न्तविरोधों को झेलना पड़ता है। वृहत् परिवर्तनों के बाद भी भारतीय नारी माँ-पत्नी, बहिन, बेटी है और रहेगी क्योंकि भारतीय संस्कृति की यही शिक्षा है. भारतीय नारी के शारवत् रूप वही रहेगें वह जिन रूपों में प्राचीन काल में थी उन रूपों में न सही पर आधुनिकता के आवरण में भी वह सर्वप्रथम बेटी , बहिन प्रेयसी, पत्नी व माँ ही है।

१.- समकालीन कहानी के विविध संदर्भ - डॉ. कीर्ति केसर / पृ. ४२

माता

नारी के विभिन्न रूपों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मातृत्व है। वेदों में माता को पृथ्वी स्वरूप कहा गया है। पृथ्वी के समान ही वह सन्तान धारण करती है, उसका पालन पोषण करती है और आजीवन उसके सुख की कामना करती है। "स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में ही हो सकती है।"[१] नारी जीवन की सफलता मातृत्व में ही चरितार्थ होती है- "माँ को पृथ्वी रूपा और पिता से भी बड़ा माना है। माता के स्वभाव में एक और धैर्य, त्याग, ममता, स्नेह का परम उत्कर्ष देखते थे तो दूसरी ओर उसके पुत्रवती होने को भी अनिवार्य मानते थे।"[२]

हिन्दी कहानी संसार में माता के शाश्वत रूप के सभी पक्षों का सविस्तार वर्णन किया गया है। संतान चाहे अयोग्य हो,कर्तव्य च्युत हो, समाज की दृष्टि में पतित हो, माँ का वात्सल्य भरा आँचल सदा उस पर छाया रहता है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में वह अपना वात्सल्य नही भूलती। माता बालक की प्रथम पाठशाला होती है। हर माँ यही चाहती है कि ऊँची से ऊँची शिक्षा दे। वेसे भी सही अर्थो में एक बालक का कोलेज घर व माँ उसकी प्रोफेसर होती है। माँ उसकी जीवन शिक्षिका है। वह कर्त्तव्यों में अपने आप को बाँध कर जीवन के हर पहलू से जुड़ने को प्रतिबद्ध है। इन्हीं कर्त्तव्यों को निभाती "मौत एक भगवान की "[३] (बिन्दु सिन्हा) कहानी है। जिसमें एक माँ के दर्द, संघर्ष एवं वेदना की अनूठी गाथा है। आज की भयानक मँहगाई में एक माँ अपने दायित्वों को भली भांति नही निभा पा रही है वह बहकती एंव तंग आती हुयी कहती है- "माँ बाप का नाम ओड़े से क्या लाभ जो बच्चों को भर पेट रोटी न दे सके बाँझ होती तो धीरज रहता कि नहीं हुये। हे भगवान बच्चे दे तो ऐसा मत कर कि बच्चे पराठे जैसी चीज़ के लिये भी तरस जायें।"[४] 'पांचवा पराठा' कहानी में माँ के ह्रदय में छिपी वेदना एंव असीम प्यार को कथाकार ने अपने ढ़ंग से व्यक्त किया है।

१.- महादेवी वर्मा - श्रृंखला की कड़ियां पृ. १६
२.- बिन्दु अग्रवाल - हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण (अल्तेकर का कथन पृ. २९६)
३.- सारिकानबम्बर १९८९
४.- पांचवा पराठा - गिरिराजशरण - १९८३ की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ
मीनाक्षी कथावर्ष सम्पादक बटरोही / पृ. ३०

जितेन्द्र भाटिया ने अपनी कहानी 'देवाशिष सेन गुप्ता के जीवन का एक दिन" में माँ की ममता तथा असीम वात्सल्य को इस तरह व्यक्त किया है-"जिस दिन एक बजे तक मैं घर न पहुचूँ माँ घर से नीचे उतर कर मनिहारी की दुकान में कामर्शियल इन्स्टीट्यूट फोन करती घर में एक माँ ही है जिसे मेरे घर से बाहर निकलते ही चिन्ता होना शुरु हो जाती है कि मैं कहीं किसी दुर्घटना का शिकार न हो जाऊँ या मेरा किसी से झगड़ा न हो या मुझे पर अचानक बिजली न गिर पड़े ।"[१] प्रोफेसर शादीराम जोशी ने अपनी कहानी "नारी तेरा जीवन पूर्ण समर्पण है "में एक पागल स्त्री के समर्पण एवं बलिदान और वत्सल्य को निखारा है बेटे के प्रति वात्सल्य की ये पंक्तियाँ कितने वेदना एवं स्नेह की भावनाओं से परिपूर्ण है--"...... कितना ...सुनदर है मेरा बेटा.... "[२]

'पेंशन' (डॉ. शिवाजी श्रीवास्तव) ऐसी कहानी है जिसमें मां जगह-जगह बर्तन माँगती है। बेटे को पाल पोस कर बड़ा करती है और उसकी शादी कर देती है। बेटा उससे अलग हो जाता है। तब नरेटर जिसके यहाँ वह बर्तन धोती है पंशन का फार्म भरवाता है जिसमें उसे बेटे से अलग और असहाय सावित करने के लिये कहता है तो वह नरेटर पर चीख कर अपना आक्रोश व्यक्त करती है- "फायदा फायदा हर चीज़ फायदे नुकसान के लिये होते है का अपने फायदे के लिये जीते जी लड़के को मार डालें। पेंशन जाये भाड़ में .... जे कभी नईं हो सकत, इत्ती बड़ो बात आपने लिख कैसे दी।"[३]

माँ[४] (शरद श्रीवस्तव) की माँ के प्यार एवं विश्वास की ऐसी ही कहानी है। स्थिति चाहे कुछ भी हो, चाहे बेटा तिरस्कार कर अपमान करे किन्तु माँ ने हमेशा सन्तान के लिये दुःख ही सहे हैं और उस का पालन पोषण किया है। सन्तान भले ही बुरी हो गयी हो। परन्तु माँ कभी बुरी नही हुयी। इन्ही सब कारणों से भारतीय विचारकों की दृष्टि में माँ सदैव सृष्टि के निर्माण में सुख्य भूमिका निभाने वाली शक्ति मानी जाती है।

१.- सारिका १-१५ जुलाई १९८४/पृ. १९
२.- विश्वज्योति - नारी अंक सं. वेद प्रकाश अभिताभ अप्रेल-मई १९९० पृ. २९
३.- वर्तमान साहित्य जून १९९२ पृ. ४६
४.- सारिका १६ अगस्त १९८३

पत्नी

मानव सभ्यता के आदिकाल सत्पत्नी के धर्म और मर्यादा का महत्व स्वीकार किया गया है। पतिवृत ही पत्नी कापरम धर्म माना गया है तन मन वचन से पति परायणता नारी का आदर्श रूप है। वह पति की शक्ति है। अपनी योग्यता, कुशलता और सेवा से दाम्पत्य जीवन को निरन्तर सुचारू रूप से चलाना पत्नी का धर्म है। पति चाहे अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाय, भटक जाय पर पत्नी अपने कर्त्तव्य से कभी विमुख नही होती। यही उसका सनातन आदर्श है। भारतीय समाज में समय समय पर परिवर्तन होते रहे हैं इसके अनुसार नारी की स्थिति में भी उतार चढ़ाव आते रह है। वैदिक युग में नारी को प्रतिष्ठित पद प्राप्त था तो मध्य युग में उसे पाप की खान [१] कहा गया पर पत्नी धर्म के शास्वत रूप में कोई परिवर्तन नही हुआ। पति से उसे चाहे प्रेम और आदर मिला या दासी या सेविका सा शासन और निरादर, पत्नी अपने धर्म से कभी विचलित नही हुयी। नारी पतिके सुख दुःख, आशा निराशा, आचार विचार और महत्वाकांक्षाओं को अपना कर ही सहधर्मिणी और अर्दागिनी बनती है।

स्त्री तथा पुरष मिलकर समाज के पूर्ण विकास में सहायक होते है. एक के बिना दूसरे की कल्पना संभव नही है। नारी जब पत्नी रूप में पहुंच जाती है तो वह श्रृद्धा, प्रेम, क्षमा एंव शील की उच्च भावनाओं के अलावा बलिदान की साक्षात् प्रतिमा बनकर प्रस्तुत होती है। सामाजिक व्यवस्था के अनुसार पत्नी नारी का वह रूप है जिसके बिना वह माँ नही बन सकती और मातृत्व नारी की सर्वश्रेष्ठ परिणति है।

शताब्दियों से बना हमारा पारिवारिक ढांचा बहुत धीरे-धीरे बदल रहाहै। "बदलाव के साथसाथ पति पत्नी, भाई बन्धु बाप-बेटा, माँ-बेटी आदि सभी परिवारिक संबंध नये प्रकार की अर्थ ध्वनि देने लगे।"[२] इस नये प्रकार की अर्थध्वनि में पुरुष एवं स्त्री दोनों अलग-अलग होते दिखाई देते हैं।

१.- जैनेन्द्र के उपन्यास में नारी - डॉ. सावित्री
२.- आज कल - महीप सिंह - अगस्त १०८१/ पृ. २१

कमलेश्वर ने लिखा - "पति और पत्नी की इकाईयों को दो अर्ध इकाईयों में बदल दिया है और अब वे अर्धइकाईयाँ अपने परिवेश से जीवन के संगत मूल्यों और पद्धतियों को चुनकर स्वतन्त्र और परिपूर्ण इकाई बन सकने की दिशा में अग्रसर हों।[१] एक पत्नी ही ऐसी होती है जो घर में सब कुछ करने को तैयार है। रात दिन जूझते रहने के बाद वह जब जीवन के अवसान की ओर पहुंच जाती है और बिखर जाती है। "किराये की कोख" (आलमशाह खान) की नायिका ने तो अपने पति के लिये पराये पुरुष की हवस का शिकार होना भी कबूल कर लिया है। अपने परिवार की इज्जत रखने तथा पति की बात रखने के लिये वह क्या क्या नहीं करती और एक दिन अपने पति से कहती है-"तेरे हेत संग है, तो बंधक भी बैठ जाऊँगी, सिर पर छप्पर और रूखा सूखा, कुछ तो देगा वो मरा साहू.... काल कट जायेगा। फिर बालक विरवे खड़े हो जायेंगे।"[२] इसी आस में वह अपना सर्वस्व लुटा देती है।

'फूलों का क्या होगा "(क्रांति त्रिवेदी) की नायिका ने अपने पति के लिये सब कुछ किया परन्तु उसने उसे परित्यक्ता बना दिया- हाँ एक दिन आया था एक ड्राफ्ट लेकर अपने किये हुये शोषण का पारितोषिक देने। लेकिन उसने साफ मना करते हुये कहा- "नहीं में यह ड्राफ्ट नहीं ले सकती दे सको तो मेरे पच्चीस वर्ष लौटा दो।"[३] शिवानी की 'पिटी हुयी गोट' की नायिका को उसके पति दाज्यू ने जुए में लगा दिया और हार गया। तब कुछ जीतने वाला पुरुष कहता है- 'देखो भाभी दाज्यू' आज सब कुछ मुझसे हार गया तुम्हेंभी दाँव पर लगाने का सौदा हुआ है- जरूरी भी नहीं कि तुम्हें हार जाय.... पर अगर हार गये तो आज ही की रात से मेरी रहोगी। तुम्हारे जीवन की प्रत्येक रात्रि पर मेरा अधिकार रहेगा।"[४]

पत्नी अपना सर्वस्व घर गृहस्थी में लगा देने पर ही अपने को धन्य समझती है जिस तरह 'बरसों के बाद' (यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र) की कहानी की नायिका के ये शब्द कितने सार्थक है- "वह भोली भाली नासमझ औरत जो पति को केवल अपना सर्वस्व समर्पित करना ही जानती है, उसके हुक्म को एक बादशाह का हुक्म मानती है। पति के लिये कुछ भी सहन कर लेती है.... दो मीठे बोल और पेट भराई के पीछे हाड़ तोड़ मेहनत मजदूरी कर सकती है। तर्क

१.- मई कहानी का भूमिका - कमलेश्वर / पृ. १५९
२. नारी उत्पीड़न की कहानियाँ - सं. गिरिराज शरण / पृ. ३२
३.- फूलों का क्या होगा - नारी तथा अन्य कहानियाँ - क्रांति त्रिवेदी १२३
४.- 'पिटी हुयी गोट' - कृष्णा वेणी तथा अन्य कहानियाँ १९८१ शिवानी पृ. ८५-८६

वितर्क से दूर एक उत्सर्ग की भावना। मामूली सुविधा सुख के बदले जो चाहे जैसा इस्तेमाल कितनी सस्ता सौदा है।"[१] अब शाश्वत् रूपों में गिरावट आने लगी। अधिकतर अब नारीत्व की परिभाषा बदल गयी है। स्त्री पुरुष संबंधों को समाज विवाह द्वारा स्वीकृति देता है भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह को नर नारी का मात्र समझोता नहीं मानती है जिसे तोड़ा जा सके। यह संबंध जन्म जन्मांतर का माना है। पश्चिमी संस्कृति के गहरे धंसे प्रभाव ने विवाह संबंधी हमारी मान्यताओं को जड़ से उखाड़ फेंका है. न पति अब परमेस्वर है न स्वामी। पत्नी भी अब न दासी है और न अर्द्धांगिनी। नारी अब स्वतन्त्र है वह अपने निर्णय स्वयं ले सकती है। विवाह अपनी इच्छा से किसी पुरुष से कर सकती है माता पिता की अनुमति आवश्यक नहीं है। वह अपना 'कैरियर' विवाह के पश्चात भी जारी रखती है। संयुक्त परिवार की वधु बनकर रहना भी उनके लिये आवश्यक नहीं है। वह पति के साथ अलग रह सकती है। नौकरी, व्यापार, व्यवसाय अपनी इच्छा से कर सकती है। सम्पर्क में आने वाले पुरुष से संबंध या मित्रता रखना अब कोई गुनाह या अनैतिक कार्य नहीं है। पति के सम्पर्क में भी तो कार्यालय या व्यवसाय में अनेक महिलाएं आती हैं, पर उसे अनुचित नहीं समझती। उसका द्रष्टिकोण बदला है। वह सोच के संकुचित दायरे से निकल चुकी है। जीवन विशाल है। जीने के नये नये क्षितिज उसके सामने हैं।

१.- 'बरसो के बाद' - यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - १९८८ की प्रतिनिधि कहानियाँ
सं. हेतु भारद्वाज / पृ. ७१

बहिन एवं बेटी-

पुराणों में,स्मृति ग्रन्थों में नारी के पुत्री रूप को बहुत सम्मान मिला है। पौराणिक काल में कन्या को देवी स्वरूप माना गया तथा श्रीमद्‌भगवत गीता में कन्या रूप का गुणगान किया गया है। मध्यकाल में बेटी एक विपत्ति समझी जाने लगी थी। बस यहीं से कन्या या बेटी के अपमान एवं तिरस्कार की एक कभी न खत्म होने वाली यात्रा शुरू हो गयी लेकिन तिरस्कार करने वाले वे लोग भूल जाते हैं कि कन्या रूप में संपोषित और यौवन प्राप्त नारी ही तो क्रमशः पत्नी एवं मातृपद की अधिकारिणी बन पायेगी। कैसी विडम्बना है कि पत्नी को तो सम्मान देने वाले व्यक्ति समाज में हैं, माँ को पूज्नीय मानने वालों को की भी कमी नही है, परन्तु बेटी को विपत्ति कहने वालों की सख्या पलक्षण बढ़ती ही जा रही है।

अपनी बढ़ती हुयी दयनीय दशा को देखकर वह हतोत्साहित नहीं होती इतना अवश्य है कि कहीं न कहीं टूटने अवश्य लगती है इस टूटने के बावजूद भी वह अपने कर्त्तव्यों से जूझती हुयी निरन्तर समाज में हार कर भी जीतने की कोशिश कर रही है। माँ बाप आज अपनी बेटी को सिर्फ इसलिये चाहते हैं कि वह आज परिवार का भरण पोषण करती है। कहीं कहीं तो पिता इतना स्वार्थ में गिर जाता है कि अपनी बेटी की शादी भी नहीं करना चाहता है। स्वदेश दीपक की कहानी 'पराया चेहरा' में ऐसा ही दर्शाया गया है, "जानती हो सारा परिवार उसके सिर पर पल रहा है। खूब लाड़ प्यार से रखो कहीं उसे महसूस न हो कि हम उसकी परवाह नहीं करते।" [१] यथार्थ रूप में बेटी की स्थिति इस प्रकार की है जैसी मैत्रेयी पुष्पा की कहानी 'विन्नी तुम किसकी हो' मिसेज गुप्ता की है उसकी नजर में बिना पुत्र की जननी बने वे माँ के गौरवान्वित पद को स्वीकार नहीं कर पा रही। प्रजनन और बेटियों का पालन पोषण सार्थक नही लग रहा था।"[२] हमारे समाज में बेटी एक जहर समझी जाने लगी है।

जीवन की विसंगतियों से लड़ना और हार न मानना स्त्री का धर्म बन गया है चाहे वह नारी का बेटी, पत्नी, माँ या बहिन का रूप हो। बहिन तो पूजनीय है- राखी के धागों से लेकर शहनाइयों की गूंज और डोली में बैठने के पूर्व भाई बहिनों के विलाप तक नारी के समर्पण बलिदान एवं त्याग का रूप है। शायद एक बहिन पूर्ण रूपेण खरी उतरती है। वह अपने

१.- पराया चेहरा - अश्वरोही, स्वदेश दीपक / पृ. ७०

२.- साप्ताहिक हिन्दुस्तान - १६ नवम्बर १९८१ / पृ. ३०

परिवार के लिये अपने भाई बहिन के लिये अपना सर्वस्व लुटा देने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती है। प्रतिमा की कहानी, 'एक टुकड़ा बादल' की दुरपती को तो मात्र दो सौ रुपये में बिक जाना पड़ा ताकि उसके भाई पर लदे कर्ज का बोझ कम हो सके। एक बार खाना खाते समय छोटे की भौजी ने उसके कान में बतलाया "ढाई सौ रुपये देकर ले जा रहा है तुम्हारा घरवाला, हमलोगों का कर्ज तो इतर जायेगा, मगर जमकर रहना --" [१] जमकर रहना ताकि कर्ज की अदायगी पूरी हो सके और बलिदान एवं त्याग की साक्षात् प्रतिमा एक बहिन हमेशा यूँ ही छली जाती रहे।

'अकेला गुलमोहर' (मेहरुन्निशा परवेज) का भाई हमेशा अपनी बहिन सुधा की शादी इसलिये टाल देता है क्योंकि वह घर का खर्च चलाती है। अपने बड़े भाई के इस व्यवहार से तंग आकर छोटा भाई कहता है "याद रखो भइया तुम कसाई हो, तुम चाहते हो घर का हर आदमी कमाकर लाये तो खाये। इसीलिये तुमने सुधा की शादी नहीं की। सुधा दूसरे के घर चली जायेगी तो बंधे हुये दो सौ रुपये लाकर कौन-देगा?"[२] विविध परिस्थितियों में फंसी सुधा क्या करे।

अपने कर्त्तव्यों में बंधी हुयी नारी अपने संबंधों के प्रति अत्यंत संवेदनशील है। कहानीकारों ने इन कर्त्तव्यों के निर्वाह में प्रयत्नशील नारी, उसके सामने आने वाली चुनौतियाँ और कर्त्तव्यों एवं संबंधों के नाम पर होने वाले नारी के भावात्मक एवंशारीरिक शोषण का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। आज बेटियाँ पिता को पाल रही है। बहिनें भाई बहिनों का भरण पोषण कर रही हैं। बहिनें सबको तभी तक प्यारी है जब तक वे घर में पैसा कमाकर लाती हैं।

१.- नारी उत्पीड़न की कहानियाँ - डॉ. गिरिराज शरण / पृ. ८३
२.- अकेला गुलमोहर - आदम और हव्वा - मेहरुन्निशा परवेज

नवें दशक की कहानियों में चित्रित विविध वर्गो की नारियाँ-

(अ) शहरी नारियाँ - (१) उच्च वर्ग की नारियाँ-

उच्च वर्ग से तात्पर्य समाज के उस विशिष्ट वर्ग से है जो आर्थिक द्रष्टि से अत्यंत समृद्ध वर्ग है। बड़े उद्योगपति, अधिकारी, फिल्मी कालाकार आदि इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इस वर्ग ने येन, केन, प्रकारेण आर्थिक समृद्धि उपलब्ध कर ली है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण यह वर्ग स्वयं को समाज का विशिष्ट और श्रेष्ठ वर्ग कहता है. अधिक पैसा इनके चिन्तन एवं जीवन मूल्यों को बदल देता है। ये पाश्चात्य सभ्यता से ओत प्रोत होते है। इस वर्ग की नारियाँ भी सामान्य वर्ग से अलग चिन्तन और आचरण वाली होती हैं। आर्थिक सम्पन्नता के कारण पैसा इनके जीवन के लिये कोई समस्या नहीं होती। समस्या होती है केवल समय के सदुपयोग की। बोरियत को मिटाने के लिये प्रायः इस वर्ग की नारियां होटलों, क्लबों आदि में जाती है। वहाँ का उजाला इनके चरित्र को परम्परागत नारी के चरित्र से अलग कर देता है। हिन्दी के समस्त कथाकारों ने प्रायः नारी के इस रूप का सफल चित्रण किया है जिसमें वे पश्चात्य संस्कृति में डूबी हुयी हैं। डॉ. परेश का कहना है- "ये समपन्न खाती पीती महिलाएं जिन्होंने शराब, सम्भोग का दहकता हुआ सैसार हिन्दी कहानियों को दिया है हमतो कहेंगे कि ख्याली घोड़े है।"[१]

उच्च वर्ग की नारियों के चरित्र का एक और भी रूप हो सकता है। उच्च वर्ग में भी संवेदनशील माँ हैं, परम्परागत मूल्यों में जकड़ी हुयी पत्नी भी है। संस्कृति के बीच में छटपटाती हुयी आदर्श नारी भी है। साहित्य एवं कला को समर्पित भावुक महिलाएं भी हैं। इस प्रकार के चरित्रों को हिन्दी कथाकारों ने अपनी कहानियों में बहुतायत से नहीं दिखाया है। संभवतः कहानीकारों ने इस दृष्टि से उच्च वर्ग की नारियों का अध्ययन पूर्ण रूपेण नही किया है।

१.- हिन्दी कहानी का परिद्रश्य - डॉ. परेश / पृ. ५३

शहर की उच्च वर्ग की नारियों में प्रगति के नाम पर फैशन की अंधी होड़, घर के वृद्ध जनों की अवहेलना, अपने धर्म ग्रन्थों का मजाक उड़ना आदि प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगी हैं। भारतीय आधुनिक नारी ने आज पश्चिमी नारी की नकल करते समय स्वतन्त्रता और समान अधिकार के खोखले नारे तो सीख लिये परन्तु उसके अनुकरणीय गुणों को नही अपनाया।"[१] शारीरिक सुन्दरता का प्रदर्शन करना उसे जन सामान्य को दिखाना उच्च वर्गीय शहरी नारियों का अतिरिक्त गुण दिखाई देता है अधेड़ उम्र की स्त्रियाँ भी अपने आप को जवान दिखाने के लिये जवान लड़कियों से प्रतिस्पर्धा करती हैं। गुलजार की कहानी 'सन सेट बुलेवार'[२] की नायिका अपनी सुन्दरता के बारे में कहती है, "देखो लोग आज भी हमें देखते हैं तो कनखियों से खुसर पुसर करते हैं।"[३] सुन्दर दिखने की होड़ में ये नारियाँ निरन्तर अपने चारित्रिक गुणों से गिरती जाती है। ब्रजेश्वर मदान की कहानी 'छोटा समुन्दर बड़ा समुन्दर' में इसी समीकरण की व्याख्यां की गयी है- "हीरोइन हीरो से प्रेम करती थी..... और हीरो निर्माता की बीवी से चिपका हुआ था और उसकी बीवी........."[४]

इस वर्ग की नारियों के पास पैसे की अधिकता तो होती है इसलिये उसका किस तरह से उपयोग किया जाय इसके संबंध में वे अपना समय व्यर्थ तथा होटल, क्लब व सैर सपाटे में व्यतीत करती हैं। उदाहरण के लिये निम्न कहानियाँ दृष्टव्य हैं- 'जहाँपना जंगल' (शानी)[५] , 'संभल के बाबू' (भीष्म साहनी)[६] 'नारी के रूप' (आनन्दी प्रसाद माथुर)[७] , 'कंगार पर' (मृणाल पाण्डे)[८] आदि।

इस वर्ग की नारियों में पैसे का अभिमान और नशा एक विशेष प्रकार का होता है।

१.- विश्वज्योति - अप्रैल,मई १९९० / पृ.६४
२.- हंस - अक्टूबर१९९१
३.- वही पृ. २७
४.- बावजूद कहानी संग्रह - ब्रजेश्वर मदान
५.- धर्मयुग - ३ जनवरी १९८३ एवं मीनाक्षी कथा वर्ष १९८४ सं. बहरोही
६.- वही
७.- बदला चुका दिया कहानी संग्रह आनन्दी प्रसाद माथुर १९८९
८.- मेरी प्रिय कहानियाँ - मृणाल पाण्डे

सब कुछ हासिल कर लेने के बाबजूद भी इस वर्ग की नारियाँ कहीं न कहीं खालीपन, असहायता एवं झूठे आडम्बरों में बंधी हुयी दिखाई देती है। कभी कभी लगता है कि उनके अंदर सब कुछ टूट रहा हो या फिर वे कहीं न कहीं बिखरती नजर आती हैं। चित्रा मुद्गल की कहानी 'मुआवजा' में शालू के माध्यम से इस वर्ग की नारियों की दशा को चित्रित किया है। "मैं शालू का पति हूँ-----उसकी किसी भी प्रकार की संपत्ति पर मेरे अधिकार पहले बनता है...... चाहे तिजोरी में रखूँ या गड्डे में फेंक दूँ।"[१] इसके अतिरिक्त 'सजा' (शालिग्राम शुक्ल)[२] भी इसी तरह की कहानी है।

संक्षिप्त रूप में हम कह सकते हैं कि इस वर्ग की नारियाँ ऊपर से जितनी धनवान दिखाई देती हैं अन्दर से उतनी ही विपन्न होती हैं। वे दिन प्रतिदिन घुटन, कुण्ठा एवं संत्रास, का शिकार होती प्रतीत होती हैं।

(२). मध्यवर्ग की नारियाँ :- हिन्दी साहित्य कोष में मध्यवर्ग की विशेषताओं और उसके व्यक्तियों की व्यवस्था एवं स्वरूप की व्याख्या इस प्रकार है- "मध्यवर्ग सामन्तवादी व्यवस्था में नहीं पायाजाता क्योंकि उस समय जमीदार एंव किसान का सीधा संबंध होता है। किन्तु पूँजीवादी व्यवस्था ने इस समाज को इतना जटिल बना दिया है कि एक मध्यवर्ग की और आवश्यकता हुयी। जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरी पेशा, शिक्षक, क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं।"[३]

मध्यवर्ग वह है जो आर्थिक दृष्टि से न तो संपन्न है और ना ही विपन्न। यह वर्ग कुछ विकृतियों का भी शिकार हो जाता है।आज इस वर्ग की नारी का शहरी जीवन, संबंधों की दुरुहता, बौद्धिक, राजनैतिक भौतिक तथा विलासप्रियता से आक्रान्त है। इसकी बहुत सी समस्याएं आर्थिक और सामाजिक है। ये अपने आप में एक रोते पन का भाव मन में छिपाये रहती है।

१.- सारिका - नवम्बर १९८७ /पृ. ४४
२.- सारिका टाइम्स - १५ दिसम्बर १९९०
३.- हिन्दी साहित्य कोष सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वनारस प्रथम संस्करण

मृदुला गर्ग की कहानी 'चकरघिन्नी'[१] की नायिका विनीता अपने आपको उच्चवर्ग में समायोजित करने के लिये रात दिन मेहनत करती है नौकरी करती है फिर भी अपने आपको समायोजित नहीं कर पाती। अस्तराग (वेला मुखर्जी) [२] की सुमि रात दिन एक कर देती है और कैंसर तक का शिकार हो जाती है और फिर अपने आपको अकेला महसूस करती है।

उच्च मध्यवर्गीय परिवारों में आर्थिक अभाव न होते हुये भी एक कलह का वातावरण बना रहता है। सूर्यबाला की कहानी -'निर्वासित' [३] में इसी दशा को व्यक्त किया गया है। "----अब जब दो बेटे हैं तो एक ही दोनों का खर्च उठाय, ठीक नही लगता न.... है कि कही। ठीक ही सोचा दोनों ने अभी यहाँ बेबी छोटी है। तुम यहाँ रहोगी। सात आठ महीने के बाद छोटी की डिलेवरी होगी, फिर तुम वहाँ चली जाओगी--- छोटी के पास।" आर्थिक पृष्ठभूमि में ये नारियाँ अपने जीवन को अनावश्यक ही उलझाये हुये हैं। "त्यैहार (अर्चना वर्मा)[४], नीड़पाखी (रामधारी सिंह दिनकर)[५] में इन्ही बातों को दुहराया गया है।

निम्न मध्यवर्ग की नारियाँ भी आत्म सम्मान से जीने के लिये तथा समाज में अपना स्थान बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं। 'मुद्दत के बाद' (कृष्णा सोबती) की महकबानू साहसी एवं द्रढ़ स्त्री है उसके कागज एक वकील नें रख लिये हैं और देने से इन्कार करता है। इन कागजों में उसके जीवन यापन तथा सुरक्षा की चाह छिपी हुयी है। वह वकील साहब को धमकी देती है और दृढ़ होकर कहती है, "हम क्यों अपने बजूद की पोटली बनाकर किसी को घूरे पर फेंकने दें। हम किसी की बेटी नहीं, अपनी बेटी की माँ तो हैं वकील साहब हाँ अम्मी के जेवर आपने अपनी तिजौरी में रखवाये थे बीस वर्ष हो गये। रात से पहले हम तक पहुंच जाने चाहिये, नही तो हम सुबह न होने देगें।"[६]

निष्कर्षतः रूप में इस वर्ग की नारियाँ भले ही उच्च वर्ग से प्रतिस्पर्धा करना चाहती हो, या फिर निम्न से सामंजस्य न बैठा पा रही हों किन्तु वे साहसी,द्रढ़ एवं स्वभिमानी हैं।

१.- सारिका - अक्टूबर १९८९
२.- सारिका - नवम्बर १९८९
३.- कथासरिता डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ
४.- १९८८ की प्रतिनिधि कहानियाँ सं. हेतु भारद्वाज
५.- मीनाक्षी कथा वर्ष १९८४ सं.बहरोही
६.- इण्डिया टुडे - ३१ मई १९८९ /पृ. ९८

निम्न वर्ग की नारियाँ

समाज का वह वर्ग जहाँ गरीबी, निराशा और घुटन का साम्राजाय जन्म से मृत्यु तक बना रहता है जिससे निकलना संभव नहीं दिखाई देता। झुग्गी, झोपड़ियों एवं गटर में पैदा होकर उसी में समाहित हो जाना इनकी नियति बन गयी है। इस वर्ग की महिलाएं भी क्या इन विपत्तियों से बच सकी है। इस वर्ग की नारियों की पीड़ा आर्थिक विपन्नता और मजबूरी को हिन्दी कथाकारों ने अपने ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

दिनेश पालीपाल ने 'निमित्त' कहानी में भी नारी की विपत्ति और आर्थिक मजबूरी से परिचय कराया है, - "सबको पता है मजबूर और बेसहारा लडकियों को खरीदा बेचा जाता है.....जिन्हें कार्यवाही करना चाहिये वे सब अपना बटाकर इसे चलने दे रहे हैं।"[१]

शहर के वातावरण में निम्न वर्गीय नारी का जीवन बिखर कर रह गया है। शहर की इस चकाचौंध में उसका जीवन किसी पतझड़ की तरह गिर रहा है। अलका अग्रवाल की "अनबूझ पहेली"[२] में नारी की इसी दशा को निरूपित किया है। कहानी की नायिका पारो गाँव की रहने वाली थी। घर से बाहर भाग कर शहर में इसलिये आयी थी ताकि बहुत अधिक धन पैदा करके अपने माँ बाप की आर्थिक स्थिति सुधारेगी परन्तु शहर ने उसे घुटन, सन्त्रास, गन्दगी और ललचाही निगाहें पुरस्कार में दी। तभी तो वह कहती है,"नहीं दीदी अब तो हम अम्मा, बापू के सामने जा ही नही सकते, बापू की फूला, अम्मा की पारो तो इस शहर में आकर मर गयी।"[३]

इस वर्ग में चाहे कितनी भी आर्थिक विपन्नता क्यों न हो फिर भी आपसी प्रेम, सौहार्द्र तथा अपनेपन की भावना लगातार बनी रहती है। रूपसिंह चन्देल की कहानी, 'हारा हुआ आदमी'[४] की सुशीला का पति निम्नवर्गीय शहरी परिवार की व्यथा को तथा उसमें नारी की दशा को अपनी पत्नी के माध्यम से इस तरह व्यक्त करता है- "मुझे पता है कैसे काम चल रहा है। साल होने को आया न तेरे लिये एक भी धोती ब्लाउज खरीद सका और न अपने लिये कपड़े बनवा सका। तू फटी पुरानी लपेटे रह और मैं कम्पनी के कपड़े---- इसी को काम चलाना कहती है तू....।"[५]

१.- स्वर्ण रेखा कहानी संग्रह दिनेश पालीपाल वर्ष १९८४ / २८
२.- सारिका १६ से ३० जून १९८४
३.- वही - पृ. ३४
४.- निष्कर्ष - कहानी विशेषांक - १९८९ -९० सं. गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव
५.- निष्कर्ष - कहानी विशेषांक - १९८९ -९० सं. गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव पृ. ६०

अर्थसंकट से त्रस्त निम्न वर्ग है इसका मूल कारण है मंहगाई और बेकारी, बेरोजगारी ने व्यक्ति को अपंग बना दिया है। आर्थिक विपन्नता का एक उदाहरण 'चमगादड़' में बूढ़ा बाप घरवालों को चमगादड़ से भी बदतर नजर आता है। कमाऊ बेटे घर से निकाल देते हैं। वह एक अमरूद के बगीचे में रहने लगता है। रात भर चमगादड़ भगाया करता है, क्योंकि वह कमा नही सकता इसीलिये परिवार के लिये उसका कोई अस्तित्व नही।[१] इस परिवार की नारियाँ कितनी दुःखी होगी इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इनके अतिरिक्त ऐसी विभिन्न कहानियाँ है जो शहरी निम्नवर्ग की नारियों की आर्थिक समस्याओं, पीड़ाओं, दुःख, हताशा कलह साहस से परिपूर्ण है। जिनमें 'दमनचक्र' (सुधा अरोड़ा) 'नाव पर बैठे हुये' (हिमांशु) 'साख के पत्ते' (फरीद नसरीन) 'आबरू' (अहमद खलिद) विशेष उल्लेखनीय हैं।[२]

सच तो यह है कि ये शहरी निम्नवर्गीय, "युवतियाँ उस वर्ग की नहीं हैं जो सुरक्षा में पलती है और पिता की शान शौकत के कारण अच्छे घरों में विवाहित होती हैं। ये तो उस वर्ग की लड़कयाँ है जो साधनहीन हैं जिनकी तमन्नाएं आर्थिक व्यवस्ता की झील में डूबकर मर जाती है।"[३] और ये लड़कियाँ जैसे तैसे सिर्फ अपना पेट ही भरती अपितु माँ बाप भाई बहिन को भी पाल पोष रही है, उनका भार बहन कर रही है। अपने खून के रिश्तों के हितों और अभावों की चिन्ता उन्हें अधिक है और इस चिन्ता के कारण ही वे अपना स्वयं का कोई स्थायी घर नही बना पा रही हैं।"[४]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निम्न वर्ग की नारियाँ चाहे कितनी ही आर्थिक विपन्नत मजबूरी, असहाय, दीनता का जीवन व्यतीत कर रही हो परन्तु इनमें स्नेह अपनापन व प्रेम का अभाव नही है। वे टूटती, बिखरती है और साहस के साथ जीवन यापन कर रही है। श्रवण कुमार की 'लच्छमी' की नायिका लच्छमी एक साहसी औरत है झुग्गियों में रहती है उसका पति निकम्मा है। अपने बल बूते पर अपना धन्धा चलाती है और झुग्गी हटाने के लिये कहने पर चिल्ला चिल्ला कर रही है- "अरे जालिमों गरीबों का क्या इस धरती पर कोई हक नही है? मत समझो कि यह झुग्गी की जगह ऐसे ही मिल गयी थी हमें। पूरे पाँच सौ दिये थे.। बनाके तो दिखाओ झुग्गी ऐसी ही जमीन पर।"[५]

१.- अब्दुल बिस्मिल्लाह -चमगादड़ - समकालीन भारतीय साहित्य (त्रैमासिक) पृ. ९
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली जुलाई - सितम्बर १९९०
२.- सत्तरोत्तरीय कहानियों में नारी - पूरन सिंह
३.- समकालीन हिन्दी कहानी और समाजवादी चेतना - डॉ. किरण वाला पृ. १९०
४.- डॉ. प्रेम कुमार - हिन्दी कहानी आठवां दशक सं. मधुर उप्रैति । पृ. ४६
५.- श्रवण कुमार - लच्छमी (स्पन्दन) पृ.८८ जगतराम एण्ड सन्स, दिल्ली प्र. सं. १९९१

ग्रामीण नारियाँ

(१) जमीदार वर्ग की नारियाँ :-

हिन्दी कहानी के प्रारंभ से आज तक अधिकांश कहानियों में ग्रामीण एवं औचलिक बोध है। ग्राम की लोक संस्कृति को विभिन्न पहलुओं से देखा गया है। ग्राम सभ्यता, व्यवहार, रहनसहन, भाषा सभी का अनूठा चित्रण कहानिकारों ने किया है। ग्राम नारी तो अधिकतर कहानियों का केन्द्र विन्दु रही है। "हिन्दी कहानी में न केवल नगर, महानगर के श्रमजीवियों अपितु दूर दराज के गाँवों के खेतिहरों का जीवन जीवन अपनी सम्पूर्णता के साथ चित्रित हुआ है।"[१] जमीदार वर्ग से लेकर मजदूर वर्ग तक के सम्पूर्ण जीवन के चित्र कहानीकारों ने खींचे है जो अत्यंत जीवन्त बन पड़े है।

ज़मीदार वर्ग की नारियाँ समाज की मर्यादाओं, प्रतिष्ठा एवं झूठी शान के ढोंग में अपने आपको हताश एवं निराश पाती है। 'इस्तजां का ढेला' (डॉ. माजदा असद)[२] की नायिका के यहां ऐसी मान्यताएं थी कि कोई भी उच्च घरने की लड़की कॉलेज में पढ़ने नहीं जा सकती। कहानी की इस नायिका ने इतना कठोर विरोध किया और बनायी हुयी मान्यता के विरुद्ध जाती है और 'शोधपरक' (पी. एच. डी.) शिक्षा तक गृहण करती है। झूठी मान्यताओं एवं आडम्बरो से लड़ने वाली जमीदार वर्ग की नारियों में पुरुष के विरुद्ध लड़ने की एक लहर सी दौड़ पड़ी। वे पुरुष के अहंकार को ध्वस्त करती चलती है। वे उसे अहं से बाहर लाने का हर संभवप्रयास करती है अब ये उनके नारी जीवन की विडम्बना है कि वे अपने इस लक्ष्य में हार ही क्यों न जाय। 'पोस्टर' (नवेन्दु)[३] की नायिका इसी तरह की है। वह अपने पति को सही रास्ते पर लाने का हर संभव प्रायस करती है लेकिन अंत में उसे हारना पड़ता है ।

कभी हार कभी जीत के बीच चलती जमीदार वर्ग की नारियाँ साहसी और अधीर भी होती है। ग्रामीण जमीदार वर्ग की स्त्रियाँ चाहे कितने ही ऊँचे पदो पर क्यो न पहुच जायें पुरुष उन्हें हमेशा पाँव की जूती समझते है। 'नक्शे की मालकिन' (शीतांशु भारद्वाज) की नायिका एक ग्रामीण जमीदार वर्ग की है। ऊँचे पद पुर कार्यरत है। गांव के जमीदार तुल्य एम. एल. ए. ने उसका घर परिवार खेत खलिहान, तहस नहस करता दिया क्योंकि वह नारी को नीचा दिखाना चाहता है। कितने कष्ट सहती है जीतने के सौ प्रयत्न करती है पर इस कहानी की नायिका को अंत में हारना पड़ता है। पुरुषों के अड़ियल रुख के कारण बेचारी पराजित हो जाती है।

१.- हिन्दी कहानी के सौ वर्ष - डॉ. वेद प्रकाश अभिताभ / पृ. १३५
२.- सारिका - नबम्बर १९८९
३.- सारिका - जुलाई १९८३
४.- नक्शे की मालकिन :- डॉ. सीतांशु भारद्वाज- अमर उजाला (दैनिक) ४ अगस्त १९९१

बाहर से तो ये जमीदार वर्ग की नायिकाएं प्रसन्न एवं सुखी दिखाई देती हैं। ये कपड़े जेवर तो बहुत पहनती है. सजी संवरी होती है परन्तु यदि इनके अंदर को झाँकने का प्रयास करे तो ये नारियां टूटती, बिखरती, परेशान व अपने जीवन से हारती हुयी दिखाई देती है। इनके हृदय में एक पीड़ा है कसक है जो उन्हें नारी होने की वेदना से प्रताड़ित करती है।

आशीष सिन्हा की कहानी 'उस नदी के साथ-साथ'[१] में भी एक माँ किसी से प्रेम करती है शादी किसी जमींदार से हो जाती है पूर्व प्रेमी की एक निशानी है एक बेटा - जिसे जमीदार हराम की औलाद की संज्ञा देता है और उस बालक को पल पल पर तिरस्कृत और अपमानित करता है जिस कारण जमीदार की पत्नी का सम्पूर्ण जीवन नरक बन जाता है और वह इस दुःख को अपने अंत समय तक अपने साथ लिये रहती है सहती रहती है जमीदार की बैतों को।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि जमींदार वर्ग की ये नारियाँ प्रेम एवं विलासिता की सीमा भी पार कर जाती है। उम्र का बंधन इन्हें नही रोक पाता है।'धर्म संकट'(सुरेश काटंक)[२] ऐसी ही कहानी है जिसमें नायिका उम्र के अंतिम पड़ाव में आकर भटक गयी है। कहानी में नायिका का पुत्र अपनी माँ पर सन्देह करने लगता है, "क्या सचमुच माँ फिसल गयी, क्या करूंगा यदि ऐसा हुआ तो लोग जीना मुश्किल करदेगें। जिस रास्ते से जाऊँगा लोगों की तीखी नजरें बधेंगी। कैसे जी पाऊंगा दुनिया में - सिर उठाकर। यह तूने क्या किया माँ। अंतिम समय में यह फिसलन। ऋषि, महार्षि और देवी देवताओंकी तरह क्षम्य नहीं मानंगे ये लोग। तुम्हें तिरस्कृत कर देंगे। मगर सच तो यह है कि पूरी सृष्टि ही इस दोष से दूषित है।"[३]

हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि ग्रामीण जमीदार वर्ग की नारियां बाहर से सम्पन्न एवं सुखी दिखाई देती हैं जबकि अन्दर से उतनी ही टूटती एवं घुटन की जिन्दगी जीती दिखाई देती है।

१.- साप्ताहिक हिन्दुस्तान - २१-२६ जुलाई १९९१
२.- हंस -अगस्त १९९१
३.- हंस -अगस्त १९९१ पृ. ४६

(२) कृषक वर्ग कीनारियाँ

साहित्य समाज का दर्पण है और समाज नर नारी का समन्वित रूप है। समाज में शहरी व ग्रार्मागक्षेत्र दोनों को ही स्थान प्राप्त है. शहरी नारियों में (वर्ग भेद) अमीर गरीब का भाव प्रमुख रूप से द्रष्टव्य है और ग्रामीण नारियों में यही भाव जातिगत व कर्मगत एवं खेती के स्तर मे है।

खेतों खलिहानों में रात दिन पति के साथ काम करना उसके सुख दुःख में सहायता एवं सहयोग करना कृषक वर्ग की नारियों की विशेषता है। हिन्दी कथाकारों ने ग्रामीण नारियों के चित्रण करते समय कृषक स्त्रियों का अधिकतर चित्रण किया है। कृषक वर्ग समाज का अन्नदाता है। दिनेश चंद जोशी की कहानी 'दनराम लापता हैं' में कहानीकार ने नारी के रात दिन के श्रम एवं पुरुष द्वारा अपमान को स्पष्ट उजागर किया है। हरिया की पत्नी एक साधारण स्त्री है। जो रात दिन पति के साथ मेहनत करती है पति शराबी है। वह अपनी पत्नी पर शक करता है और अपने पिता के सात अनैतिक संबंधों को कहता है पत्नी को पीटता है।

"हरिया को शराब के लिये जबभी पैसे कम पड़ते वह बाप तथा औरत के पास आकर बेशर्म होकर मांगने आ पहुचता था। औरत व बाप के साथ रहने पर भी उसे शक होने लगा था। अपने आपको निर्दोष साबित करने के लिये उसने यह अफवाह फैलाना शुरु कर दिया था कि उसकी औरत दुश्चरित्र है और उसके अपने ससुर के साथ अनैतिक संबंध है।"[१]

अपनी जमीन से प्यार ग्रामीण कृषक महिलाओं में इतना अधिक होता है कि वे उसके लिये सब कुछ करने को तैयार हो जाती है। अपनी संतान के किये वे जमीन तो क्या सब कुछ समर्पित करने को तत्पर रहती है। 'खुशहाल चाचा का पुत्र' (सुभाष पंत) में एक माँ के स्नेह, वात्सल्य एवं अपनी भूमि से लगाव को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है- "दरअसल वह इस बात से डरती थी कि उसके पहाड़ छोड़ते ही ताऊ चाचा वहाँ की जमीन हड़प जायेंगे। इस बात की संभावना से भी इन्कार नही किया जा सकता क्योंकि पिता की मृत्यु के बाद ताऊ चाचा जमीन का काफी बड़ा हिस्सा हथिया चुके थे।"[२]

भगवती प्रसाद द्विवेदी की 'अस्तित्व बोध' में कथाकार ने नारी के अपनी मातृभूमि (अपनी

१.- निष्कर्ष - संयुक्तांक १७-१८ मार्च १९९१

२.- मीनाक्षी कथावर्ष -१९८४ पृ. १७१

खेती वाली जमीन) के प्यार को किस प्रकार व्यक्त किया है -"ऐसा मत कहो फुआ, हे भगवान! जिस जन्मभूमि में हमारी पुस्त दर पुस्त ने खून पसीना बहाया, मेहनत मशक्कत की, उसे ही तुम किसी दीगर के हाथों में बेचने की बात कर रहे हो। महन्थ फुआ ने तो कभी सपनों में भी नहीं सोचा था और तुम.....कम से कम हमारी माटी लग जाने दो बचवा। फिर जो मन में आए करते रहना।"[१] ममता, सौहार्द्र, प्रेम एवं आत्म सम्मान की प्रतिमा कृषक नारी जिसका समाज ने पल पल पर अपमान एवं तिरस्कार किया है। सुधा गोयल की कहानी 'वनवासिनी'[२] भी ग्रामीण नारी के त्याग एवं बलिदान की कहानी है।

नारी जीवन का सत्य रामदरश मिश्र की कहानियों में मिलता है। कृषक वर्ग की नारियों का जीवन भयंकर अभाव,पीड़ित ठोस धरातल पर टिका रहता है। शक की सुईयाँ हमेशा घूमती रहती हैं। इनका वातावरण बड़ा शिथिल एवं पेचीदा होता है। 'एक औरत : एक जिन्दगी' (रामदरश मिश्र) कहानी में एक विधवा कृषक नारी के दर्द की ममर्तिक कथा वर्णित है।

१.- वर्तमान साहित्य - अगस्त १९९१ / पृ. ३८
२.- सत्तरोत्तरीय कहानी में नारी : पूरन सिंह

(३) मजदूर वर्ग की नारियाँ :-

मजदूर वर्ग समाज का वह वर्ग है जो सदा से उत्पीड़न का शिकार रहा है। जमींदार, साहूकार, महाजन, अधिकारी इन्हें उत्पीड़ित करते रहे हैं। समाज की सेवा केवल यही वर्ग करता है मजदूर सड़क बनाना, फैक्ट्री में काम करना, सफाई करना आदि सभी तरह के काम करता है पर इसे उसके बदले में मात्र गरीबी, शोषण और दुत्कार ही मिलती है।

गाँव में जिनके पास खेता नहीम होती वे मजदूरी करते हैं। दूसरों के खतों में रात दिन एक करते रहते हैं। गाँव में मजदूरी करती स्त्रियों के चित्र हिन्दी के कथाकारों ने बहुत यथार्थ रूप में चित्रित किये हैं। मजदूर वर्ग की नारी सर्वाधिक उत्पीड़ित प्राणी है इस धरती पर। रूपसिंह चन्देल का कहानी में - "एक खेत की मेंड़ की ओर पंडित शालिग्राम दिख गये थे उन्हें। भेड़िये की भाँति दिनवा चमार की बेटी सुरसुती को .... सुरसुती अपने को छुड़ाने की कोशिश कर रही थी.... बस एक बार मुझे निहाल कर दे। जो माँगोगी तुम्हें दूंगा।"[१] खेतों में मजदूरी करती स्त्रियों के साथ गाँव में ग्राम्य कथाओं में ऐसे ही नारी उत्पीड़न के चित्र देखने को मिलते हैं।

'खण्डित आस्था' (विशन टण्डन)[२] एक गरीब असहाय नारी हरिया का जीवन चरित्र तो मार्मिक संवेदनाओं के साथ कहानीकार ने प्रस्तुत किया है। मजदूर वर्ग की नारियों के पास आर्थिक विपन्नता मूँह बाए खड़ी रहती है। इस कारण वे अन्दर ही अन्दर टूटती जाती हैं। गरीबी में जूझते रहने से पति पत्नी में झगड़े होने लगते हैं और संबंधों में बिखराव तक आ जाता है।

प्रभु जोशी की कहानी 'अभी तय करना है हंसना' बड़ी मार्मिक कथा है। इसमें एक मजदूर स्त्री की बेटी कही खो गयी है। वह अर्थभाव के कारण ढूंढ़ भी नही पाती। बेटा आकर पूछता है तो माँ कुछ सोचते हुये बोली थी। "एक बहिन जो कुपोषण के बाद भी खूबसूरत और प्यारी थी एक दिन स्कूल से आने के बाद घर में खेलती नही मिली। मैंने रोते हुये माँ से पूछा कि

१.- रुपसिंह चन्देल : मोह (हारा हुआ आदमी) पृ. १४ पारुल प्रकाशन दिल्ली पृ. सं. १९९०
२.- मीनाक्षी कथावर्ष - १९८४ से. बटरोही एवं धर्मयुग २० नवम्बर १९८३

वह कहाँ गयी है। माँ ने खाली आँखों से देखते हुये बताया - बेटा उसे नही देखा वह वही गुम हो गई है मैं और माँ से पूछता तो वह बताती बेटा उसे ढूंढा नही जा सकता क्योंकि ढूंढने के पैसे लगते हैं।[१]

काशीनाथ सिंह की कहानी 'वे तीन घर' में भी ग्रामीण मजदूर नारियों पर होने वाले अत्याचार को निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है, "साली फटी पड़ रही है। उठा ले सुसरी को और देख मेहरा ठेकेदार का कारिन्दा धूम रिया है। सोना धीमरी को ले जायेगा। तू उससे पैले तोड़ लो। रूपा धेला ज्यादा दे दूँगा। मैं डाक बंगले होके आता हूँ तब तक सब ठीक कर लीजो, बड़े साहब का दौरा है...ससुरे माल चौखा हो।"[२] इस वर्ग की नारियों का आर्थिक , शारीरिक एवं मानसिक शोषण, समाज द्वारा किया जाने वाला आत्याचार और उत्पीड़न इसी दशक में कहानीकारों ने सहृदय होकर पूर्ण ढ़ंग से किया है। इस तरह उत्पीड़न, अत्याचार की कहानियों में 'पानी' (नरसिंह नारायण)[३] 'पाती' (राजकुमार सिंह)[४] बेला मर गयी (डॉ. राम दरश मिस्र)[५] आदि प्रमुख कहानियां है।

इस वर्ग की नारियों के प्रति ऐसा नही है कि समाज के, घर के व्यक्ति का घृणित एंव बुरा व्यवहार हो कुछ कहानियाँ ऐसी भी हैं जिनमें नारी के प्रति सम्मान एवं श्रद्धा भी दिखाई देती है। रामदरश मिश्र की 'सोहागी भउजी'[६] कहती है- "इतना समय गुजर गया तुम बड़े हो गये. बाबू तुम अपनी पड़ोस वाली सोहागी भउजी को नही पहचानते। कैसे पहचानोगे। आज तक मुझे किसने पहचाना है- नही भाभी नही।[७] राजेन्द्र लहारिया की कहानी 'भाई जान होने का अर्थ'[८] में भी नारी के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम को दर्शाया गया है। समाज में जहाँ कटुता व्याप्त है वहीं स्नेह, प्रेम की कमी भी नही है।

१.- धर्मयुग - १ सितम्बर १९९१ / पृ. ३०
२.- सारिका - १-१५ अक्टूबर १९८४ / पृ. १७
३.- निष्कर्ष संयुक्तांक - १९८९ -९०
४.- वही
५.- इकसठ कहानियाँ - रादास मिश्र
६.- वही
७.- वर्तमान साहित्य

चतुर्थ अध्याय

मनोविज्ञान एवं नवें दशक की हिन्दी कहानी में नारी

१. मानव जीवन में मनोवैज्ञानिकता का अनुभव

२. नारी मनोविज्ञान

३. साहित्य एवं मनोविज्ञान

४. कहानी विधा में मनोविज्ञान

५. कहानी साहित्य में वर्णित मनोवैज्ञानिक सिद्धंतों का परिचय

६. नवें दशक की हिन्दी कहानियों में नारी पात्रो का मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण

मानव जीवन में मनोवैज्ञानिकता का अनुभव :- १६ वी शताब्दी में पुनर्जागरण के प्रारंभ के साथ जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ, उसके कारण मनुष्य के आंतरिक तथा बाह्य जीवन के सभी व्यापारों में एक विचित्र क्रांति का सूत्रपात हुआ। हमारी विचार सरणि में परिवर्तन हुआ, जीवन पद्धति, वेषभूषा, रहन सहन सब बदलने लगे। अब तक जीवन का संचालन सूत्र धर्म तथा अध्यात्म के हाथ में था पर अब उसकी सारथित्व विज्ञान के हाथ में आ गया। तब से इसके प्रभुत्व में निरन्तर विस्तार होता ही जा रहा है। १६ वीं शताब्दी में खगोल, भूगोल तथा शरीर शास्त्र की प्रधानता रही, १७ वी शताब्दी में भौतिक तथा रसायन शास्त्र ने अपना अधिकार जमाया। १८ वी शताब्दी में अर्थ तथा राजनीति विज्ञान की तूती बोलती रही, १९ वीं शताब्दी में प्राणिशास्त्र तथा समाज शास्त्र की दुहाई फिरी और २० वी शताब्दी मनोविज्ञान का युग कहा जाता है।

भविष्य की बात कोई जान नहीं सकता। वह सदा तिमिराच्छन्न रहता है। पर आज तो स्थिति यह है कि विज्ञान का यह तरुण प्राणी मनोविज्ञान बहुत ही सक्रिय है, वह शक्ति सम्पन्न है और अपने उद्धाम आवेग में जीवन के सभी क्षेत्रों पर छा जाना चाहता है। आज सारे कार्य मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से किये जाते है। शिक्षण और अध्यापन मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से किया जाता है। लड़ाई मनोवैज्ञानिक ढ़ंग से लड़ी जाती है, धर्म-कर्म रहन-सहन बात-चीत, प्रचार-प्रसार, खान-पान, स्वागत-सत्कार, सब मे इस बात का ध्यान रखा जाता है कि वह मनोवैज्ञानिक आधार पर अवलम्बित हो। आधुनिक मनोविज्ञान का जन्मोत्सव सौ वर्षो से भी कम है औरमनोविज्ञान की एक शाखा जिसे मनोविश्लेषण कहते है वह तो अभी पचास-साठ वर्षो की भी नही है फिर भी यह सब जगह व्याप्त है।

चिकित्सा गृहों में मनोविज्ञान का एक अलग कक्ष है। औद्यौगिक संस्थाओं में समस्याओं के समाधान के लिये मनोवैज्ञानिकों की नियुक्ति की जाती है रण क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों की सेवाएं कितनी महत्वपूर्ण हो सकती हैं यह दे विश्वव्यापी युद्धों ने सिद्ध कर दिया है। व्यापार क्षेत्र में जो इसकी करामात है वह दिन रात हमारी आँखों के सामने है। यह कहना गलत न होगा कि हम मनोविज्ञान के युग में जी रहें हैं। हम यह जानते है कि मानवीय व्यापार और आचरण के इस नूतन विज्ञान ने कुछ दशकों के अंदर ही आधुनिक जीवन के स्वरूप को बदल दिया है। पर अभी भी वैसे व्यक्तियों की संख्या कम नही है जिनके लिये यह ज्ञान उनके जीवन के भावात्मक अंश का खण्ड बन कर रह गया हो।

नारी मनोविज्ञान :- नारी मनोविज्ञान समकालीन कथाकारों के आकर्षण का सर्वप्रमुख विषय रहा है। नारी में चेतना जाग्रत हुयी है। आज लड़की अपने पितृ गृह का बोझ ढ़ोती है फि पतिगृह में भी जाकर वह वैयक्तिक जीवन जीने की इच्छा के द्वन्द्ध से उबर नहीं पाती। इसी द्वन्द्ध ने नारी के व्यक्तित्व विघटन को जन्म दिया है।नारी में महत्व कामना शाश्वत् है पर पुरुष को अपना भार हल्का करने वाली नारी चाहिये न कि एक सन्तान की माँ। पुरुष के समान आगे बढ़ने के कारण केवल पढ़-पढ़ कर नौकरी करके जीवन की आनिवार्य मांग परिवारिक सुख की उपेक्षा करने वाली नारियों को तो उदासी हताशा और अकेलापन ही ही हाथ लगा है। उसकी जिन्दगी में एक प्रश्नचिन्ह लग जाता है।

नारी शिक्षा से विकसित अहं उसके दाम्पत्य जीवन के लिये अभिशाप बन गया है इस कारण जीवन के प्रति दृष्टिकोण अब पहले जैसा लचीला नही रहा। पुरुष का अहं टकराकर उसमें हीन भाव पनपा रहा है। टूटते परिवारों का यथार्थ नारी के मन में गहरा होता जा रहा है। नारी सर्वत्र अनुभव कर रही है कि हर तरफ खाई और कुएं दिखाई दे रहें हैं नवें दशक की कथाकार पीढ़ी की दृष्टि को बाहर भीतर की ट्रेजिडियों नें जैसा सूक्ष्मदर्शी और संवेदनशील बना दिया है ये नारी जीवन में व्याप्त अस्तित्व संकट, एवं टूटते ह्रदय का यथार्थ चित्रण कर रहे हैं।

साहित्य एवं मनोविज्ञन :- साम्यवाद, समाजवाद, पूंजीवाद, की प्रतिक्रिया है और दोनों के संघर्ष का फल, अहंवाद पर आधृत जगत संहारक विश्व युद्ध है। इसी पूंजीवाद के साथ-साथ बढ़ती हुयी विलासिता के फलस्वरूप शारीरिक रोगों एवं मानसिक विकारों की चतुर्दिक व्यापक वृद्धि हुयी है। इन रोगों के उपचार की खोज से मनोविश्लेषण एवं उन्मादशास्त्र और नवीन मनोविज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ है जिसका प्रभाव सामाजिक जीवन एवं साहित्य पर अक्षुण्ण है।

डॉ. भगवान दास के अनुसार पूंजीवाद के प्रतिक्रिया स्वरूप सान्यवाद, समाजवाद और मनोविश्लेषण के आधार पर निर्मित पश्चिम में दो विचार शैलियाँ वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के सभी अंगों पर ८०-९० वर्षो से भारी प्रभाव डाल रही हैं। वे शैलियाँ साम्यवाद, समाजवाद और मनोविश्लेषण के निर्माताओं पर इस तरह आधृत है-

१. मार्क्स, एगल्स, उनके परिष्कारक, परिशोधक लेनिनि, स्टालिन और उनके अनुयायियों की साम्यवाद और समाजवाद की शैली।

२. फ्राइड उनके साक्षात शिष्य भी और परिष्कारक, परीक्षक विशोधक भी, युंग, एडलर और उनके अनुयायियों और टीकाकारों की मनोविश्लेपण शैली।[1]

इन दोनों शेलियों का प्रभाव वैयक्तिक एवं समाजिक जीवनफलतः साहित्य पर ही विद्यमान है। यह प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी परिलक्षित है, परन्तु परोक्ष एवं अपरोक्ष उसकी दो विधाये है। डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने भी इन शैलियों का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दी साहित्य पर स्वीकार किया है।

मनोविज्ञान के पारदर्शी आलोक द्वारा साहित्य में अन्तर्निहित अज्ञात मन की अंध गुफाओं में मानव अन्तश्चेतना की सूक्ष्मतहों का पर्यवेक्षण कै विलक्षण रहस्यों को ढूढ़ निकालना अपेक्षित हैं। इस शताब्दी में मनोविज्ञान का हर क्षेत्र में प्रत्येक साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

---

१. नवीम मनोविज्ञान (प्रस्तावना) डॉ. भगवान दास - ले. लालजीराम शुक्ल

२. हिन्दी कथासाहित्य और मनोविज्ञान - प्राक्कथन - डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
ले.- डॉ. देश राज उपाध्याय

साहित्य में भाव ही सर्वोपरि है। "मानव में भाव , विचार और कल्पनाएं बड़ी विलक्षण होती है। डॉ. श्याम सुन्दर दास ने मानव की इन्ही कल्पनाओं, भावों तथा विचारों के व्यक्त स्वरूप को ही साहित्य की संज्ञा दी है।"[१] साहित्य में विलक्षणता एवं विविध रूपता के जो दर्शन होते हैं उसमें मानव की ही स्वाभाविक चरित्र सृष्टि विचित्रता एवं अनेक रुपता के साथ सर्जित होती है। कृतिकार साहित्यिक कला को जो जन्म देता है वह बुद्धि कल्पना और रागात्मकता पर आधारित है। डॉ. श्याम सुन्दर दास का कहना है कि मनोविज्ञान में बुद्धि को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है। मानसिक कार्यों में इसकी प्रधानता रहती है। "हमारे यहाँ इसे अन्तः करण की निश्चयात्मिका वृत्ति माना है। इसे हम मन की चेतन शक्ति भी कह सकते हैं। जब हमारा मन बुद्धि द्वारा किसी ज्ञान को प्राप्त कर लेता है तब उसके संबंध में अनेक प्रकार के भावहमारे मन में अभिव्यक्त होते हैं।"[२]

अभिव्यक्ति के उद्देश्य को मानने वाले क्रोचे और पाणिनी कला और भाषा की अभिव्यक्ति को रूप समझते हैं। पाणिनि के अनुसार "पहले आत्माबुद्धि के द्वारा सब बातों का आकलन करके मन में बोलने की इच्छा उत्पन्न करती है। जब मन कामाग्नि को उकसाता है तब कामाग्नि वायु को प्रेरित करती है, तदनूतर वह वायु छाती में प्रवेश करके मन्द रचर उत्पन्न करती है। यहाँ अभिव्यंजना का स्त्रोत मन की इच्छा द्वारा उकसायी हुयी कामाग्नि है। इस प्रकार साहित्य सर्जन में भी मन संकल्पात्मक हैं और बुद्धि का निर्णय पाकर उत्साह का उत्पादक है जिससे रचना संभव होती है।"[३]

साहित्य मानव के भावों और विचारों की समष्टि है। तात्विक दृष्टि से साहित्य के रूप की स्थिति मानसिक या भावात्मक है। भावों और मनोवेगों का अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है। यद्यपि प्राचीन वाङ्मय में मनोविज्ञान नाम का कोई विशेष शास्त्र न था तथापि योग आदि दर्शनों में एवं साहित्य शास्त्र में मनोविज्ञान संबंधी प्रचुर सामग्री मिलती है। "साहित्य में भावात्मक एवं रागात्मक तत्व की प्रधानता होने के कारण उस पर प्रकाश डालने वाले काव्य की आत्मा स्वरुप रस के निरुपण में मनोवेगों से संबंध बहुत कुछ सामग्री उपलब्ध हो सकती है।"[४] मानव व्यक्तित्व संबंधी ज्ञान के लिये विविध आंतरिक भावों के परिचय के लिये यह कोई आवश्यक नहीं कि साहित्यकार की सर्जनात्मक प्रतिभा मनोविज्ञान वेत्ताओं की ऋणी हो। नही, उसकी प्रतिभा की किरणें स्वतन्त्र रूप में ही उस रहस्मय स्थल को आलोकित कर सकती है जहाँ मनोवैज्ञानिक को पहुचने में देर लगे।

"शेक्सपीयर के समय में फ्रायड कहाँ थे, पर उनके पात्रों के व्यक्तित्व में इडिपस ग्रंथि के चमत्कार पाये ही जाते हैं। वास्तव में साहित्यकारों की कल्पना ही उन सामाग्रियों को धीरे-धीरे उपस्थित कर देती है जिन्हें आगे चलकर कोई वैज्ञानिक व्यवस्थित कर एक सिद्धांत का रूप देता है।"[५] फ्रायड द्वारा भी यही हुआ है।

स्वयं फ्रायड ने अचेतन मन के अविष्कार का श्रेय दार्शनिकों और साहित्यकरों को ही दिया है। इस संबंध में उसका कथन है कि "कवि और दार्शनिकों ने अचेतन मन का अविष्कार मुझसे पहले ही कर दिया था, मैंने तो उस वैज्ञानिक पद्धति को प्रस्तुत किया है जिसके द्वारा अचेतन मन का अध्ययन सुगमता से किया जा सके।"३

---

१. साहित्यालोचन डॉ. श्याम सुन्दर दास पृं. सं. २८४
२. साहित्यलोचन डॉ. श्याम सुन्दर दास पृ सं. ५२५
३. आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन पृ. सं. ६० ले. डॉ. गणेशदत्त गौण
४. सिद्धांत और अध्ययन - गुलाबराय पृ. सं. १७६
५. आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य और मनोविज्ञान - डॉ. देवराज उपाध्याय पृ. ३४२
6. The liberal imagination by lional Trilling p.p. 34 "The poets and philosophers before me discovered the unconscious What unconstious can be studied

कहने का अर्थ यह है कि साहित्य मानव जीवन और उनके भावों एवं विचारकों का लेखा है। मनोविज्ञान भी उस जीवन के अनुभव और व्यापार का अध्ययन प्रस्तुत करता है। दोनों का संबंध जीवन से है। मानव जीवन ही साहित्य का केन्द्र विन्दु है और मनोविज्ञान का भी। दोनों का मानव के मनोविकारों से घनिष्ट संबंध है। यदि साहित्य में मनोविज्ञान की कुछ उपपत्तियाँ स्वाभाविक रुप से समाविष्ट पायी जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? उपयुक्त सत्य को दृष्टि में रखते हुये साहित्य और मनोविज्ञान का संबंध संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत है।

(१) साहित्य और मनोविज्ञान की परिभाषा में समानता - साहित्य मानव जीवन की अभिव्यक्ति और उनके भावों एवं विचारों का व्यक्त रुप है। मनोवज्ञान भी मानव जीवन का पर्यवेक्षण करता हुआ तत्संबंधी भावों एवं विचारों के अव्यक्त रुप को व्यक्त करता है।

(२) साहित्य की मूल प्रेरणा से मनोविज्ञान का सानिध्य - सौन्दर्यानुभूति के आनन्द का उच्छलन, आत्मप्रदर्शन और अनुकरण प्रवृत्ति ही साहित्य की मूल प्रेरणा है। मानवीय मनोविज्ञान के अनुसार अतृप्त दमित वासनाओं का साहित्य में मार्गान्तरीकरण ही सौन्दर्यानुभूति का प्रस्फुटन है।" आत्म प्रदर्शन में एडलीरीय आत्म स्थापन का प्रकाशन्तर है और उसकी अनुकरण प्रवृत्ति फ्राइडियन आनुवांशिक पूर्व प्रवृत्ति से मेल खाती है।"१

(३) साहित्य और मनोविज्ञान का उद्देश्य - साहित्य का उद्देश्य मानसिक वृतियों को संगठित कर उसमें सामजस्य स्थापित करना या समाज की विषमताओं के प्रतिक्रिया रुप मानव मन का अनुभूति के कुछ क्षणों में अपनी दबी घुटी इच्छाओं को अभिव्यक्त करना मात्र है। मानसिक वृत्तियों का यह सामजस्य मनोविज्ञान के ईगो, सुपर ईगो, में साम्य स्थापित कर मानसिक संतुलन बनाना है। साहित्य में दबी घुटी इच्छाओं की अभिव्यक्ति की अनिवार्यता, फ्राइड के अचेतन इच्छाओं का चेतन पर लाकर मानसिक संतुलन बनाने के समान है।

(४) साहित्य और मनोविज्ञान का उदात्त रुप- साहित्य मानव की मनोवृत्तियों में समरसता का प्रयत्न उपस्थित कर मनोवेगों को उच्छवसित करता है। रागो की यह परिष्कृति, फ्राइडियन विकृत मन की इसी परिशोधन विधि के समान है, जिसमें अतृप्त दमित इच्छाओं को उन्नयन की ओर मोड़ दिया जाता है। इस प्रकार साहित्य और मनोविज्ञान का संबंध इन दोनों की परिभाषा मूल प्रेरणा, उद्देश्य और उदात्त भावों के अन्तर्गत समाहित है। इस मत का प्रतिपादन भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इस प्रकार किया है-

डॉ० गुलाबराय के अनुसार - "साहित्य जीवन से भिन्न नहीं है वरन् वह उसका ही मुखरित रुप है, वह जीवन के महासागर से उठी हुयी उच्चतम तरंग है। मानव जाति के भावों, विचारों और संकल्पों की आत्मकथा साहित्य के रुप में प्रसारित होती है।"२ डॉ. नगेन्द्र जीवन की अन्य अभिव्यक्तियों की भाँति साहित्य को भी एक विशेष प्रकार की अभिव्यक्ति मानते हैं।"३ हीगल ने मानव के जन्मजात सौन्दर्य प्रेम को उसकी

---

१. आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन : डॉ. गणेशदत्त गौण पृ. ६२

२. सिद्धांत और अध्ययन - डॉ. गुलाबराय पृ. ६९-७०

३. विचार और अनुभूति - डॉ. नगेन्द्र पृ. १७

४. विचार और अनुभूति - ड. नगेन्द्र पृ. ६

आत्मप्रदर्शन और अनुकरण प्रवृत्ति को साहित्य की मूल प्रेरणा माना है।"४

डॉ. यदुनाथ सिन्हा के शब्दों में - " मनोविज्ञान प्रायः मनुष्यों की सामूहिक मानसिक वृत्तियों के समझने के उद्देश्य को लेकर उनकी परम्पराओं, रीति रिवाजों, पुराणों, पंत कथाओं, धर्म और लोक गीतों, भाषा और साहित्य का अध्ययन करता है। ये सामूहिक मन के बाह्य प्रकाशन है।"१ रिचर्डस साहित्य का उद्देश्य मन की वृत्तियों को संगठित कर उनमें सामजस्य स्थापित करना बतलाता है।"२

भारतीय विद्वान ही नही अपितु पाश्चात्य विचारक भी साहित्य सर्जना को मनोवैज्ञानिक वस्तु के रुप में ही देखते आये हैं। पाश्चात्य विचारक अरस्तु साहित्य को 'अनुकरण की प्रवृत्ति से उद्भूत'३मानते हैं। अनुकरण की प्रवृत्ति मानव की सहज प्रवृत्ति है जिसके प्रेरणास्वरुप मानव शिशु हंसना, बोलना व भाषा आदि सीखता है। अनुभूति के क्षणों में यही प्रवृत्ति साहित्यकार को साहित्य रचना की प्रेरणा देती है। क्रोचे भी साहित्य को मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रुप में देखते हैं। उनके अनुसार "साहित्य सहजानुभूति है।"४ सहानुभूति एक सहज मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति है। प्रत्येक व्यक्ति अपने सुख अथवा दुःख में किसी अन्य की सहानुभूति की उपेक्षा करता है पर दुःखकातरता की यह भावना जो सहानुभूति से निःसृत होती है, पाठक श्रोता या दर्शक को साधारणीकरण की अवस्था तक पहुँचाकर उसे साहित्य का रसास्वादन कराती है। सौन्दर्यानुभूति के क्षणों में यही साहित्य के विविध रुपों को जन्म देती है। इस प्रकार पाश्चात्य विचारक भी साहित्य को मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रुप में ही देखते हैं।

कई मनोवैज्ञानिकों ने साहित्योद्भावना के अनेक मनोवैज्ञानिक कारण बताकर उसके फलस्वरुप साहित्य के मनोवैज्ञानिक आधारों का उदघाटन किया है। फ्राइड का कथन है कि- " साहित्योद्भावना का मूल कारण अनुक्त काम की भावना है।"५ काम की प्रवृत्ति असामाजिक व अनैतिक होने के कारण नैतिक मन इस पर प्रतिबंध लगता है। फलतः वे भावनाएं अचेतन मानस् में जाकर जड़ जमा लेती हैं। विभिन्न रुपों में मानव व्यवहार को प्रभावित करती हैं। अमुक्त काम की भावनाएं उदात्तीकृत होकर साहित्य की विभिन्न विधाओं-कविता, कहानी, उपन्यास आदि के रुप में निसृत होती हैं। एडलर के अनुसार- "साहित्य सर्जना के मूल में हीनता ग्रंथि है।"६ जब व्यक्ति हीन भाव से संत्रस्त होता है, तो वह श्रेष्ठता प्राप्ति के हेतु संघर्षरत होता है। जीवन के हर क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त कर हीन भाव की क्षति पूर्ति करना चाहता है। श्रेष्ठता प्राप्ति की यही भावना साहित्यकार को साहित्य सर्जना के हेतु प्रेरित करती है, जो हीन भावना के परिणाम स्वरुप जन्म

---

१. मनोविज्ञान (हि. सं.) डॉ. यदुनाथ सिन्हा पृ. ७

२. आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन ले. डॉ. गणेशदत्त गौण पृ. ६४

३. अरस्तू का काव्य शास्त्र - डॉ. नगेन्द्र पृ. १५

४. विचार और अनुभूति - डॉ. नगेन्द्र पृ. ५२

५. मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं - डॉ. पद्मा अग्रवाल पृ. १६२

६. मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं - डॉ. पद्मा अग्रवाल पृ. १६९

लेती हैं। (Jung) युंग साहित्य की उद्‌भावना जीवन की इच्छा की प्रवृत्ति"१ से मानते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज और संस्कृंत मिलकर व्यक्ति की एक जीवन शैली निर्मित करते हैं। परन्तु इसमें कही कहीं अवरोध भी उत्पन्न होते हैं। जो भाव ग्रंथियों को जन्म देते हैं। यह अवरुद्ध भावनाएं ही साहित्यकार को साहित्य संरचना की ओर प्रेरित करती हैं। इस प्रकार मनोविज्ञान व साहित्य वस्तुतः एक सिक्के के दो पहलू हैं और दोनों परस्पर आवेष्टित हैं, क्योंकि साहित्यकार मानव है और मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय वस्तु भी मानव व्यवहार है। मानवीय समस्याओं की जटिलता में वृद्धि व उनके समाधान के अन्वेषण के परिणाम स्वरुप मनोविज्ञान के अध्ययन का कार्यक्षेत्र उत्तरोत्तर विकसित होता जा रहा है। अब उसकी अनेक शाखा प्रशाखाएं विकसित हो चुकी हैं जो समाज में मानव के सफल समायोजन में सहायक होती हैं।

आधुनिक युग में मानव जीवन की प्रत्येक क्षेत्र मनोवेत्ता के अध्ययन का विषय बन रहा है। साहित्यकार भी मानव है- सामाजिक प्राणी है। अतः उसकी साहित्यिक सर्जना भी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के अधीन हैं। ज्यो-ज्यों मनोविज्ञान वैज्ञानिकता की ओर अग्रसर हो रहा है। त्यो-त्यों साहित्यिक विधाएं उसी के समकालिक सिद्धातों और विचारधाराओं से प्रभावित होती जा रही है। वर्तमान युग के उत्कृष्ट समालोचक डॉ. नगेन्द्र, डॉ. देवराज उपाध्याय प्रभृति विद्वान साहित्य सर्जना को मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत ही समाहित करते हैं। डॉ. नगेन्द्र साहित्य को जब आत्म और अनात्म के संघर्ष से उद्‌भूत' बताते हैं, तो उनका अभिप्राय साहित्य में मनोवैज्ञानिक भाव ग्रंथियों व चेतन और अचेतन स्तर पर होने वाले मानसिक अर्न्तद्वन्द्व को ही साहित्य में प्रतिष्ठित करने का होता है।

न केवल आधुनिक युग में अपितु प्राचीन विद्वानों की विचारधाराओं पर भी यदि विहंगम दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि वे साहित्यिक सर्जना को मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रुप में ही देखते थे। अन्तर केवल इतना है कि २०वी. सदी के साहित्यकार प्रत्यक्ष रुप से मनोवैज्ञानिक कुष्ठाओं, असामान्य व्यक्तियों के साहित्य में प्रकट करते हैं जबकि प्राचीन युग के साहित्य में वह प्रछन्न होकर आता था। महाकवि तुलसी का प्रख्यात ग्रंथ 'रामचरितमानस उनके अन्तर में उठने वाली भावोर्मियों की विराट प्रक्रिया मात्र है, यद्यपि उसमें तुलसी ने किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया है, तथापि उसे हम एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रुप में ही देख सकते हैं।

---

१. मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं- डॉ. पद्मा अग्रवाल पृ. १७२

कहानी विधा में मनोविज्ञान

'साहित्य की सशक्तम् आधुनिक विद्या कहानी का आंगन अपार है।'[१] जनमन के अश्रुहास, विवशता सामर्थ्य, करुणा निर्ममता, तनाव तृप्ति, व्यर्थता अर्थवत्ता, सक्रियता, तथा संवेदना भवबोध बड़ी सार्थकता से इसमें अभिव्यक्त है। डॉ. प्रतापनारायण टण्डन के शब्दों में- "समस्त साहित्यांगो में संभवतः कहानी ही ऐसा एक मात्र माध्यम है जो अपने लघु परिवेश में भी वृहत् जीवन को अभिव्यंजित कर देने में समर्थ है।"[२] वस्तुतः जटिल आधुनिक जीवन की जितनी यथार्थ अभिव्यक्ति कहानी में संभव है उतनी किसी अन्य विद्या में नही।"[३] समस्त साहित्यिक विद्याओं की जननी होकर भी साहित्य का एक अवयव मात्र है।"[४] अल्पकाय (Shor Story) होकर भी स्फूर्ति शीला है, विवाद का केन्द्र होकर भी लोकप्रिय है।"[५]

आत्माभिव्यक्ति (कहने की प्रेरणा) कहानी का मूल है। यह बात दूसरी है कि प्राचीन विश्व कहानियों में जहाँ शैशव की आँखों का सा कौतुहल, जिज्ञासा, बाल्यावस्था के मन जैसी तथा तोता मैना के किस्सों वाली मनोरंजकता, चित्र विचित्रता दर्शन वृत्ति के कारण बाल और सामान्य मनोविज्ञान के अनुकूल ही है। आज की कहानियाँ अपनी युवा मन जैसी गंभीरता, जीवन की जटिलता के कारण युवा मनोविज्ञान, वैयक्तिक मनोविज्ञान, समाज मनोविज्ञान, और असमान्य मनोविज्ञान के बहुत सन्निकट है।

कहानी के संरक्षकों और निर्माताओं ने मनोवैज्ञानिकता को ही कहानी का श्रेष्ठ निकर्ष सिद्ध किया है। प्रेमचन्द जी शब्दों में - " सबसे उत्तम कहानी वह होती है जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो। वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ एवं स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है। उसमें कल्पना की मात्रा कम और अनुभूति की मात्रा अधिक होती है। बल्कि अनुभूतियाँ ही अनुरंजित होकर कहानी बन जाती है"[६]

श्री जैनेन्द्र कुमार कहानी को मानव जीवन के विविध पक्षीय प्रश्नों के समाधानों की खोज के रुप में एक नैसर्गिक क्षुधा के रुप में परिभाषित करते हैं- "यह तो एक भूख है जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती है, हमारे अपने सवाल होते हैं शंकाएं होती हैं, चिन्ताएं होती है और हम उनका उत्तर और उनका समाधान खोजने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। कहानी उस खोज के प्रयत्न का एक उदाहरण है। ...... कहानी शिल्प नही संवेदन और संवेध है।"[१] आज के कहानीकार के शब्दों में भी कहानी का संबंध जीवन के यथार्थ से होता है। उसी सत्य अनुभूति का वह सहज प्रस्तुतीकरण होती है।"[२]

---

१. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल : हिन्दी कहानियों की शिल्प विधि का विकास पृ. ३८४

२. हिन्दी कहानी की कला पृ. १

३. डॉ. राजेन्द्रनाथ शर्माः शुभाशंसा (प्रेमचन्दोत्तर कहानी साहित्य-डॉ. राधेश्याम गुप्ता)

४. प्रो. महेन्द्र प्रताप बटरोही : हिन्दी कहानी पन्द्रह पगचिन्ह पृ. ६

५. हिन्दी की नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्यय - डॉ. मिथिलेश रोहतगी

६. प्रेमचन्द कुछ विचार पृ. ५३

कहानी का मनोवैज्ञानिक होना नितान्त आवश्यक भी है। परिवर्तित परिस्थितियों में भी कविता की विधाा कुछ कला के लिये तटस्थ रह सकती है। एक प्रकार की दूरवर्तिता (Mode of distance) उसे निरन्तर नियत भी रखती है। इसलिये आत्मगत प्रवाह की इसमें अधिक गुंजाइश है। कहानी इसके विपरीत जीवन स्थितियों के समानंतर प्रवाह की अपेक्षा रखती है और अनुभवों के माध्यम से प्रकाशित होती है। कमलेश्वर के शब्दों में- " कहानी हमेशा एक प्रयोजन से जुड़ी है ...... सहअनुभूति की अधिकाधिक एकात्मकता ही इसकी यात्रा का लक्ष्य रहा है इसलिये कहानीकार की नियति भोक्ता होने में है वह निजत्व को रखते हुये भी अकेला नहीं हो पाता। अकेला होना उसकी मृत्यु है। सीमित अनुभवों का व्यक्ति कवि हो सकता है कहानीकार नहीं। कहानी मनुष्य की बौद्धिक या सामाजिक अपेक्षाओं से ज्यादा जुड़ी है। निरन्तर जटिल होते जीवन को वहन कर सकना शायद कहानी के ही वश का है या फिर नाटक के।"४

जहाँ तक कहानी मानव मन की गहराइयों में प्रविष्ट होती है उसका मनोवैज्ञानिक रुप श्लाध्य है और वांछित भी। और, जहां वह इने गिने मनोनैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रतिफलन मात्र दीखती है या केस हिस्ट्रियां तैयार करने में अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझती है, सराही नही जा सकती। उस स्थिति में वह व्यष्टि या समष्टि के लिये हितकर हो सकती है और न ही उसमें कहानी का रुप निखर सकता है।

कहानी में वर्णित मनोवैज्ञानिक सिद्धातों का संक्षिप्त परिचयः - साहित्य को प्रभावित करने वाली मनोविज्ञान की शाखाओं में व्यक्तित्व विज्ञान (Personotogy) तथा आसाधारण मनोविज्ञान (Abnormal Psychalogy) है। आधुनिक युग में मनोविश्लेषण के क्षेत्र में सर्वाधिक विकास से इसने साहित्य जगत को अत्यधिक प्रभावित किया है। फ्रायड, युंग, एडलर, एरिक फ्राम, आंटोरैंक, कैरेन हार्नी के व्यक्तित्व संबंधी सिद्धांतो व मनोविश्लेषणात्मक पद्धतियों ने साहित्यकार को अनेक रुप से प्रभावित किया है।

(क) व्यक्तित्व :- व्यक्तित्व "व्यक्ति के व्यवहार की वह व्यापक विशेषता है जो उसके विचारों और उनको प्रकट करने का ढंग, उसकी अभिवृत्ति और रुचि, कार्य करने के उसके ढंग और जीवन के प्रति उसके व्यक्तिगत दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रगट होता है।"[३] व्यक्तित्व शब्द से उन बातों का बोध होता है जो हम में हैं या जिनका हम अभिमान करते हैं। हमारे शरीर, मन, चरित्र, बुद्धि सभी का समावेश व्यक्तित्व में होता है। मनुष्य की संवेदनाएं, मूल प्रवृत्तियाँ, उद्वेग, प्रत्यक्ष ज्ञान, कल्पना, स्मृति, बुद्धि, विवेक सभी मानसिक शक्तियों का सम्बोधन 'व्यक्तित्व' शब्द से होता है।[४] व्यक्तित्व, व्यक्ति के सम्पूर्ण अन्तः एवं बाह्य गुणों का तथा उसके जन्म जात् एवं अर्जित गुणों का संगठन मात्र है।

Allport (ऑलपोर्ट) के अनुसार- " व्यक्तित्व, व्यक्ति के मनोदैहिक तन्त्र का गत्यात्मक संगठन है, जो उसके वातावरण के अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करता है।"[५] व्यक्तित्व संबंधी विभिन्न विद्वानों के उपयुक्त विचारों से स्पष्ट है कि एक विशेष प्रकार का मानव बनने में हमारे चरित्र का गठन, हड्डियों का आकार-प्रकार, ऊँचाई, रंग आदि का सहयोग बांछनीय है।

---

१. जैनेन्द्र कुमार - साहित्य का श्रय और प्रेय , कहानी क्या? शीर्षक निबंध।

२. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : पूर्व पेठिका, हिन्दी कहानीः उद्‌भव और विकास, सुरेश सिन्हा पृ. १

३. वुडवथ और मार्क्विन्स : मनोविज्ञान पृ. ५३

४. ए. ए. रोषक - Persanality पृ. ८७

५. Allport - Personality पृ. २८२

ये तीनों यदुनाथ सिन्हा की पुस्तक से लिये हैं।

मनोवैज्ञानिक के अनुसार व्यक्तित्व को निर्धारित करने वाले अंग वातावरण एवं आनुवंशिकता है। शारीरिक गठन आनुवंशिक होने पर भी वातावरण से प्रभावित रहता है। सूर्य की प्रखर रश्मियों से बालों में कड़ापन आ जाता है और रंग बदल जाता है। शारीरिक परिश्रम से स्नायु दृढ़ होते हैं। मन्द प्रकाश में पढ़ने से दृष्टि क्षीण हो जाती है।

व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने में शारीरिक गठन के अतिरिक्त वेशभूषा द्वारा निखार आता है। इन सबके बाद स्वभाव प्रमुख है जो व्यक्तित्व में आकर्षण लाता है। शरीर से, स्वभाव से, कोमल व्यक्ति का व्यक्तित्व सभी के लिये आकर्षक हो जाता है। शारीरिक गठन और स्वभाव किसी सीमा तक अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों की प्रक्रिया पर निर्भर रहते हैं। वातावरण का भी व्यक्तित्व पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति का लालन पालन जिस प्रकार के वातावरण में होगा, वह व्यक्ति आगे चलकर वैसा ही बनेगा। सन्तान के प्रति माता पिता का व्यवहार, चाहे वह कठोर हो या स्नेह शील, वह बालक की संस्कृति का निर्माण करता है। यदि माता पिता दमन शील प्रकृति के हैं, स्नेह की बाह्य अभिव्यक्तियाँ नहीं करते तो बालक प्रायः अर्न्तमुखी प्रवृत्ति का होता है। इसके अतिरिक्त माता पिता का अत्यधिक लाड़ प्यार बालक में आत्म प्रदर्शन की प्रवृत्ति उत्पन्न करता है। वे वर्हिमुखी व्यक्ति बनते हैं।

यौन विषयों में बालक, बालिका की जिज्ञासा के संबंध में माता पिता की प्रतिक्रियाएं, संबंधियों एवं पड़ौसियों के प्रति उनके उद्‌गार आदि सभी का प्रभाव पड़ता है। परिवार के अतिरिक्त समाज विद्यालय, मंदिर, मस्जिद तथा साथियों का प्रभाव भी बालक, बालिका पर पड़ता है। अनुवंशिकता की अपेक्षा वातावरण का प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ्य, स्नायु विकास, बुद्धि आदि पर विशेष रुप से पड़ता है। वातावरण के अनुसार ही व्यक्ति भाषा सीखता है, वस्त्र पहनता है और अपना जीवन स्तर निर्मित करता है। अतः यह स्पष्ट रुप से कहा जा सकता है कि व्यक्ति का पारिवारिक जीवन, रीति रिवाज परम्पराएं भले ही आनुवंशिक हो किन्तु हमारी संस्कृति का निर्माण वातावरण पर ही निर्भर करता है। "हमारी पित्रागत संरचना हमें मानवीय बनाती है, हमारा परिवेश हमारी अर्जित मानवीयता की शैली निर्धारित करता है।"[१]

(ख) व्यक्तित्व और चरित्र :- मेक्डूगल ने "चरित्र को प्राज्ञात्मक भावात्मक एवं क्रियात्मक तत्वों का संगठन माना है।"[२] वस्तुतः चरित्र का निर्माण इच्छा शक्ति पर निर्भर करता है। बाह्य आकर्षण की अपेक्षा जिस व्यक्ति का अपने संवेगों पर नियंत्रण होता है उसका चरित्र ही सशक्त चरित्र कहलाने के योग्य होता है। इसके विपरीत दूसरे प्रकार के व्यक्ति होते हैं जिनमें मनोबल का अभाव होता है। इच्छा शक्ति क्षीण होती है। वे दूसरे के प्रभाव में शीघ्र आ जाते हैं। ऐसे व्यक्ति दुर्बल इच्छा शक्ति वाले होते हैं। उनमें मानसिक द्वन्द्व की मात्रा अधिक एवं अहं की मात्रा कम होती है। कथा संसार में इन दोनों प्रकार के चरित्रों को प्रस्तुत करना कथाकारों का शौक रहा है।

---

1. Herbert sprenson of Margaerite Mal-Psychology for living- Page - 16
   (Our inherited structures make us human our environment delermines the style of humaness we acquire)
2. An out line of Psychology - Page -76

उदाहरण पद्‌मा अग्रवाल की पुस्तक से लिये हैं।

इन कहानियों में पात्रों में जहाँ एक ओर आत्म विश्वास और मनोबल से परिपुष्ट चरित्र वाले पात्र - लच्छमी (श्रवण कुमार)[१], बेला (अरुण प्रकाश)[२], कसाईबाड़ा (शिवमूर्ति)[३], कल्याणी (विष्णु प्रभाकर)[४] आदि हैं वही दूसरी ओर मनोबल से क्षीण दुर्बल इच्छा शक्ति वाले पात्र - जमुनी (मिथिलेश्वर)[५], दुलारी बाई (घर चलो दुलाई बाई) (संजीव)[६] भी हैं। नवें दशक की हिन्दी कहानियों में इसी तरह के पात्र यथार्थरुप में प्रस्तुत हुये हैं।

(ग) शील गुण :- ऑलपोर्ट के अनुसार- "व्यक्तित्व शील गुणों का समुच्चय है।"[७] शील गुण के अभाव में व्यक्तित्व का समुचित विकास संभव नही है। शील गुण के अभाव में व्यक्तित्व का समूचित विकास संभव नहीं। जिनके आधार पर व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्ति की जीवन शैली इन्ही के द्वारा निर्धारित होती है। शील गुण व्यक्ति विशेष पर निर्भर करते हैं। दया, क्षमा, ममता, करुणा, ईमानदारी, सामाजिकता, साहस, धैर्य, वीरता लगन आदि व्यक्तित्व के शील गुण हैं। कथाकार स्त्री जाति में इनका होना बांछनीय समझते हैं। जहां कहीं नारी इन गुणों की अवहेलना करती हैं वहीं वह आदर्श से नीचे गिर जाती है। प्रत्येक नारी में ये गुण अजस्त्र धारा के समान प्रवाहित होते हैं पर कालचक्र नारी के गुणों में कुछ परिवर्तन ला देता है। और नारी इन सद्‌गुणों की अपेक्षा दुर्गुणों की ओर आकर्षित होने लगी है।

---

१. लच्छमी (श्रवण कुमार) (स्पन्दन) पृ. ८८ जगतराम एण्ड संस दिल्ली
२. बेला एक्का लौटा रही है : अरुण प्रकाश (आयाम प्रकाशन शाहदरा दिल्ली)
३. कसाईबाड़ा- शिवमूर्ति पृ. १७ राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली
४. कल्याणी - विष्णु प्रभाकर- समकालीन हिन्दी कहानी यथार्थ के विविध सायाम- ज्ञानपति अरोरा पृ. १९९
५. जमुनी - मिथिलेश्वरः इन्द्रमुखी भारती त्रैमासिक (पृ. १०१)
६. घर चलो दुलाई बाई- संजीब (दुनिया की सबसे हसीन औरत) पृ. १५ यात्री प्रकाशन दिल्ली सन् १९९०
I. Personality - Allport १६०

'अस्तित्व बोध' (भगवती प्रसाद द्विवेदी) की नायिका में सम्पूर्ण शील समाया हुआ है। एक ग्रामीण नारी के सभी आदर्श गुणों से विभूषित है।[१] यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र की कहानी 'नारी और पत्नी'[२] की जोर की।

भारतीय शील गुणों की खान है। नारी के शील गुणों में सहनशीलता को प्रमुख स्थान प्राप्त है। आज वैवाहिक जीवन की यन्त्रणा असहनीय होती है। समर्पण और प्रेम के एक निष्ठ भाव के साथ-साथ नारी में सन्तोषी, कलह, शून्य जीवन बिताने की मधुर कामना होती है। उदाहरण स्वरूप - 'एक अधूरी कहानी'[३] की सोहागी भउजी व आखिरी चिट्ठी [४] की प्रभा 'अकेला मकान [५] की फुलवा को ले सकते हैं।

(घ) विचार - एक मनोवैज्ञानिक के अनुसार " विचार मन की वह प्रक्रिया है जिसमें हम पुराने अनुभवों को वर्तमान समस्याओं के हल करने में लगाते हैं।[६] विचार का शाब्दिक अर्थ सोचना एवं चिन्तन है। इस प्रकार विचार बुद्धि द्वारा उपलब्ध विशेष मानसिक प्रक्रिया का नाम है। मनोवैज्ञानिकों ने समस्त मानसिक प्रक्रियाओं को तीन पक्षों में विभाजित किया है - (१) ज्ञानात्मक

(२) वेदनात्मक

(३) चेष्टात्मक

"विचार का संबंध चेतना के ज्ञानात्मक पक्ष से है और भाव का संबंध चेतना के वेदनात्मक पक्ष से है। विचार प्रत्यय बोध या अनुभूति का विश्लेषण करता हुआ आगे बढ़ जाता है जबकि भाव अनुभूतियों का आस्वादन करते हुये उन्हीं में रम जाता है।"[७] इस प्रकार विचार और भाव एक ही मस्तिष्क से सम्बद्ध होते हुये भी दो विरोधी दशाओं में अग्रसर होते हैं।

मार्मिक व संवेदनशील कहानियों में पात्रों के विचारशील व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया गया है। उनके पात्रों में एक ओर जहाँ ऊहापोह दृष्टिगत होता है वहीं उनके विचारों में दृढ़ता व अपरिमित शक्ति भी दृष्टिगत होती है। इन कहानियों में पात्रों में जहाँ एक ओर भावों का द्वन्द्व है वही उनके विचारों में गहनशक्ति भी प्राप्त होती है।

अर्चना वर्मा की 'स्थगित'[१] में भावों का द्वंद्व व विचारों की गहन शक्ति रखती नायिकाएं है। इसमें दस

---

१. वर्तमान साहित्य अगस्त १९९१/ पृ. ३८

२. साप्ताहिक हिन्दुस्तान मई १९८८

३. बसंत का एक दिन - १९८२ रामदरश मिश्र

४. बसंत का एक दिन - १९८२ रामदरश मिश्र

५. बसंत का एक दिन - १९८२ रामदरश मिश्र

६. लालजी राम शुक्ल - मनोविज्ञान पृ. १३२

७. साहित्य विज्ञान - डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त पृ. ३२

कहानियाँ हैं। नारी जीवन एवं नारी मन की गहरी विचार शक्ति को प्रस्तुत करने वाली श्रेष्ठ कहानियाँ है।

(ङ) कल्पना - 'कल्पना' अप्रत्यक्ष वस्तुओं के संबंध में चिन्तन व मनन है।[२] कल्पना वह मानसिक प्रक्रिया है जो किसी पदार्थ की अनुपस्थिति में मस्तिष्क के समक्ष उसे मूर्त रुप प्रदान करती है कल्पना पूर्व अनुभूतियों पर निर्धारित होती है। इसकी क्रिया इच्छाओं से प्रेरित होती है। यह स्वच्छन्द है और इसकी सामग्री बिम्ब रुपों में मस्तिष्क में संचित रहती है। कल्पना का कार्य अतीत अनुभव को अभिनव रुप प्रदान करना है। इस प्रकार कल्पना, विचार, स्मृति, बिम्ब विधान से पृथक एक मानसिक क्रिया है। कथाकार की सर्जन क्रिया में कल्पना का महत्वपूर्ण योगदान है। इसके सहारे ही कथाकार नयी कथाओं की सृष्टि करता है। नवें दशक के नारी पात्रों में विलक्षण कल्पना शक्ति का निदर्शन हुआ है। इन नारी पात्रों में अत्यधिक सुखद अनुभूतियों की कल्पना में डूबकर नारियाँ अपना सर्वस्व तक लुटा बैठती हैं। इन नारियों ने अपने होश तक गवां दिये हैं। ये अपने मूल्य या आदर्शो की कल्पना की उड़ान में खो चुकी हैं।

सुरेन्द्र अरोड़ा की एक सशस्त और सार्थक कहानी है- सीढ़ियाँ [३] जिसकी नायिका सफलता की अंतिम सीढ़ी तक पहुँचने के लिये बीच की सभी सीढ़ियों (नैतिकता, मूल्य, आदर्श) को छलांग लगाकर छोड़ती चलती है। उसका लक्ष्य केवल अंतिम सीढ़ी है, जहाँ सम्पन्नता, अधिकार, वैभव और समृद्धि है। कल्पना में नारी बहुत ऊँचे आकाश में उड़ने का प्रयास कर रही है।

(च) भाव - भाव एक सरल मानसिक प्रक्रिया है। भाव आत्मगत, चंचल व क्षणिक होता है। भावों में मात्रात्मक भेद होता है, कोई भाव प्रबल और कोई कम प्रबल होता है। विद्वानों ने भावों के दो प्रकार माने हैं सुखद और दुखद। सूक्ष्म दृष्टि से भाव के अनेक प्रकार हो सकते हैं- अनूभूति, संवेग, मनः स्थिति, भावना, उमंग आदि। जब व्यक्ति अनेक भावों की अनुभूति एक साथ करता है तब उसमें मिश्रित भाव जन्म लेता है। भाव एक वांछनीय तत्व है। इसके बिना किसी भी प्रकार के साहित्य का सृजन असम्भव है। साहित्य की आत्मा, रुप, रस का यह प्राण है। सांतवे दशक में उभरे हिन्दी के चर्चित कथाकार जयनारायण की कहानी दरवाजे पर दस्तक देता प्रश्न [४] अनेक भावों को प्रस्तुत करती कहानी है। दुःखद भावों को लिये 'जलते हुये डैने' कहानी संग्रह (हिमांशु जोशी) [५] की कहानियाँ उदाहरण स्वरुप ली जा सकती है।

(छ) अपराधः- अचेतन मन की दमित इच्छाएं व्यक्ति को अपराधों की प्रेरणा देती है। ये इच्छाएं जितनी

---

१. अर्चना वर्मा - स्थगित - हिन्दी कहानी समीक्षा और सन्दर्भ (डॉ. विवेकी राय) १९८५

२. An out Line of Psychology - २८४

३. सुरेन्द्र अरोड़ा : सीढ़ियाँ : साप्ताहिक हिन्दुस्तान पृ. ४० १९८६

४. दरवाजे पर दस्तक देता प्रश्न - जयनारायण -

५. जलते हुये डैन - हिमाँशु जोशी

(हिन्दी कहानी समीक्षा और सन्दर्भ- डॉ. विवेकी रॉय)

ही तीव्र व उग्र होती हैं, व्यक्ति उसी अनुपात में उतना ही अधिक अपराधी बनता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं अतृप्त इच्छाएँ ही अपराध का कारण बनती है। एडलर के अनुसार -

" आत्मस्थापन की वृत्ति का सन्तुष्ट न होना ही अपराध का प्रमुख कारण है।[१] प्रतिष्ठा प्राप्ति की आकांक्षा हर व्यक्ति में होती है। जब इसकी पूति नहीं होती तो व्यक्ति असमाजिक ढंग से उसकी पूर्ति करने लगता है। फलतः अपराधों का सूत्रपात होता है। युंग के अनुसार-

"मानसिक शक्ति का अत्यधिक प्रवाह किसी विशेष दशा में होने के फलस्वरूप अपराधों का जन्म होता है।"[२]

कामासक्त होने पर व्यक्ति अमानुषिक और अनैतिक कार्यो को करने में भी संकाच नही करता है, इसी प्रकार प्राप्ति की आकांक्षा तीव्र होने पर भी व्यक्ति सब कुछ कर सकता है। वर्तमान में व्यक्ति के मन में एवं कहानियों के पात्रों के मूल में इसी पृवृत्ति का अत्यधिक विकास दिखाया गया है। बलात्कार एवं हत्या, आत्महत्या इसी भाव की परिणतियाँ है। रूपसिंह चन्देल की 'मोह' [३] में पं. शालिग्राम जो कृत्य सुरसती के साथ करते है वह एक अपराध भावना से ओत प्रोत होकरही करते हैं।

'पंखहीन'[४] (सफीक रहमानी) में अनवर अपनी पत्नी से कहता है "नुमाइश की चीज नहीं, परन्तु मेरी चीज तो है अपनी चीज को मनचाहे ढंग से बरतने का मुझे हक है।" 'पाप'[५] (अलका पाठक) में नायक नायिका को यहाँ तक प्रताड़ित करता है उसकी एक रात हत्या तक कर देता है।

---

१. मनोविश्लेषण :डॉ. पद्मा अग्रवाल पृ. ९५

२. मनोविश्लेषण : डॉ. पद्मा अग्रवाल पृ. ९५

३. रूपसिंह चन्देल - माह (हारा हुआ आदमी) पृ. १४ पारुल प्रकाशन दिल्ली १९९०

४. पंखहीन (सफीक रहमानी) साप्ताहिक हिन्दुस्तान जुलाई १९९१

५. पाप (अलाका पाठक) इण्डिया टुडे - ३१ जुलाई १९९०

हिन्दी कहानियों में नारी पात्रों का मनोविज्ञानक वर्गीकरण-

यह व्यवहारगत है।

(डॉ. पुष्पलता बाजपेयी के शोधप्रबंध प्रसाद के नाटकों के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन को आधार बनाकर यह वर्गीकरण किया है।)
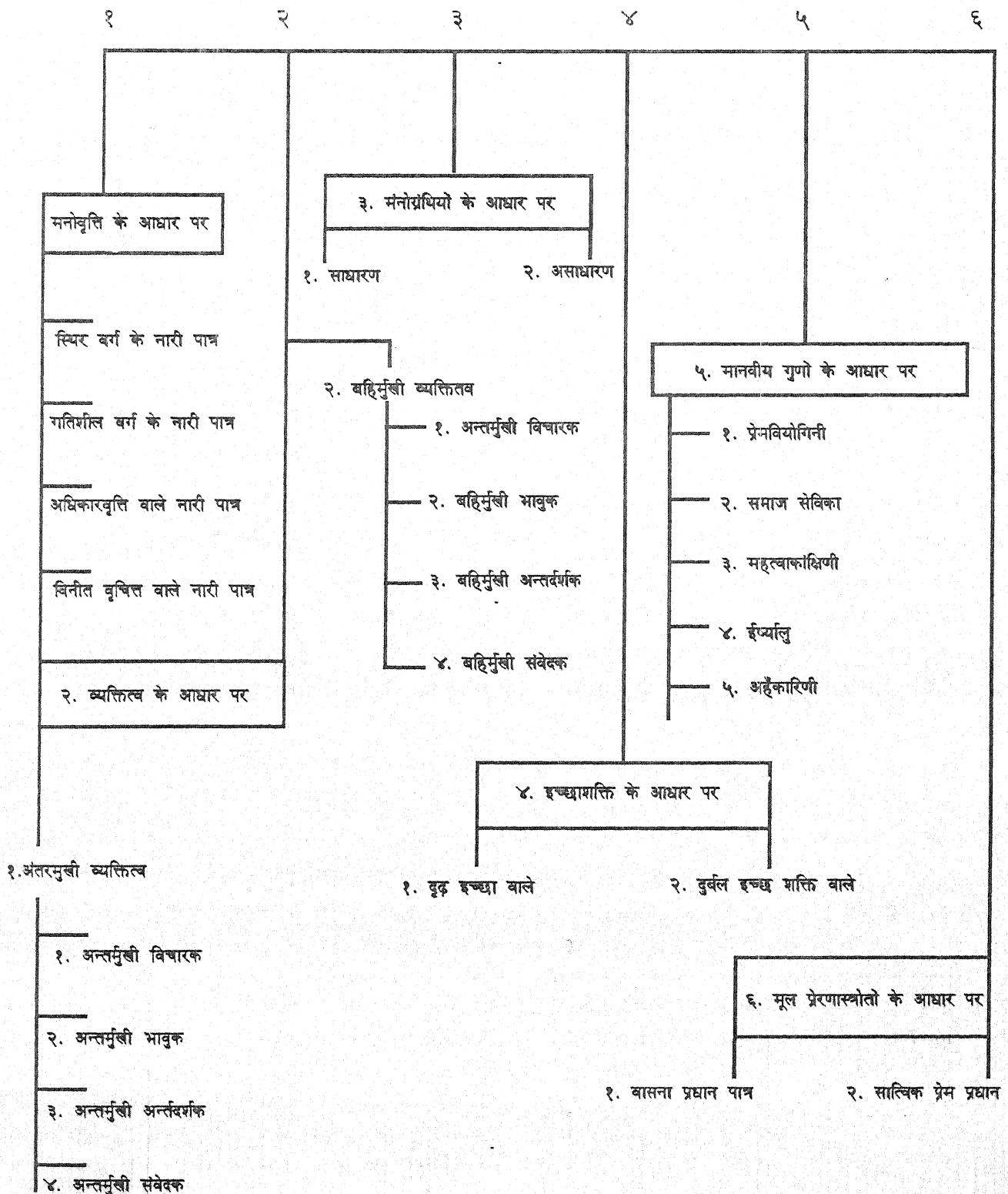
नवें दशक की हिन्दी कहानियों में नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण

नारी जाति में महत्वपूर्ण गुण है पृथक् पृथक् विशिष्टता। प्रत्येक कथाकार में यह बात देखने को मिलती है। हिन्दी कथा साहित्य में नारीपात्र अपनी विशिष्टताओं के कारण महत्वपूर्ण स्थान बनाये हुये है। नवें दशक की हिन्दी कहानी में नारी पात्रों में (शिक्षित एवं अशिक्षित) (व्यवहारगत) भारतीय भावनाओं के साथ नारी दर्शन दृष्टव्य है।

नारी पात्रों का वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया यह विभाजन गुणात्मक न होकर मात्रात्मक अथवा परिमाणात्मक है, क्योंकि मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का अध्ययन करता है। "सृष्टि के इतिहास में आदिम युग समाप्त होकर जब सभ्यता के सँवरे चरण प्रथम बार धरती पर पड़े, तब इस तथा कथित नवीनतम् बुद्धिवादी मानव के सुखमय सामाजिक जीवन की आकांक्षावश परस्पर व्यवहार विश्लेषण ने मनोविज्ञान की आधारशिला रखी। व्यवहार विश्लेषण की प्रक्रिया विश्व में तबह से गतिमान है।"[१] मनुष्य चूँकि गतिशील प्राणी है अतः उसका किन्हीं स्थिर वर्गों में जड़ पदार्थ की भाँति विभाजन करना संभव नहीं है।

'आज का मनोविज्ञान व्यवहार की वैज्ञनिक जाँच से संबंधित है जिसमें व्यवहार के दृष्टिकोण में वह सब भी संबंधित है जिसके प्रारंभ के मनोवैज्ञानिक अनुभव के रूप में लेते थे।'[२] अतः आज का मनोविज्ञान व्यवहार के विधायक विज्ञान के रूप में प्रचलित है। ऐसा डॉ. मिथिलेश रोहतगी ने अपने शोधप्रबंध 'नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन' में भी लिखा है।

मनोविज्ञान आजकल व्यवहार के वैज्ञानिक सर्वेक्षण से स्वयं संबंधित होता है। बल्कि इसके साथ व्यवहार के शिला बिन्दु से मनोवैज्ञानिक अनुभव से और ज्यादा प्रारंभिक रूप मे (Deal सामने वाले को अपनी बातों से विश्वास में ले लेना) Deal करता है।

प्राचीन मनोवैज्ञानिकों नें 'श्रेणी सैद्धांतिक'३ आधार पर मानवीय व्यवहार की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इस सिद्धंत के अनुसार व्यक्तियों को जड़ पदार्थ की भाँति विभिन्न वर्गों में विभाजित कर प्रत्येक वर्ग के रूढ़ तथा निर्धारित व्यवहार के आधार पर उनकी व्याख्या करने का प्रयास किया जाता था कुछ समय तक यह सिद्धांत मान्य रहा किन्तु वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ इस सिद्धंात की मान्यता समाप्त हो गया। पत्थर ऊपर फेंके जाने पर नीचे गिरता है और आग पृथ्वी पर जलाई जाने पर ऊपर भागती है। किन्तु वस्तु के व्यवहार को समझने के लिये यह जान लेना आवश्यक है कि वह पत्थर है कि आग। बिना उसकी प्रकृति समझे उसके व्यवहार का निर्धारण करना भी निराधार होगा कोई व्यक्ति दुराचारी है तो उसका व्यवहार ऐसा होगा और कोई सज्जन है तो उसका व्यवहार ऐसा होगा, किन्तु किसी व्यक्ति को सज्जन या दुराचारी इन कठोर दुर्लभ्य वर्गों में विभाजित कर देना अनुचित है। एक ही व्यक्ति कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण एक समय सद्व्यवहार करता है दूसरे समय उसके बिलकुल विपरीत व्यवहार करता है। व्यक्ति एक सम्पूर्ण भौतिक, जैविक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक क्षेत्र का अंग है। इस समय एक विशेष समय क्षेत्र में क्रियाशील शक्तियों की पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया के परिणामस्वरुप उसका व्यवहार में निर्धारित'होता है। मनुष्य के व्यवहार की व्याख्या का यह सिद्धात 'क्षेत्र सिद्धांत'[१] कहलाता है। आधुनिक मनोविज्ञान इसी

---

१. नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन - डॉ. मिथिलेश रोहतगी (विषयप्रवेश पृ. १)
२. मन का कथन है - Psychlogy today concems it self with the scientific investigation of behavioiic including from the stand point of behaviour, much of what earlier psychologigls dealt with as experience N. L. Munn
Psychalogy, Fundmentals of Human Adjustment - P - 23
३. प्रसाद के नाटकों के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन / पृ. ३४

को अधिक महत्व देता है।

नारी पात्रों का वर्गीकरण पात्र के व्यवहार पर निर्भर है। पात्र में विशिष्ट परिस्थिति में विशिष्ट व्यवहार हो जाता है। पात्रों में उभरी हुयी विशेष मनोवृत्ति गुण या किसी विशेष परिस्थिति में किया गया विशिष्ट प्रकार का व्यवहार उन्हें किसी वर्ग में ले जाता है, परन्तु ऐसा नहीं है कि उस वर्ग के पात्रों में उससे विरोधी वर्ग की मनोवृत्ति, गुण या दूसरे प्रकार का व्यक्तित्व बिलकुल शून्य हो तब किसी विशेष गुण या प्रवृत्ति का मात्रा किसी व्यक्ति में बढ़ जाती है तो उसे उस वर्ग का मान लिया जाता है। इस वर्गीकरण में नारी पात्रों के छः भागों में यावर्गो में विभाजित किया गया है।

(१) मनोवृत्ति के आधार पर वर्गीकरण :-'मनोवृत्ति या मनस् वृत्ति वह मानसिक शक्ति या स्थिति है, जिसके कारण मनुष्य किसी ओर प्रवृत्त होता है या उससे हटता है।'[२] जो उसके व्यक्तित्व व चरित्र निर्माण में सहायक होता है मनोवृत्ति की दृष्टि से १९८०-९० तक कि हन्दी कहानियों में आये नारी पात्रो को हम दो विभिन्न प्रकार से विभाजित कर सकते है।

एक स्थिर व गतिशील वर्ग के पात्रों के आधार पर

दूसरा अधिकार व विनीत वृत्ति के आधार पर

(क) स्थिर वर्गके नारीपात्र :- इस प्रकार के नारी पात्र आदि से अंत तक एक ही प्रकार के चरित्र का निर्वाह करते है। ये आदर्श चरित्र का निर्वाह करते हैं। इन्हें सत् व असत्, न्याय व अन्याय, का ध्यान रहता है। ये सम्मानित पात्र होते हैं। इन्हें सद्गुणों की खान भी कह सकते है। ये सदाचारी होते हैं। लोक कल्योण की भावना का भी इनके ह्रदय में स्थान होता है। पति पारायणता, सहिष्णुता, सन्तोष त्याग, उदारता, धैय एवं आत्मीयता को संजोये रहती है। इन नारियों को गंभीर एवं शील व्यक्तित्व भी होता है। हर परिस्थिति में ये अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करती रहती है। इनके ह्रदय में प्रगाढ़ प्रेम होता है किन्तु प्रेम की यह भावना वासना की पंक से पंकिल नहीं होने पाती है, अपितु सात्विक भावों से परिवेष्टित है। ये सात्विक अनुभूतियों से प्रेरित होकर पति या पति परिवार के लिये जीवनोत्सर्ग तक कर देती है। चारित्रिक पवित्रता के कारण व स्थिर एवं आदर्श पात्र होने के कारण पाठक को मंत्र मुग्ध कर लेती है।

'एक आहूत पीड़ा' राजेश्वर तिवारी रिटायर्ड पुलिस अफसर लेखिका के दादा जी हैं वे अपनी पत्नी के साथ जीवन भर अत्याचार करते हैं पैंतीस वर्ष रुलाते हैं इतने लम्बे समय तक उससे बात नहीं करते न जाने कितने कहर टूटते हैं उस अधेड़ मूर्ति पर लेकिन अपने जावन में कभी भी अपने पति को बुरा नहीं कहती हमेशा मधुर वाणी में उनके बारे में चर्चा करती।

अपने पति के द्वारा सताये जाने पर अपने को ही दोषी मानती है पति पैतीस वर्षो से नहीं बोलते थे पर अपनी कोठरी में फ्रेम में जड़ित उनके फोटो से आज्ञा लेकर मंदिर जाती थी उनके जीवन को दीर्घायु बनाने उनके स्वभाव में मृदुता लाने परिवार जनों से स्नेह करने की कामनामंदिर जाकर करती थी- पति द्वारा त्याग दिये जाने पर एक दिन मृत्युशैय्या पर आकर - "उस वक्त आजी की प्रज्ञा सचेत होती तो वे पूछती - छोड़ा तो तुमने मुझे पैतीस वर्षो से था। एक छत के नीचे रहकर भी मेरी छाया तक से परहेज

---

१. प्रसाद के नाटकों के नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन / पृ. ३४

२. मानक हिन्दी कोष चतुर्थ खण्ड

सम्पादक : रामचन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

रखने का कठोर व्रत तो तुमने साधा था। मेरा कसूर इतना की था कि मैं एक गरीब ज्योतिषी की बेटी थी जिसने दहेज में रामायण और गीता की पोथियां दी थी और विदाई के डोले में बैठी मातृहीना कन्या को वात्सल्य षिह्वल स्वर में अपना आखिरी उपदेश दिया था-बेटी दोनों कुलों की मर्यादा रखना। गाँव में हंसाई न हो। तुम पंडित की बेटी हो दया ममता का भाव कभी न छूटे।"---मेरा कसूर इतना ही था कि मैंने बाबूजी के उपदेशों का अक्षरशः पालन किया।"[१]

कहानी 'कदली के फूल' की कालिन्दी बुआ बाल विवाह का शिकार थी जो परिणय का अर्थ नही जानती थी जिस नासमझी के कारण उसने पति चन्दर का मूलवश अपमान कर दिया जिस कारण पति ने जावन भर उसका संसार ही सूना कर दिया कभी उसे पत्नी ही नहीं बनने दिया एक नौकरानी का सा जीवन दे दिया। पर कालिन्दा बुआ जीवन भर पति की सेवा करती रही गरीबी में धैर्य, साहस, त्याग के साथ उसने पागल पति की सेवा की बुआ को संसुराल में जरा सी गल्ती का दण्ड सम्पूर्ण परिवार जनों ने दिया। बुआ ससुराल में हेय प्राणी समझी जाती थी।

"यातनाओं की बेहद कंटीली बाड़ बुआ के चारों तरफ खीच दी गयी। अपनी सूनी आँखों में बेहतर जिन्दगी के सपने सजोनेवाली बुआ का मन दो तरफा लड़ाई लड़ते हुये लहुलुहान हो चुका था। फूफा के मन में उनके लिये जो नफरत पैदा की गयी थी उसका पैनापन भी नागफली के काँटों की तरह रोज व रोज बढ़ता ही रहा था। अपनी सेवा व कोमल व्यवहार से फूफा की असंयत जिन्दगी में सहजता ला सकने का विश्वास वे धीरे-धीरे खोती जा रही थी।"२ जीवन भर अपनी नासमझ भूल का बोझ लिये रही। मायके में जब भी आती पडौसिनें पूछती ब्याह को कितने वर्ष हो गये। वे अपनी गलती पर किसे दोषी ठहराती। जब पति नहीं रहे तो भाई के पास ससम्मान रहने लगी अपने भतीजों को एक कहानी सुनाया करती थी उस कहानी के कुछ अंश - लेखिका के शब्दों में-बुआ के जीवन का वैसा आदर्शवादी अंत नही हुआ था मेरी किस्मत तो कौआहकनी रानी से भी गयी बीती थी न भाई-मेरी कोख से कोई कदली का फूल भी तो नही फूटा था न। मैंने बहुत सोचा,xx दोष किसका था कौन जाने?xxxx अब वे नहीं हैं उस कहानी का अर्थ मेरे कानों में गूंजता है- कौआ हंकनी हूँ अमोलवा व कदली मेरी कोख से... मेरी निर्दोषिता का मोल अगले जन्म में मेरी कोख तो चुगायेगी न। बस।"३

'धुंधली आकृति'४ (सिद्देश) की नायिका भी पति के प्रति समर्पित है। 'मैं और तुम'५ (श्रवण कुमार) में पत्नी के समर्पण एवं त्याग की गाथा गायी गई है। आज भी नारी का यह दुलर्भ रुप कहानियों में यत्र तत्र प्राचीन कहानियों की भाँति मिल जाता है।

(ख) गतिशील वर्ग के नारी पात्र :-इस वर्ग के पात्र परिवर्तनशील होते हैं। उनके चरित्र में आरोह अवरोह की स्थिति बनी रहती है। ऐसा पात्रों की जीवन यात्रा अधिकांशतः असत् मार्ग से प्रारंभ होकर सत् मार्ग

---

१. एक आहूत पीड़ा - ऋताशुक्ला (क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ) प्रकाशन १९८५ / पृ. ५५
२. कदली के फूल (कौंचवध तथा अन्य कहानियाँ) ऋता शुक्ला सं. १९८५/पृ. ४९
३. वही / भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन/ पृ. 52
४. मीनाक्षी कथा वर्ष १९८४ सं. बटरोही/ नवनीत अप्रेल १९८३
५. सारिका मई १९८८

की ओर उन्मुख होती है।नारी पात्र जीवन की विशेष परिस्थितियों व झंझावातों में छोड़ दिये जाते है जहाँ पर उनका चरित्र विशेष प्रकार का उभार गृहण करता है। इनका जीवन व चरित्र किसी दिशा विशेष की ओर से किसी अन्य दिशा विशेष की ओर उन्मुख हो जाता है। ये पात्र जीवन को सुखी बनाने के लिये वह सब कुछ चाहे सत् हो या असत् करने को तैयार हो जाते है। ईर्ष्याव प्रतिशोध की भावना का उग्रतम रूप इनके चरित्र में समाहित होता है। ये विद्रोही, साहसी, महत्वाकांक्षिणी व कुटिल प्रकृति के होते है। स्त्री सुलभ, शालीनता का इनमें अभाव होता है। पुरुष वर्ग से संघर्ष करने में ये गौरव का अनुभव करती हैं। इन नारियों का जीवन कुकृत्यों के मध्य अवाध गति से चलता रहता है। कामवासना व धनलोलुपता की तीव्र भावनाएं ह्रदय में स्थित होती है सद्गुणों से प्रेम नही होता। ये नारियां स्त्री के वैवाहिक जीवन को पुरुष की दासता समझती है। स्त्री केस्वतंन्त्र उन्मुक्त जीवन का समर्थन करती हैं। इनके जीवन मेंकरुणा, विवेक और सन्तोष को स्थान कहाँ? ये दुराचारी व व्यमिचारिणी नारी होती है। रमेश उपाध्याय की कहानी कामधेनु१ की नायिका राज्यलक्ष्मी में नारी का एक भी गुण नहीं हैं। राज्यलक्ष्मी अपनी प्रतिष्ठा एवं कामधेनु स्टेट के नाम को बचाये रखना चाहती हैजीवन को सुखी रहने के लिये राजलक्ष्मी सत् व असत् कुछ भी करने को तैयार है। वह महत्वाकांक्षिणी व कुटिल प्रकृति की है। जीवन भर कामधेनु पर अत्याचार करती है। उग्र से उग्रतम रूप तक उसका इस कहानी में मिला है। गाय कामधेनु की पूजा व उसके बाद गाय का आर्तनाद.......

"राज्यलक्ष्मी यंत्रवत उठकर गाय के सामने खड़ी हुयी हाथ जोड़कर दैनिक प्रार्थना के रुटीन स्वर में बोली-"माँ हमें अन्न दो, वस्त्र दो, धन दो, शक्ति दो और विरोधी शक्तियों का बल क्षीण करके जीवन में शाँति दो।" लेकिन गाय अपनी उदास आँखों से शून्य को ताकती चुपचाप खड़ी रही। राज्यलक्ष्मी नें अपनी प्रार्थना पुनः दोहरायी। गाय पर फिर भी कोई प्रतिक्रया नहीं हुयी। खुले में आकर वह और भी भयानक लग रही थी

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

राज्यलक्ष्मी संयत रहने की चेष्टा करती दिखाई दे रही थी लेकिन जब तीसरी बार प्रार्थना करने पर भी गाय वैसे ही खड़ी रही तो वे उसकी धृष्टता पर आपा खो बैठी और हंटर चाबुक लिये तैयार खड़े अपने सेवकों को उन्होंने एक चिरपरिचित सा संकेत् कर दिया।xxxxxxx बस चक्कर काट कही थी पिट रही थी। उस दुर्बल काया में जान ही कितनी थी। थोड़ी ही देर में वह बेदय सी होकर ढह पड़ी। तब राज्यलक्ष्मी ने जल्लादों को हट जाने का आदेश दिया और गाय के पास आकर प्रार्थना करने लगी .... जीभ निकाल कर मुर्दे की तरह पड़ी गाय की गरदन ने जरा सा हिल कर मानो 'एवमस्तु' कह दिया।"[२] राज्यलक्ष्मी राजसी ठाठबाट एवं अपनी गोभक्ति का नाटक इतनी क्रूरता से करती थी जब गाय का सिर हिल जाय तब वह शंख झालर बजवाकर प्रसाद वितरित करती थी।

शिवमूर्ति की भरतनाट्यम का नाटक घर पहुचकर देखता है कि भाई साहब घर पर नहीं है इससे आश्वस्त होता है एडवेंचर का आनन्द लेता हुआ वह धीरे-धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता अंदर बढ़ता है पत्नी की

१.कामधेनु (राष्ट्रीय राजमार्ग) रमेश उपाध्याय प्रकाशन सं. १९८४ सामयिक प्रकाशन

२. कामधेनु - (राष्ट्रीय राजमार्ग) रमेश उपाध्याय पृ. ४५-४६

के सामने खड़े होकर सोचता है कि कैसे इसे चौंका दूँ, "तभी किवाड़ खुले और भाई साहब पसीना पोंछते हुये बाहर निकले। मुझे सामने पाकर हतप्रभ हुए और आँख चुराकर बगल से बाहर निकल गये। कोठरी के अन्दर से बाहर आते हुये मेरी पत्नी की नज़र मुझ पर पड़ी तो वह पथरा गया। मैने स्पष्ट देखा उसके गालों पर और उसके अधरों के नीचे दाँत काटने के निशान थे। कपड़े अस्त व्यस्त थे। साँस तेज थी। देखते-देखते मुझे उसकी आँख का पानी बदलता नजर आया। वह मुझे घूर रही थी।"[१]

कई दिन बाद पत्नी ने स्वंय स्वीकार किया- "उनकी कोई गलती नही हैं मै ही उनका हाथ पकड़ कर मड़वे से लिवा लाई थी, बेटा पाने के लिये।"[२]

गतिशील वर्ग के नारी पात्रों की जीवन यात्रा असत् मार्ग से प्रारंभ होकर अधिकतर सत् मार्ग तक ही जाती है। निरूपमा सेवती की 'बद्‌मुष्टि' कहानी का नायिका एक कौलगर्ल है पर एक नारी भी है- सुधीर से कहती है-" नही......शायद मैं तुमसे बहुत प्यार करने लगी हूँ। हालांकि प्रेम नाम की चीज को मैं मानती नही....फिर भी आखिर लड़की हूँ....यह लफ्ज़ मन में कुछ पिघलाता भी जरूर है:xxxxxxx पर तुम एक खरीददार की तरह जिन्दगी में आये थे।अब इतने प्यार में इस बात की हल्की सी परछाई भी बर्दाशत नहीं होती। यार, किस मी विद यूअर स्पेशिलिटी।"[३] मनोवृत्तियां व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करतीहै। सद्‌वृत्तियां व्यक्ति के चरित्र व व्यक्तित्व को ऊँचा उठाती है, औरवे व्यक्ति समाज के आदर्श व्यक्तियों की श्रेणी में परिगणित किये जाते हैं। दुष्प्रवृत्तियां व्यक्ति को अधःपतन की ओर ले जाती और उनके द्वारा व्यक्ति के चरित्र व व्यक्तित्व में निरन्तर उत्थान पतन, आरोह-अवरोह की स्थिति बनी रहती है। कहानियों में दोनों प्रकार के नारी पात्रों का सफल चित्रण किया है। एक ओर आदर्श नारी पात्र है, तो दूसरी ओर स्त्रियोचित गुणों से सर्वथा वंचित पुरुषों से प्रतिस्पर्धा करने वाली नारियां है, जिनका पतन अवश्यम्भावी होता है। ये नारियां अपना मार्ग विस्मृत कर दूसरे मार्ग का अवलम्बन लेती है यही कारण है कि उनका जीवन अधिकाधिक संघर्पशील हो गया है। ऐसी नारियां अन्ततः किसी प्रेरणावश या तो सद्‌मार्ग की ओर प्रेरित होती है या अपने ही द्वारा निर्मित कष्टों और संघर्षो की घुटन में जीवन समाप्त कर देती है।

मनोवृत्तियों के आधार पर ही नारी पात्रों का दूसरा मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण भी हो सकता है। प्रथम अधिकार वृत्ति वाले नारी पात्र, और दूसरे विनीत वृत्ति वाले नारी पात्र।

---

१. शिवमूर्ति : भरतनाट्‌यम्‌ (केशर कस्तूरी) / पृ. ५३ राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली १९९१

२. शिवमूर्ति : भरतनाट्‌यम्‌ (केशर कस्तूरी) / पृ. ६९ राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली १९९१

३. बद्‌मुष्टि - निरुपमा सेवती (हिन्दी लेखिकाओं की श्रेष्ठ कहानियाँ)
सम्पादक - योगेन्द्र कुमार लल्ला श्री कृष्ण-राष्ट्रभाषा प्रकाशन दिल्ली
प्रथम संस्करण १९९४

विशेष- सम्पादक ने स्वीकारा है कि ये कहानिया नवें दशक में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है।

(क) अधिकार वृत्ति वाले पात्र :- दूसरों पर अधिकार प्रदर्शन की मनोवृत्ति रखते है तथा ये नारी पात्र अपने अधिकारों के लिये सतत् जागरुक रहते हैं। ये मनोवृत्ति बढ़कर उद्दण्डता का स्वरूप गृहण करती है। ये प्रवृत्ति कभी-कभी अद्यःपतन की ओर ले जाती है इस प्रकार के पात्र प्रगतिशील भी रहते हैं। अधिकारवृत्ति वाले पात्र साम, दान, दण्ड, भेद की नीति का पालन करते हैं। ये नारी पात्र नेतागिरी करते, प्रशासन करते, ग्रामीण स्तर पर हुक्म मनवाते कहानी संसार में दिखाई पड़ते है।

'तीन काल कथा' कहानी में देश की प्रधानमंत्री जी एक महिला है। उद्दण्डता के कारण इनका पतन स्वभाविक है। इन्के ह्रदय में दया करुणा के लिये स्थान कहीं भी नहीं हैं। "सारे देश में अकाल पड़ा है। अकाल देखने प्रधानमंत्री जी आ रही है। जंगल के बीच से नमूने के तौर पर ५० कंकाल जुटाये जाते है। दूसरे क्षेत्रों से नेताओं को कोफ्त होती है कि उनका क्षेत्र अकाल से क्यों वंचित रह गया। प्रधानमंत्रीजी दस रुपये की साड़ी में सौ वर्ग मील की यात्रा करती है, "प्रधानमंत्री खुश रहती है, क्योंकि लोग भूखे है, फिर भी उन्हें देखने के लिये सड़कों पर धूप में खड़े हैं। जनता प्रधानमंत्री के प्रति अपने पूरे विश्वास और विनय के साथ अकाल में मर रही है। अंत में प्रधानमंत्री का दस मिनट का कार्यक्रम होता है"[१] नासिरा शर्मा की 'गूगाँ आसमान' की नायिका मेहरअंगीजअपने अधिकारों के प्रति जागरुक है वह प्रगतिशील नारी है। साम, दाम, दण्ड, भेद की नाति का पालन कर अपनी तीन सौतों को घर से इसकारण निकाल रही है कि वे लड़कियाँ इसकी बेटियों जैसी है। अधिकार वृत्ति की नायिका है पर ह्रदय से बुरी नहीं है पति की वासना वृत्ति के कारण थोड़ी उद्दण्डता भी दिखाती है पर उन तीनों सौतों पर हुक्म चलाकर उन्हें सही व उचित घर व वर प्रदान करने का प्रयत्न करती है और सफल होती है। अपने भाई व चचा से कहती है- "दो लड़कियाँ दिलाराम और शबनूर ऐसे पाक साफ कि उनके दामन पर नमाज़ पढ़ लो.... चचा से कहो कि वह अब्बास ओर हैदर के लिये मुनासिब होंगी। दोनों के बाप को मशहद और इस्फाहान में नशे के इल्ज़ाम में फाँसी पर चड़ाय गया था, मगर उन दोनों का क्या दोप है। महापारा का पति मर चुका है पर वह जवान है जहाँ इस तरह बेचारी हाँक कर लाई गयी है।"२ उन्हें तुम्हें बचाना होगा। मैं उन्हें न्यौते के वहाने ले आऊँगी बस।"

(ख) विनीतवृत्ति वाले नारी पात्र :- इस वर्ग के नारी पात्र शाँत स्वभाव के होते है। इनके जीवन में विनम्रता का समावेश हर क्षण होता है।अपनी इस मनोवृत्ति द्वारा वे सहज ही आकर्षण का केन्द्र बन जाती है। दूसरों के बड़े-से-बड़े अपराध को विनय भाव के साथ क्षमा कर देते है। उन्हें दूसरों को सुख पहुचाने के लिये त्याग भी करना पड़ता है। ये पात्र प्रारंभ से अंत तक इसी स्वभाव को वरण किये रहते है। रमेश उपाध्याय की नशा कहानी में नलसाज की पत्नी अपने पड़ौसी को देखकर अंदर ही अंदर परेशान रहती है एक दिन बड़े विनम्र भाव से पति से बाह्य करने की कोशिश करती है। नलसाज की पत्नी मजदूरों की तरह रहने के वजाय मध्यवर्गी लोगों की तरह एक सजी सजायी गृहस्थी बनाकर रहना चाहती है। इसलिये मौका मिलते ही हमारे पास कुछ भी तो नही है। रहने के लिये यह धंसी धुँआरी छत वाली छोटी सी कोठरी, खाने के लिये रूखी सूखी रोटी, पहनने के लिये फटे पुराने कपड़े। दोनों मिलकर जितनाकमाते हैं खर्च हो

---

१. काशीनाथ सिंह - तीन काल कथा (प्रतिनिधि कहानियाँ) पृ. २३ सं. १९८८
राजकमल पेपर पेक्स नईदिल्ली

२. गूंगा आसमान - नासिरा शर्मा (पच्चीस श्रीष्ठ कहानियाँ)
हिमांशु जोशी - किताब घर दिल्ली सं. १९९३ / पृ. ७७

जाता है वक्त जरूरत के लिये एक पैस की वचत नही। बच्चों को हम अच्छे स्कूल नही भेज पाते। समाज में हमारी कोई प्रतिष्ठा नही '[१] इस कहानी में नलसाज की पत्नी प्रारंभ से अंत तक जीवन के उतार चढ़ाव व सुख दुख की स्थिति में एक से विनम्र स्वभाव की दिखाई दे रही है। कहानी 'कदली के फूल'[२] में टीपू की माँ अथवा कालिन्दी के भाई की पत्नी कहानी के प्रारंभ से अंत तक विनम्र स्वभाव की नारी है। वह अपनी ननद पर होते अत्याचार नही सहन कर पाती अपने पति से कहती है कि यहाँ मायके ले आओ हम उन्हे खुश रखने का प्रयास करेगें वे निर्दोपिता हैं उनकी कोई गलती ही नहीं। दीपू की माँ कहानी में इतनी विनम्र हैं कि इस दशक में देखने को ऐसी भाभियाँ कम ही मिलती है।

(२) व्यक्तित्व के आधार पर नारी पात्रों का वर्गीकरण :- 'युंग'[३] ने सभी व्यक्तियों को प्रमुखतः अन्तर्मुखी व बहुमुखी दो वर्गो में विभाजित कियाहै। युग द्वारा निर्धारित व्यक्तित्व के आधर पर यदि कहानी के नारी पात्रों के व्यक्तित्व को विभाजित करें तो ज्ञात होता है कि अधिकांशतः नारी पात्र अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले हैं। कथाकारों के जीवन की मधुर, कोमल व करुण अनुभूतियाँ ऐसे नारी पात्रों के जीवन में समा गई है।

कुछ ऐसे नारी पात्र है, जो बाह्य घटनाओं में अभिरुचि रखते है। कहानी की अधिकाश घटनाओं का सूत्रपात उन्ही के द्वारा होता है। बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाली ये नारियाँ भी स्वानुभूति के क्षणों से अन्तर्मुखी दृष्टिगत होती है और अन्तर्मुखी नारियाँ कभी कभी बहिर्मुखी प्रवृत्ति की दिखाई पड़ती है। युग के अनुसार अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी भी चार-चार उपवर्गों में विभाजित है।

(१) अन्तर्मुखी व्यक्तित्व :-

(क) अन्तर्मुखी विचारक :- इस वर्ग में वेपात्र आते हैं जिनमें भावावेग कम मात्रा में पाया जाता है। यथार्थ जगत की अपेक्षा कल्पना जगत की ओर अधिक उन्मुख रहने वाले अपनी मान्यताओं या सिद्धंतों की स्थापना पहले कर, उसको कार्यान्वित करने का प्रयत्न बाद में करने वाले मानवता तथा सहिष्णुता की उपेक्षा करने वाले क्रांतिकारी तथा सिद्धंतवादी पात्र इसी वर्ग में आते हैं। अपने द्वारा निर्मित मान्यताओं व सिद्धांतों को ही कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते हैं। इनके जीवन में (बाह्य व आंतरिक) क्रांति व्याप्त रहती है। उनका ध्यान सदैव अपने तक ही सीमित रहता है कृष्णा अग्निहोत्री की कहानी 'गाउन' की नायिका मधु जब से शादी होकर आयी है। घर में एक सेविका व बाहर ऑफिस से रुपये कमाकर सास को देती है। पति का भरपूर प्यार मिलने पर भी वह अपनी गरीबी से घर के तानों से परेशान है उसकी भी इच्छा है कि वह एक मॉडर्न पत्नी की तरह उच्चवर्गीय सलीके से पति के साथ एकांत में अपने सजे सँवरे बैडरूम में रहने को अभिलाषी है वह कल्पनाओं केमहल रोज बनाती है और अपने तक ही सीमित है लेस वाला जार्जट का गाउन वह पहनेगी। पहनेगी। पहनेगी बकने दो, भोकने दो। काशी को वह सँभालेगी xxxx कब तक वह अभावों में जियेगी। सुन्दर दिखने की किस स्त्री की इच्छा नहीं xxx गाउन पहन कर बाल बाँधकर आईने के सामने इतराती रही अपने को घूरती रही।"[४]

'बदली बरस गयी' कहानी में कल्याणी यथार्थ का अर्थ अपने जीवन में इतने कष्टों के बाद भी जानता नहीं चाहती है। वह अपनी माता गौरी का हृदय तोड़ देती है उसमें मानवता की भावना कहीं भी नहीं हैं।

---

१. नशा (किसी देश के किसी शहर में) - राजेश उपाध्याय पृ. /१२९
२. कदली के फूल (कौचवध तथा अन्य कहानियाँ) पृ. सं. १९८४ / पृ. ५२/५३
३. मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं - डॉ. पद्मा अग्रवाल पृ. १६९
४. गाउन - कृष्णा अग्निहोत्री (हिन्दी लेखिकाओं की श्रेष्ठ कहानियाँ) पृ. २०
सम्पादक - योगेन्द्र कुमार लल्ला श्री कृष्ण - राष्ट्रभाषा प्रकाशन दिल्ली
संस्करण १९९४

वह क्रांतिकारी सिद्धांतवादी वाला है। इस उभरती युवा लड़की में सब कुछ पाने की लालसा होने के कारण अपने जावन में (आंतरिक व बाह्य) क्रांति को स्थान दे डाला है यह केवल अपने बारे में सोचती है इसे माँ से या माँ के किसी भी कष्ट से कोई सरोकार नही है।

"कल्याणी ने उड़ती निगाह से एक बार माँ को देखा और महराज की ओर झुककर बोली - "महाराज, अब इस आश्रम में मैं नही रहूँगी।" xxxxxxx

"कल्याणी-------आवाज़ साध्वी माँ की थी xxx महाराज

"आश्रम में कोई कष्ट है? कल्याणी ने खुलकर महाराज को देखा "आश्रम पर मेरी कोई आस्था नहीं-----"

महाराज ----"कहाँ जाना चाहती है?" कल्याणी ने निर्दयता से साध्वी माँ को आँख से पकड़ा " मैं अब अपना घर बनाकर रहूँगी महाराज समझ गये अब लाड़ली लौटेगी नहीं"

कण्ठ को स्वस्थ करके बोले - "कहाँ"

"पहले पिता घर बाद में फिर अपने घर"

साध्वी माँ सिहरी महाराज आयु और अनुभव की गरिमा भरकर बोले "आज नही कल जाने की आज्ञा है कल्याणी। "

कल्याणी हँस दी - जैसे कहना चाहती हो आज आज्ञा न मिलती तो भी मैं रुकती नहीं।

महाराज व माँ के सामने झुकी और बोली- "जाती हूँ माँ- मेरे लिये अब भी समय है- आश्रम की कोठरी में कल से मेरा दम नही घुटेगा- अब मेरा अपना घर होगा"कहते-कहते कल्याणी उस घर की मीठी कल्पना में बाहर हो गयी।"[१]

(ख) अन्तर्मुखी भावुक :- इस वर्ग में आने वाले पात्र सामान्यतः असामाजिक होते हैं। वे अपने मन में उठने वाले प्रेम या घृणा के भाव को व्यक्त नही करते, किन्तु उससे निर्मित पीड़ा का अनुभव करते रहते हैं। अन्यों से सम्मान की अपेक्षा रखने वाले ऐसे पात्र सांसारिक दृष्टि में स्वार्थी सिद्ध दोते है। रमेश उपाध्याय की कहानी 'दिशा'[२] में जब शिक्षिका के पास छात्र के पिता मिलने जाते हैं तो वह पुरानी खिसियाहट के कारण बहुत देर तक गुस्से में बात करती है फिर जब कुछ समझ आती है तो कहती है- नहीं माफी मुझे ही मांगनी चाहिये। मेरा व्यवहार आपके बेटे के प्रति ही नही आज आपके प्रति भी ठीक नहीं रहा। दरअसल होता यह है कि हम पर मार कही पड़ती है उसका दर्द कही और जाकर व्यक्त होता है। कुछ - कुछ ऐसी बात हैं कि आदमी मंदिर में जाकर रोना चाहे और पहुच जाए अखाड़े में लड़ने।" यहाँ विज्ञान शिक्षक वास्तव में कथा के प्रारंभ में स्वार्थी नज़र आती है बाद में अत्यंत भावुक। कामधेनु 'कहानी में भारद्वाज की पत्नी जव्वर सिंह की बातों में आ जाती है और उसे भी पैसे की दुनिया दिखाई देने लगती है रिश्वत लेना, गलत काम करना उसे सब कुछ अच्छा लगने लगता है डॉ. भारद्वाज के शब्दों में - "पत्नी मुझसे कहेगी - चले क्यों नहीं जाते हो? रुपये घर में आते बुरे लगते हैं।"[३] डॉ. भारद्वाज की पत्नी गरीबी का जीवन बिताकर ऊब चुकी थी। उसे तो संसार की चमक (अमीरी) दिखाई दे रही थी। इस कहानी में गरीबी की पीड़ा का अनुभव इन पंक्तियों में दिखाई दिया है।

(ग) अन्तर्मुखी अन्तर्दर्शक :- अन्तर्मुखी अन्तर्दर्शक वर्ग में आने वाले पात्र अधिकतर रहस्यवादी और भावुक होते हैं। ऐसे व्यक्तियों का ध्यान लोगों की बातों के आंतरिक अर्थो पर रहता है। कार्यो की विचित्रता उन्हें

---

१. बदली बरस गयी (बादलो के घेरे) कृष्णा सोवती / तृतीय संस्करण १९८९ राजकमल प्रकाशन / पृ. ६७-६८

२. दिशा -(किसी देश के किसी शहर में) - रमेश उपाध्याय / पृ. सं. १९८७ वाणी प्रकाशन पृ. १०९

३. कामधेनु (राष्ट्रीय राजमार्ग) रमेश उपाध्याय / पृ. सं. १९८४ सामयिक प्रकाशन पृ. २२

सबके प्रति विश्वास पात्र नही बनने देती, अतः संसार उन्हें धोखा देने वाला समझता है।

"चार नंबर सुनहरी बाग लेन" कहानी की नायिका रत्ती मुनहने से जिस्म वाली एक निहायत चुप्पी लड़की थी। वह इतना कम बोलती थी कि उसे कोई समझ नहीं सकता था। वह कभी क्लास में किसी से भी दोस्ताना याराना नहीं रखती थी। एक बार उसे जौंडिस हो गया एक महीने बाद स्कूल आयी उसने बहुत हिम्मत करके क्लास में नोट्स माँगने का साहस किया मुझे उस पर दया आ गयी उसने दो तीन सप्ताह तक नोट्स वापिस नहीं किये जब मैं लेने गयी तो बोली- "मैं वापिस करने ही वाली थी" फिर उसी आवाज से मुझे जाने क्यों लगा कि वह रोती रही होगी xxxxxxउसकी आँख सुर्ख थींxxxxxxxxxसॉरी तुम्हें धूप में आना पड़ा, तुनने तुमने बेकार ----xxxxxमैंने बेपनाह क्रोध की एक लहर को अपनी नाभि से अपने माथे की ओर बढ़ता महसूस किया। "तकलीफ करनी ही पड़ी क्योंकि इम्तहान सिर पर हैं- मुझे किसी के लौटाने पौटाने का भरोसा नहीं।"१ इस कहानी को पढ़कर मुझे महसूस हुआ कि रत्ती एक भावुक लड़की है वह क्लास के लड़के लड़कियों की बातों को गम्भीरता से लेकर आंतरिक अर्थो में खोजाती थी यह कारण भी उसे संकोचशील बनाता है वह बहुत सोचती विचारती थी। कन्धें बात-बात मेंहिलाती कभी एक टक देखती कई कार्य उसके ऐसे थे जो उसे अजीब लड़की घोषित करते हैं। वह जब नोट्स ले गयी तो उसे वापिस भी करने चाहिये पर वह स्कूल नहीं आयी जिसके नोट्स थे उसे तो वह धोखेवाज लड़की समझ में आयी अतः रत्ती अंतर्मुखी अंतर्दर्शक व्यक्तित्व की नायिका है।

(घ) अन्तर्मुखी संवेदक :- अंतर्मुखी संवेदक व्यक्ति काव्य प्रेमी कला प्रेमी, एवं संगीत प्रेमी होते हैं। ये एकांत में आनन्दोपभोग करने वाले हैं। जीवन की दुःखद व करुण परिस्थितियों में वह अपने लिये संगीत की उपस्थिति चाहते हैं। एकांत पाकर इनकी कोमल अनुभूतियां सजग हो उठती है। इन कलाकारों के हृदय में सुकुमार कल्पनाएं विशेष स्थान रखती है। इन कलाकारों का भारतीय कला काव्य व संस्कृति से अनन्य प्रेम होा है। शैलेश मटयानी की कहानी 'सुहागिनी'[२] की नायिका अधेड़ उम्र की है वह पैतांलीस वर्ष की हो गयी है और अभी तक कौमार्य का बोझ ढो रही है नायिका पद्मावती गीत संगीत प्रेमी है वह जीवन भर की दुःखद व करुण परिस्थियों को याद करती हुयी एकांत में हमेशा रामजी के व्याह के भजन गाती है तो उसकी अपनी कोमल अनुभूतियाँ सजग हो उठती है वह अपने में स्वयं डूबती उतरती रहती है।

'न गुल था, न चमन था' कहानी की जया व नादिरा दस्तूर दोनों ही नारी पात्र अन्तर्मुखी संवेदक है। कहानी में- दोनों के हृदय में सुकुमार कल्पनाओं का वास है। जीवन की दुःखद व कारुणिक परिस्थितियों मेंजया व नादिरा दोनों ही संगीत की उपस्थिति चाहती हैं। इनको संजने संवरने का भी काफी शौक है उदाहरण- "जया किसी मिठास में भीगकर पल भर के लिये अपने ही हाथों से आँखें मूद लेती हैं- और फिर बन्द आखों में कल्पना का छलकता सा रुप हल्के फुल्के सिल्क के कपड़ों में लिपटी जया - जया को अपने से अपने नाम से मोह हो रहा है- कान्फ्रेंस से लौटते हुये मन पर छाये उस क्षणिक फीकेपन का परदा धीरे-धीरे उतरता जा रहा है, पर यह क्या गुन गुनाहट........जया ने चौंककर आँखें खोल दी..... एक महीं करुण आवाज......न गुल था न चमन था.....।"[३] नादिरा दस्तूर अकेले कमरे हमेशा गुनगुनाया करती थी."हल्की नहीं उन्मन्त कर जाने वाली गहरी हँसी थी छन-छन चूड़ियों की झनकार किसी दबाव से टकराती हुयी और दीर्घ चुम्बन क्षण भर बाद मीठे गले से .... सामने के कमरे का दरवाजा खुला---खिड़की के परदे खिंचेxxxxxxxजया

---

१. चारनंबर सुनहरी बाग लेन (बचुली चौकीदारिन की कढ़ी) पृ. सं. १९९०
मृणालपाण्डेय - पृ. / १६४

२. सुहागिनी (शैलेश भटियानी की प्रति. कहां) सम्पादक - डॉ. लक्ष्मण सिंह बिष्ट बटरोही
- साहित्य भण्डार इलाहाबाद पृ. सं. १९८७

३. 'न गुल था न चमन था' (बादनों के घेरे) - कृष्णा सोबती / तृतीय संस्करण / राजकमल प्रकाशन
पृ. १४६

खिंचेxxxxxxxजया को लगा जैसे अब अंधेरे में वह जाली की चोली, वह शोख रंग का आवरण अलग पड़ा रह जायेगा और अंधेरे में नादिरा दस्तूर की देह शैय्या पर सिर धुनेगी और रात के लम्बे प्रहारों को गिनेगी नादिरादस्तूर जया ने चौककर अपने को खींचा xxxx अंधेरे कमरे से एक आहत आवाज़ आ रही थी "न गुला था न चमन था---न मेरा आशियाना ---- न गुल ----"[१]

(2) बहुर्मुखी व्यक्तित्व -

(क) **बहिर्मुखी विचारक** :- इस श्रेणी में आने वाले व्यक्ति सांसारिक कार्यो में अधिक अभिरुचि नही रखते हैं। ऐसे व्यक्ति व्यवहार कुशल न होकर वास्तविक घटनाओं पर अपने सिद्धांतों की स्थापना करते हैं। अपने विचारों को दूसरों पर दृढ़तापूर्वक आरोपित करते हैं, और उससे मतभेद रखने वाले व्यक्तियों को मूर्ख समझते हैं। इनके विचारों से यदि कोई सहमत नहीं होता तोये विद्रोही हो जाते हैं। ये यथार्थवादी होते है। शहर सुन्दर है'[२] की नायिका सरोज अपने पति राम सेवक की घुटन एवं शर्मिदगी, गरीबी आदि बातों पर खिसिया जाती है और राम सेवक से कहती है- "कुछ मत करो सो जाओ।" सरोज ने झुंझलाहट के साथ कहा। लेकिन फिर उसे लगा कि वह सारी शाम रामसेवक पर झल्लाती ही रही जबकि रामसेवक वाकई परेशान है और उसकी यह परेशानी एकदम अकारण भी नहीं है। इसलिये सहानुभूति पूर्वक समझाते हुये बोली-"यों सोचो हम जो भी हैं उसके अलावा तो और कुछ हो नहीं सकते। हमारे पास बेईमानी का पैसा तो था नही कि नयी दिल्ली में कही आलीशान कोठी बनवाते। पेट काटकर जितना जोड़ पाये उनमें कर्ज कड़वा मिलाकर जैसे मकान ले सकते थे वैसा ले लिया। अतः आने वाले वहीं आयेंगे जहाँ इंसान रहेगा। दरवाजा उनके लिये खुला है रुखी सूखी रोटी खाते हैं उनको भी खिला देंगे। अगर वे ज्यादा ही अमीर हैं और हम गरीबों के पास नही रह सकते तो भाई जहाँ मन करे चले जायें। कोई क्या कहेगा यह सोचकर चले तो आदमी जिन्दगी में एक कदम न चल पाये। सरोज की बात ने रामसेवक को शाँत कर दिया।" इस कहानी में सरोज वास्तव में व्यवहार कुशल न होकर वास्तविक है वह दिखावे में विश्वास नहीं करती वह दृढ़ता पूर्वक पति को समझाती है कि देवर जी ओमप्रकाश यदि बड़े अफसर हैं तो बने रहें,हैं तो आपके भाई ही। हमारे गरीब घर पर आना चाहें तो आवें अन्यथा उनकी इच्छा।

(ख) बहिर्मुखी भावुक :- बहुर्मुखी भावुक प्रायः दूसरों में अनावश्यक रुचि रखते हैं। ऐसे व्यक्तियों में तर्कशक्ति का अभाव होता है। ये तर्क की अपेक्षा अनुभव से अधिक कार्य लेते है। 'छब्बीसवां निशान' की नायिका कमला जमीदार की शादी शुदा बेटी में अनावश्यक रुचि रखती है। जमीदार की बेटी का ब्याह हो चुका है और कमला अभी तक कुंवारी है उसकी उम्र छब्बीस वर्ष की हो गयी पर साजन के घर न पहुच पाने से व ब्याह न होने से अवसाद् टूटन व सूनेपन का शिकार हो गयी है। वह तर्कशक्ति का बिलकुल प्रयोग नहीं करती है वह ये जानना नही चाहती कि वह अमीर लड़की है और मैं एक गरीब बिन बाप की लड़की हूँ ज़मीदार की बेटी में व स्वयं में केवल एक अनुभव करती है दोनों ही जवान लड़कियाँ है उसे यथार्थ से कोई सरोकार नही कोई वास्ता नही वह बहुर्मुखी भावुक नायिका है। कहानी की नायिका कमला चाहती है- "अम्मा उसे डाँटा करें। रोके टोकेxxx उसकी यह इच्छा मन के भीतर ही रह जाती है या फिर उस शीशे की छाती पर टुकड़ों में तड़पती हुयी सी और वो और घर में कभी उसके ब्याह की भी गल

---

१. 'न गुल था न चमन था' (बादनों के घेरे) - कृष्णा सोबती / तृतीय संस्करण / राजकमल प्रकाशन / पृ. १५०

२. शहर सुन्दर है (राष्ट्रीय राजमार्ग) रमेश उपाध्याय / पृ. सं. १९८४ सामयिक प्रकाशन पृ. १४१

बात नहीं चलायी किसी ने।"[1] कई पल अपने आप को उस सजी संवरी लड़की से मिलाती रही वह फिर गौर से देखती है अपने चेहरे को।"[2] कमला बाहर निकलती है तो एक कौआ दाड़नी के पेड़ पर बैठा कां कां करने लग जाता है। वह ऐसे रुक जाती है जैसे उसकी कागभाखा समझती ये पता नहीं क्यों कमला को अचानक यही गीत याद आता है-

"उड़-उड़ कागा मेरा लई जा सनेहा
सजना से मिलणा जरूर हो।"
मूक भाव से देखती है फिर कहने लगती है-

'ऐ रे कागा। मेरा सनेहा ले जाएगा क्या? फिर कां कां करने लगता है मानो कह रह हो -जरूर ले जाऊँगा री "पर तेरा साजन रहता कहाँ है? भाव को समझाकर हंसती है बोली "मेरा साजन" खिलखिलाती है"[3] 'छब्बीस निशान' हमें संवेदना के एक ऐसे धरातल पर लाकर खड़ा कर देती है जहां पाठक कहानी की नायिका कमला के भीतर धधकते ज्वालामुखी से स्वयं को आइडेन्टीफाई करने लगता है"[4] यह नायिका छब्वीस वसंत पार कर भी परिणय सूत्र में नहीं बंध पाती है। इस कारण पंक्षी, जानवर, लड़की सभी में अनावश्यक रुचि रखने लगती है कहा जाता है- खाली दिमाग शैतान का घर होता है।"

(ग) बहिर्मुखी अंतर्दर्शक :- इस श्रेणी में प्रायः वे पात्र आते हैं जो किसी कार्य के कारण व उसके प्रभाव को सोच नहीं पाते हैं। वे अधिकतर भाग्यवादी, धूर्त, व्यसनी और मान्यता के पक्के होते हैं। झूठ बोलना, धोखा देना, षणयन्त्रों को रचना इनकी चारित्रिक विशेषताएं होती है। ये कभी-कभी आशावादी भी हो जाते हैं। मृणाल पाण्डे की कहानी 'बिब्बो'[5] की नायिका बिब्बो इसी तरह की है। उसमें झूठ बोलना, धोखा देना, आशावादी होना आदि गुण हैं। (वह केवल षड्यन्त्रों की रचना नहीं करती है।)

(घ) बहिर्मुखी संवेदक :- बहिर्मुखी संवेदक की कोटि में अधिकतर इन्द्रिय पारायण व्यक्ति आते हैं। जिनकी इच्छाएं छिछली व गंवारु होती हैं उनकी बुद्धि का विकास अधिक नहीं हो पाता। अतः गहन विषयों की पकड़ उनमें कम होती है। उनकी स्वार्थ पूर्ति के लिये वे दया प्रदशित करते हैं। इन्द्रिय लोलुपता उनमें अधिक होती है। ये अपने स्वार्थो की पूर्ति वह अच्छाई बुराई को बिना सोचे समझे करती रहती है।

'मीछव' कहानी में नायिका दुरी अपनी माँ को देखती है और स्वयं भी सोचने लगती है कि मेरे भी बहुत सारे पति होते तो कितना अच्छा होता - "कुल तीन ही भाई तीन ही पति। दुरी को यह संख्या बहुत थोड़ी ही लगी थी। द्वरी के छःविता थे एक माँ। माँ का घर में पूरा दबदबा था। दुरी देखती थी कि माँ सभी पतियों का बराबर ध्यान रखती थी.... कभी किसी में मन मुटाव नहीं होने देती थी सभी को .... बराबर अवसर देती थी। सबसे छोटा पति उससे लगभग पन्द्रह सोलह साल छोटा था बहुत ही संकोच शील परन्तु द्वरी की माँ ने उसे पति के अधिकार के साथ-साथ बेटे का प्यार भी दिया था । द्वरी के मन में कभी कभार आता कि पूछे वह किस पिता की संतान है? xxxxxxxxxxxxx धीरे - धीरे उसके

---

१. नवां दशक हिमांचल की प्रतिनिधि कहानियां / छब्बीसवां निशान - एस. आर. हरनोट पृ. १३८
२. वही पृ. १३८
३. वही पृ. १४०
४. वही पृ. १७ संपादक राजेन्द्र राजन नवां दशकः एक अवलोकन
५. बिब्बो- मृणाल पाण्डे (बचुली चौकीदारिन की कढ़ी) पृ. ९ प्रथम संस्करण १९९० राधाकृष्ण प्रकाशन

मन में यह इच्छा घर कर गयी कि वह भी उस व्यक्ति से शादी करेगी जिसके कई भाई हों। जितने ज्यादा पति होंगे उतना ही ज्यादा इज्जत होगी।"[१]

(इनकी कहानियों में पहाड़ी जीवन की पीड़ा का चित्रण है। मीछव हिमाचल के कबायली क्षेत्रों में व्याप्त रुढ़ियों अंधविश्वासों , व रीतिरिवाजों पर चोट करती है ये पंक्तियां दृष्टव्य है- तीस वर्ष तक दूसरा पति xxxxx तीस वर्ष तक मीछव बने रहने के बाद प्रथम पति बनने की लालसा पर उसे स्वयं आश्चर्य हुआ। " परोक्ष रूप में मीछव जनजातियों में व्याप्त बहुपति प्रथा की पीड़ा को उद्‌घाटित करती है यह कहानी पाठक के सामने अनेक गंभीर दर्द व वेदना से भरे अनेक प्रश्न छोड़ती है)"

(३) मनोग्रंथियों के आधार पर नारी पात्रों का वर्गीकरण

मानसिक ग्रंथियों का व्यक्तित्व पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है। ऐसे व्यक्ति सामान्य धरातल से उठकर असांधारण स्थिति में पहुंच जाते हैं। इस आधार पर यदि कहानी के नारी पात्रों का विभाजन किया जाय तो वे दो प्रकार के होंगें- साधारण व असाधारण।

कुछ नारी पात्र सामान्य गुणों को लेकर आदि से अंत तक चलते रहते है, जिसके कारण उनके व्यवहार में कोई असामान्यता या असाधारणता नही आने पाती है किन्तु कुछ नारी पात्र ऐसे भी होते है जिन्होनें सामान्य धरातल से नीचे गिरकर असाधारण गुणों का विकास अपने व्यक्तित्व में कर लिया है। फलतः उन नारी पात्रों का व्यवहार भी सामान्य से भिन्न असामान्य हो गया है।

साधारण व असाधारण का यह वर्गीकरण गुणात्मक नही है। व्यक्तित्व में विकसित गुणो का विकास व्यक्ति को सामान्य बिन्दु से असमान्य की ओर ले जाता है। यह भेद मात्रात्मक होता है अर्थात् किसी व्यक्ति में किसी गुण की मात्रा अन्यों की अपेक्षा अधिक हो जाती है और किसी में कम होती है। परिस्थितियाँ भी व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती हैं। मनुष्य जिस समाज या परिवेश में रहता है उसका उसके जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। कुछ विशेष प्रकार की परिस्थितियाँ विशेष प्रकार के व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं जिसके फलस्वरूप व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है। साधारण या असाधारण का भेद व्यवहार के कुछ पक्षों पर भी निर्धारित करता है अर्थात् किसी परिस्थिति में जो व्यक्ति असाधारण व्यवहार करता है वही व्यक्ति सामान्य परिस्थिति में साधारण मनुष्य जैसा व्यवहार करता है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति को साधारण असाधारण उन रूढ़ दुर्लभ्य वर्गों में विभाजित कर देना असम्भव है। व्यक्ति के व्यवहार को उसकी परिस्थितियाँ और परिवेश प्रभावित करते है।,

---

१. मीछव : सुशील कुमार फुल्ल. नवां दशक हिमांचल की प्रतिनिधि कहानियाँ/ पृ. १०८
नवाँ दशक (एक अवलोकन) सं. राजेन्द्र राजन प्रथम संस्करण १९९४

(क) साधारण :- इन नारी पात्रों का व्यवहार अधिकांशतः सामान्य व्यक्तियों का सा ही रहा है। हाँ कभी-कभी आवेश जन्य परिस्थितियों में जैसे ही उनका व्यवहार कुछ असामान्य होता है वैसे ही दूसरे क्षण पुनः अपना मानसिक संतुलन स्थापित कर वे अपने व्यवहार को सामान्य बना लेती है। इन नारी पात्रों के जीवन पर स्थिर वर्ग के नारी पात्रों की चर्चा करते समय पर्याप्त रोशनी डाली जा चुकी है। रेखा जी की कहानी 'ब्राउन कोट' की सुमि का चरित्र साधारण है वह नायक के साथ रोज बैठती है मिलती है पर नायक की पत्नी सुधा के प्रति वह इतनी चिंतित हे जैसे कि एक बहिन या कोई शुभचिंतक सम्पूर्ण कहानी में सुधा के वैवाहिक जीवन व उसकी मानसिक यंत्रणा का आकलन कर कहती है- "लगता है रजत और सुधा का विवाह एक मौन संधि पर हस्ताक्षर कर देना था। अब वे जब तक जियेंगे इस दस्तावेज को सम्भाल रखेंगे। कभी इसे खोलेंगे नहीं कोई संशोधन नहीं करेगे क्योंकि वे दोनों यह जानते है कि उनकी उम्र कैद का आदेश है इसे एक दूसरे को पढ़कर सुनाने की हिम्मत उनमें नहीं है। इसलिये दोनों ने अपनी आत्मा के हाहाकार के ऊपर मौन की अभेद चट्टान लुढ़कादी है।"१ सुमि इस कहानी में सामान्य होकर आवेश जन्य परिस्थितियाों में असामान्य हो जाती है पर फिर मानसिक संतुलन साथापित करती है।

कहानी की संक्षिप्त जानकारी : कथा लेखिका रेखा जी को अत्यधिक संवेदनशील रचनाकार के रुप में देखा जाय तो शायद अतिश्योक्ति न होगी। रेखा की अधिकांश कहानियां मानवाय पीड़ा, यातना, कुण्ठा हताशा व अन्तरवेदना से सरावोर है। पात्रों का सूक्ष्म मनोवैज्ञालिक विश्लेषण उनके भीतर दहकती यंत्रणा की असंख्य परतों को प्याज के छिलके सा खोलता चला जाता है। उनकी रचनाओं की विशेषता यह है कि वे सायास व अनायास ही पाठक के साथ आइडेन्टीफाई होती चली जाती है। एक अद्रश्य रिश्ता जोड़ लेती है। 'ब्राउन कोट' रेखा की एक उत्कृष्ट कहानी है जिसमें दाम्पत्य संबंधों के बिखरे सूत्रो को उधेड़ कर उनके वैपथ्य में छिपे कारणों को तलाशने का एक सफल प्रयास दिखाई देता है। बेमेल विवाह से संबंधों में उत्पन्न पीड़ा व हताशा का मार्मिक चित्रण इस कहानी में देखा जा सकता है। यह अविस्मरणीय रचना अपनी समय सीमा लांघकर स्त्री पुरुष के कोमल रिश्तों में लगी दीमक की पड़ताल करती है।

(ख) असाधारण :- इस वर्ग में वे नारी पात्र आते हैं जो व्यक्तित्व मापक बिन्दु के सामान्य गुणों से ऊपर उठे हुये हैं। इन नारी पात्रों के व्यक्तित्व मेंप्राप्त होने वाले दया, क्षमा, सहन शीलता, चरित्र की दृढ़ता आदि कुछ गुण ऐसे होते हैं जो उसे असामान्य कोटि में पहुंचा देते हैं। इन नारी पात्रों को अपने सुख का ध्यान न होकर जनकल्याण में मग्न रहना अच्छा लगता है। दूसरों की खुशी के लिये ये कुछ भी दे सकते है। इन गुणों को अपनाने वाले असाधारण उत्कृष्ट कोटि के पात्र कहे जाते हैं।

'ममता का प्रतिदान' की रामसिरी असाधारण कोटि की नारी है वह अपने पति की दूसरी शादी इसलिये करवा देती है कि पति श्रीधर कम से कम एक बेटे का तो बाप बन जाय- "रामसिरीन मालूम क्यों श्रीधर पर दबाव डालने लगी कि वह दूसरी शादी कर ले भारतीय नारी प्रारंभ से ही ऐसा विश्वास करती आयी है कि जब तक वह पति को उसका प्रतिरूप भेंट नही कर देती तब तक उसकी पति भक्ति में बहुत बड़ी कोर कसर रह जाती है जिसके लिये ईश्वर भी क्षमा नही करता है। भला फिर भी रामसिरी यह पाप क्यों मोल लेने लगी। उसकी नजर में हर कीमत पर कुल तारने वाला होना चाहिये। xxxxxसचमुच की सौत ले आयी - भारत की नारी के विचारने और सहने की परिखा बड़ी गहरी होती है।" पुत्र प्राप्ति के

---

१. रेखा ब्राउन कोट - नवां दशक हिमांचल की प्रतिनिधि कहानियाँ सं. राजेन्द्र राजन प्रथम संस्करण १९९४

लिये पति को हर तरह से प्रसन्न रखने के लिये यह कदम रामसिरी ने उठाया।"[१] आगे रामसिरी श्रीधर के प्रेम से वंचित कर दी जाती है। श्री धर बिलकुल बदल जाते है। पति के रहते हुये वैधव्य सा जीवन जीती है।- "नारी पुरुष के लिए अपना सब मिटा देती है दूसरी ओर पुरुष उसकी खोज खबर तक नहीं लेता xxxx नारी युगों युगों से किसी कर्जको चुकता कर रही है अपनी सेवा , प्रेम व समर्पण द्वारा।"[२] रामसिरी के सौत के बेटे श्याम जी की बारात जा रही होती है तब "रामसिरी का मन बाँसो उछल रहा है उसे प्रतिक्षण ऐसा लगता कि "वह कुएं में गिर रही है।" और श्याम जी उसकी बाँह पकड़कर कह रहा है माँ! तू कुएँ में मत गिर मैं तेरे लिये नयी बहू लाऊँगा।" पर ऐसा क्षण नहीं आया ।xxxxx रामसिरी कटी पतंग सी चबूतरे पर बैठ गयी। बेचारी वृद्धावस्था में मातृत्व प्राप्त न कर सकी।"[३]

कथाकारों नें जहाँ एक और आदर्श नारी पात्रों का चित्रण किया है वही कुछ एसे नारी पात्र भी दिखाई देखाई देते हैं जो व्यक्तित्व मापन बिन्दु के सामान्य गुणों से नीचे गिरे हुये हैं ऐसे नारी पात्रों के व्यक्तित्व में अस्थिरता, चंचलता, रुप का गौरव व प्रतिरोध लेने की कुछ ऐसी प्रवृत्तियां है जो नारी के सामान्य गुणों की उपेक्षा करती है। ऐसी पृवृत्तियों वाली स्त्रियों का अधःपतन अवश्यम्भावी होता है। येन केन प्रकारेण सुख चाहने वाली नारी सामान्य नारी के आदर्शो से नीचे गिर जाती है। इनके व्यक्तित्व में वासना जन्म प्रेम की प्रबल आकांक्षा होती है। ऐसे पात्र असाधारण निकृष्ट कोटि के पात्र कहे जाते हैं।

असाधारण निकृष्ट कोटि में 'कदली के फूल' [४] में कालिन्दी बुआ की देवरानी आती है जो कि अपने जेठ को (चंदर फूफा) कालिन्दी बुआ के पति को लांछित करतीहै कि जेठ जी मुझे घूरा करते हैं देखते हैं आदि। बुआ के देवर व देवरानी घर का सम्पूर्ण हिस्सा पाने के लिये चन्दर फूफा को पागल घोषित करवा देते हैं। बुआ की देवरानी नारी के सामान्य आदर्शो से बहुत नीचे गिर जाती है।

(४) इच्छा शक्ति के आधार पर नारी पात्रों का वर्गीकरण :- मानव जीवन इच्छा शक्ति के आधार पर संचालित होता है। दृढ़ इच्छा शक्ति चरित्र को उत्थान की ओर व निर्बल इच्छा शक्ति चरित्र को पतन की ओर ले जाती है। व्यक्ति जो कुछ अपने जीवन में बनता है वह इच्छा शक्ति के आधार पर ही बनता है। इस प्रकार व्यक्तित्व निर्माण में इच्छा शक्ति का बहुत कुछ योगदान है।

(क) दृढ़ इच्छा शक्ति वाले नारी पात्र : विपत्ति और कष्टपूर्ण परिस्थितियों में धैर्य धारण कर अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही चरित्र की दृढ़ता है। इन नारी पात्रों के जीवन का प्रत्येक क्षण दुःखों से परिवेष्टित रहता है। चरित्र की दृढ़ता विषम से विषम परिस्थितियों में भी उसे सम्बल प्रदान करती है। आदर्शो और मान्यताओं के प्रति ये मानसिक संतुलन बनाये रखते हैं। इन्हें कर्त्तव्यपालन एक धर्म दिखाई पड़ता है। ऐसे नारी पात्रों में आत्मसम्मान का गुण छलकता रहता है। दृढ़ इच्छा शक्ति वाले नारी पात्र अपने चरित्र को आदर्श की चरम सीमा पर प्रतिष्ठित करते हैं।

---

१. ममता का प्रतिदान (हरगुलाल) सत्रह आंचलिक कहानियाँ सं. राजेन्द्र अवस्थी पृ. १७२
२. वही / पृ.१७३
३. वही (अ) पुत्र के नयी बहू लाने की खुशी में छुट्टी पाने के उद्देश्य से माँ के कुएं में गिरने की ब्रज की एक प्रथा है।
४. कदली के फूल - क्रौचवध तथा अन्य कहानियाँ ऋता शुक्ला - १९८५

'क्रौंचवध' कहानी में सावित्री की शादी से समय ससुराल वालों की बढ़ती हुयी दहेज इच्छा को देखकर सावित्री की माँ धैर्य आदर्श कर्त्तव्य की साक्षात् प्रतिभा बनकर उपस्थित होती है। वे मानसिक संतुलन बनाये रखकर आत्म सम्मान दृढ़ इच्छाशक्ति एवं विपत्ति के क्षण में भी दो पुत्रों की आदर्श माँ का चरित्र प्रस्तुत करती हैं। "उस समय कल्याणी आजी ने ही साहस दिखाया था- नये दामाद को बुरी तरह फटकारती हुयी वे उबल पड़ी थी - तुम्हारे बाबूजी ने जो कुछ माँगा हमने सब पूरा किया, बेटा राई रत्ती की भी कसर नहीं छोड़ी ....। तुम लोगों के मन में क्या यह परतीत है कि हमारे पास कुबेर का खजाना गड़ा हुआ है? यही खेत मेरे बच्चों के मुँह का आहार जुटाता था और जुटाता है -। तुम्हारी दीढ इसी पर लगनी थी? दामाद तो बेटा बराबर होता है बबुआ - । हम तुमसे क्या उम्मीद रखें भला? एक बात गाँठ बांध लो तुम्हारी यह आस पूरी करना हमारे बूते के बाहर है- तुम्हारी जो मर्जी आये करो xxxx ससुर हाथ पकड़ कर बेटे को बाहर ले गये । सावित्री बुआ की विदा नही हो पायी।[१] "इस कहानी में यदुनाथ बाबा की धर्मपत्नी कल्याणी आजी का पूरा जीवन दुःखों से परिवेष्टित है। धैर्य धारण कर कर्त्तव्य से उन्होनें कभी मुँह नही मोड़ा। दृढ़ शक्ति की वे धनी थी।

(ख) दुर्बल इच्छा शक्ति वाले नारी पात्र :- इच्छा शक्ति की दुर्बलता के कारण ही इन नारियों का अद्यपतन होताहै। इच्छा शक्ति की कमी व्यक्तित्व में स्थायित्व नही आने देती और व्यक्ति उचित अनुचित के मध्य संतुलन नहीं सथापित कर पाता। मानसिक असंतुलन व्यक्तित्व का उत्थान करने में असमर्थ होता है। फलतः व्यक्ति अपने आदर्शो से नीचे गिर जाता है। नारी की समस्त कमजोरीयाँ इन नारी चरित्रों में हैं जिसका कारण इच्छा शक्ति की कमी है।

'कल्चर'[२] कहानी में नायिका प्रिया दुर्बल इच्छा शक्ति की नारी पात्र है। वह अपने आपको माडर्न फॉरवर्ड महसूस करती है पहले अशोक को चाहती है पर वह अपने प्रेमी के प्रति तटस्थ नहीं है। प्रिया के डैडी प्रिया पर कोई प्रतिबंध नही लगाते लेकिन उसके इर्द गिर्द इस तरह का परिवेश पैदा करते है कि स्वयं प्रिया अशोक को भूल जाती है और फॉरेन रिटर्न बेल कल्चर्ड वर के गले में वरमाला डाल देता है। नयी सभ्यता एवं नारी की दुर्बल इच्छा शक्ति मनोवैज्ञानिक रूप में नारी को व्यक्तित्वहीन बना देती है। इस कहानी में नारी (प्रिया) अपने आदर्शो से नीचे गिर जाती है प्रिया के व्यक्तित्व में स्थायित्व नही है पहले एक मध्यवर्गीय (अशोक) व्यक्ति को चाहती है फिर उच्चवर्गीय से ब्याह कर लेती है।

(५) मानवीय गुणों के आधार पर नारी पात्रों का वर्गीकरण :- कथाकार नारी मनोविज्ञान के सूक्ष्म पर्यवेक्षक होते हैं वे भिन्न भिन्न नारी पात्रों को विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में छोड़कर उनका विश्लेषण करने का प्रयास करते हैं। मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा में नारी वांछनीय समझते हैं। एक ओर तो आदर्श गुणों से भरपूर नारी पात्र है तो दूसरी ओर नारी के समस्त दुर्गुणों को अपने में सन्निहित किये हुये नारी पात्रहैं। यद्यपि ये नारी पात्र यथार्थ की भूमि पर खड़े होने के कारण अधिक मनोविज्ञानिक है इनकी उपस्थिति कहानी में आदर्श नारी पात्रों के चरित्र को अधिक उज्जवलता व प्रकाश प्रदान करती है। कुछ पात्र सारा जीवन

---

१. क्रौंच वध (क्रौंचवध तथा अन्य कहानियाँ) ऋता शुक्ला भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन १९८५ / पृ. १७१

२. नारी जीवन के कुछ पहलू : मालती जोशी की कहानियाँ / पृ. ४७
(समकालन परिवेश और प्रासंगिक रचना सन्दर्भ - अशोक हजारे एवं डॉ. माधव सोनटक्के
विलास प्रकाशन प्रकाशन सस्करण १९८८

कष्टों में व्यतीत करते हैं किन्तु अपने आदर्शों और सिद्धांतों को कहीं भी ठेस नहीं आने देते। अपनेदिव्य जीवन से यह प्रमणित कर देते है कि कष्ट मानव जीवन की कसौटी है, जो व्यक्ति उस पर खरा उतरता है उसी का जीवन कृतार्थ है।

मानवीय गुणों के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार है

(क) प्रेम वियोगिनी - किसी के प्रति मन में जीवन भर अनन्य प्रेम रखती है, उसकी अनुभूति भीतर ही भीतर करती हुयी कभी उसे प्रकट नहीं करती। न कभी उसे वासना जन्य प्रेम से पंकिल होने देती है। उसका प्रेम तपः प्रेयसी का प्रेम होता है।

'शिवप्रसाद मिश्र' रुद्र की कहानी 'आये, आये, आये' में चित्रकार राम दयाल का जब बचपन था। उस समय गाँव के एक जमींदार की लड़की किंकिणी कथावाचक के बेटे हंस के पास खेलने आती है। हंस ही रामदयाल चित्रकार हैं। एक दिन हंस किंकिणी का चित्र बना रहा था कि उस समय अचानक कोई सुन्दरी किकिनी को उठा ले जाता है और उसे काशी की प्रसिद्ध वेश्या अमीरजान बना देता है। इसके रुप व गुण को देखकर नवाव असगरी मिर्जा उसे बेगम बना लेता है। इसके यहाँ नवाब नई बेगम की तसवीर बनवाने के लिये चित्रकार रामदयाल को बुलवाते हैं बेगम की जिद है कि तसवीर बनवाउँगी तो उस्ताद रामदयाल से।" नवाब ने कहा- "गुनियों से क्या परदा - बेगम दौड़ी आयी चित्रकार को देखकर हंस चित्रकार के मुँह से निकला किकिनी। वहाँ से निकाल दी गयी। बाद में यही तम्बाकू अफीम की टिकिया वाली अमीरन बन गयी थी जब नवाव के यहाँ एक दिन अचानक रात्रि में चित्रकार पहुचा तो बेगम (किकिनी , अमीरन) ने कहा- "तुमने तो वास्तव में बड़ी उन्नति की है हंस याद है तुमने मुझे इसका वचन दिया था, कहते-कहते उसका स्वर आर्द्र हो उठा वह गद्‌गद गले से बोली, देखो-"नारी का प्रेम पुरुष को उन्नत बनाता है"[1]

इस कहानी में किकिनी हंस (चित्रकार रामदयाल) को बहुत चाहती है पर जीवन भर प्रेम को प्रदर्शित नहीं करती उसे बचपन में भी इस बात की अनुभूति थी कि हंस उसे चाहता है अमीरजान से जब बेगम बनती है तब भी वह हंस को भूल नहीं पाती - किकिनी अपूर्व रूपशालिनी थी। वह आदर्श प्रतिमा थी जिस पर कलाकार जान देते हैं। सौ दीपकों वाले झाड़ के उज्जवल प्रकाश में हंस किकिनी को एकटक देख रहा था उस ने उत्तर नही दिया - स्वयं एक कदम आगे बढ़ा, दो कदम पीछे हटाते हुये किकिनी बोली- "आगे मत आओ, पतन की ओर न बढ़ो। मैं लाल-लाल आँखों के पहरे में रहकर अश्पृश्य हो गयी हूँ।

xxxxxकिकिनी ने तस्वीर उठाकर हंस के हाथों में देते हुये कहा "इसे लो और जल्दी चले जाओ।"[2] किकिनी (अमीरन) जीवन भर अनन्य प्रेम करती है पर कभी हंस को अपनी वासना से उसे पंकिल नही होने देती वह उम्र भर किकिनी अमीरजान बेगम से फिर अमीरबुआ तक बनजाती है पर उसका प्रेम तपः प्रेयसी का प्रेम है वह हंस को कभी उसके चरित्र से गिरने नही देती।

(ख) समाज सेविका - इनमें समाज के हर क्षेत्र में सेवा का भाव दिखाई पड़ता है। ये रोजगार की प्राप्ति से लेकर स्वतः कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुये कहानी में दिखाई पड़ती है।शिक्षिका, डॉक्टर, नर्स, नेता, एवं कोई निकृष्ट कार्य करने वाली जैसे- आया, बर्तन साफ करनेवाली, खाना पकाने वाली या ऑफिस की चपरासिन

---

१. आये,आये, आये (शिवप्रसाद मिश्र, रुद्र) सत्रह आंचलिक कहानियाँ
सं. - राजेन्द्र अवस्थी / पृ. १३९

२. वही / पृ. १३९ अनामिका प्रकाशन - दिल्ली सं. १९९३

३. निर्वाण (स्वयं सिद्ध) कहानी संग्रह शिवानी / पृ. ५५-५६

आदि हर क्षेत्र में सेवा का भाव लिये रहती हैं। कभी कभी ये जातिगत प्रेम से ओत प्रोत होकर जाति विशेष का हित चाहती ही । आजनारी नारीजाति के हितों के लिये जागरुक है। 'निर्वाण'[३] (शिवानी) की नायिका पाखण्डी धर्माचार्यो का विरोध करती है मुद्राराक्षस की 'कटोरी देवी' की नायिका कटोरी देवी एक दृढ़ साहसी एवं संघर्षशील स्त्री है वह निडरता के साथ सफेद पोश अपराधियों के चरित्रों का पर्दाफाश करती है उसका अदम्य साहस दृष्टव्य है, "कैसे क्या साहब , बड़ी दिलेर औरत थी- पुलिस ठेकेदार और मौसम की जो मार उसने सही थी उसमें इतने बरस जी गयी यही बहुत है। उसनें जाँन गवाँ दी मगर मन्नू जी को ले डूबी, साला गैंगस्टर जैल में है----।"[१] क्षमा शर्मा की कहानी 'सम्दर्भहीन'[२] की वृन्दा समाज सेवा करके परिवार के बाहर उमड़ रहे गन्दे वातावरण को साफ करना चाहती है जिसे समाज के ठेकेदार सहन करने में असमर्थ दिखाई देते है। परिवार को पालने पोषने समाज में जावित बने रहने के लिये गरीब एवं निःसहाय स्त्रियाँ परिवार के बाहर अपना जीवन दाँव पर लगाती है।

(ग) महत्वाकांक्षिणी :- नारी पात्र अधिकांशतः इस गुण से परिचालित होते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण उन्हें जीवन में अनेक सम व विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। जव इनके जीवन में सद्ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है तव इन पात्रों को अपने निकृष्ट जीवन से घृणा होने लगती है। महत्वाकांक्षा के कारण इन्हें समझ में नही आता कि ये सत् मार्ग पर जा रही है या असत् मार्ग पर। ये प्रवृत्ति इन्हें अंधा बना देती है। अनेकानेक विद्रोहों व अपराधों की ये सृष्टि तक कर डालते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण पात्र धन ऐश्वर्य रूप और यौवन के अभिलाषी हो जाते हैं। इन चारों की उपस्थिति में ये सब कुछ पाने को लालायित हो जाते है "ज्वार भाटा (अभिमन्यु अनंत)[४] कहानी की नायिका सोनिया ने अपनी महत्वाकांक्षा के वशीभूत होकर के दूसरे देश के लड़के से शादी कर ली और बाद में उसका पति स्वयं ही उसे वैश्या बना डालता है।

वर्तमान नारी भावुकता की अपेक्षा व्यवहारिक अधिक हो गयी है तभी वह आज की दुनिया में जी सकती है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुष का मुकाबला कर सकती है, उसे मुँह की खिला सकती है। वह सोचती है कि नारी भी पुरुषों के समान महत्वाकांक्षी हो सकती है। धन ऐश्वर्य की अभिलाषिणी मिसेज प्रभाकर 'रक्तचाप' कहानी में मिसेज प्रभाकर कैरियर मांइडैड नारी हैं। अजीबोगरीब तौर पर भागदौड़ में व्यस्त रहती हैं। दिन भर टेलीफोन करती रहती हैं और अपनी इंटरव्यू के लिये पहुंच का जुगाड़ फिट किया करती है।

"जिस नौकरी पर मिसेज प्रभाकर ने आँख रखी थी उसका भाव आजकल बीस हजार रुपये चल रहा था। बीस हजार रुपये मिसेज प्रभाकर के पास नहीं पर इस कारण वे तनिक भी संकुचित नही थी वह चाँद देखकर या राखी प्रस्तुत करके या माथे पर वात्सल्य भाव का आर्शीवाद लेकर काम करवा लेंगी ऐसा उनका विश्वास था।"[५]

---

१. कटोरी देवी - मुद्राराक्षस सारिकम्नवम्बर १९८७ / पृ. ३३
२. सारिका अक्टूबर १९८९
३. सारिका अक्टूबर १९८९
४. हंस अगस्त - १९९१
५. सुरेशसेठ : रक्तचाप (सुबह अपनी थी) पृ. ३० पराग प्रकाशन १९८९

मिसेज प्रभाकर के पति प्रसन्न थे कि उनकी पत्नि एक टेलेंटिड औरत थी उन्होंने डिप्टी डायरेक्टरका पद किसी विद्यायक की मदद से पा लिया। कहानी नायक जिसे वे एक शुभचिन्तक मानती है, अपने पति के सामने ही कहती है कि उसको पत्र लिखकर रखा हुआ है। काम की व्यस्तता के कारण पोस्ट नही कर पायी। उसे बुरा नही मानना चाहिये, "अब तो ये शामें मशरूफ हो गयी हैं कि बता नही सकती। पर तुम्हारी याद क्या मन से जा सकती है। अब हम घर में नहीं मिल सकते तो क्या? तुम यूँ क्यूँ नही करते, कल ऑफिस आ जाओ। कुर्सी बड़ी हो जाने से ऑफिस में और भी खाली रहती हूँ। ऐसी बातें करने के लिये ऑफिस से बढ़िया और कौन सी जगह हो सकती है?कल आओ न ऑफिस?"[१]

(घ) ईर्ष्यालु :- अधिकांश नारी पात्रों में इस वृत्ति की प्रधानता होती है। उनके जीवन की अधिकांश क्रियाएं इसी से परिचालित होती हैं। नारी हमेशा नारी से ही ईर्ष्या करती है। गतिशील वर्ग केपात्र हमेशा ईर्ष्यालु होते हैं। येअपने प्रतिद्वन्द्वी के साथ कैसा भी वर्ताव कर सकते है। ये बड़ी छल कपटी होती हैं। ये अपने प्रतिद्वन्द्वी या नारी समाज में किसी की उन्नति पर प्रसन्न नहीं होती। इन्हें हर व्यक्ति से ही चिढ़न कुढ़न रहती है। ये स्नेही प्रवृत्ति की नहीं होती स्वार्थी होकर किसी का भी अहित कर देती हैं। हरगुलाल जी की कहानी 'ममता का प्रतिदान' की सुहागो ईर्ष्यालु वृत्ति की नारी है। वह अपनी सौत (अपने पति की पहली पत्नी) जो कि एक साहस, धैर्य, त्याग एवं प्रेम की प्रतिमूर्ति है उससे ईर्ष्या इस कारण करने लगती है कि सोहागों का स्वयं का बेटा सौतेली माँ रामसिरी को बहुत प्यार करता था इस कारण यह अपनी सौत को मारा पीटा करती बेटे के ब्याह पर तो उसे बेटे को देखने तक नही दैती है- सोहागों का व्यवहार बड़ा क्रूर था जब बच्चा छोटा तथा संभलता नही था तो सौत से आया सा व्यवहार कराया पर बड़ा हुआ तो- "सुहागो ने अपनी कसम दिलाकर श्यामजी को बड़ी माँ से न बोलने को कहा।" [२]xxxxxxx

मालती जोशी की कहानी 'एक और देवदास' में कॉलेज हॉस्टल मेट्रन मि. गीता अड़तीस वर्ष की उम्र तक अविवाहित है। कॉलेज टाइम ने उन्हें प्रकाश नारायण बाजपेयी नाम के लड़के से प्यार हो गया था वह लड़का डी. एफ. ओ. हो गया और एक खूबसूरत लड़की से ब्याह कर चुका था। पत्नी के मरने के बाद अपनी बोटी को हॉस्टल में रखने आता है। बाजपेयी को देखकर कोमल अनुभूतियाँ सजगता पा लेती है और यह फिर देवदास की पारो बनने लगती हैं। उसकी बेटी से बेहद नफरत करती है और नफरत का कारण था सिर्फ बाजपेयी का अन्य लड़की से शादी करना ये उस खूबसूरत बेटी बांसुरी बायपेयी से इसलिये नफरत करती थी कि उसकी स्वर्गीय माँ इनके प्रियतम की पत्नी बन बैठी थी वे बांसुरी से नफरत ईर्ष्या करती थी। मि. गीता के शब्दों में "अपने कल्चर्ड व्यक्तित्व के भीतर मैंने झांककर देखा, वहाँ एक ईर्ष्यालु, विचारहीन औरत वैठी हुयी थी। सारा का सारा अवचेतन एक अनदेखी, अनजान नारी के प्रति ईर्ष्या से लवालब भरा हुआ था।"[३]

---

१. सुरेश सेठ : रक्तचाप (सुबह अपनी थी) / पृ. ३६

२. ममता का प्रतिदान (डॉ0 हरगुलाल) सत्रह आंचलिक कहानियाँ सम्पादक राजेन्द्र अवस्थी पृ. १७३ अनामिका प्रकाशन

३. एक और देवदास - मालती जाशी (हिन्दी लेखिकाओं की श्रेष्ठ कहानियाँ) पृ. ११४

संपादक : योगेन्द्र कुमार लल्ला श्रीकृष्ण : राष्ट्रभाषा प्रकाशन, दिल्ली

(ङ) अहंकारिणी :-

अहंकारिणी वृत्ति से परिचालित पात्र प्रतिशोधलेकर ही अपनी प्रतिष्ठा की स्थापना करते है। चाहे वह न्यायिक हो या न हो उन्हें इसकी परवाह नहीं होती। अहंवृत्ति के कारण कभी-कभी परिवार का विघटन तक हो जाता है। नारी वर्ग में रूप, यौवन और विशेषतः धन का अहंकार होता है। अधिकतर धनवानहोने के कारण इस प्रवृत्ति की नारियाँ किसी भी व्यक्ति को तुच्छ समझती हैं। ये समाज में किसी का भी अपमान करना किसी कोभी नीचा दिखाकर प्रसन्न होती हैं।

कहानी 'बेनकाब' में रघुनन्दन भाई की धर्मपत्नी जी को धन का अहंकार है। वे अपनी सगी गरीब ननद को कुछ नहीं समझती। बेटे की शादी के बाद वे सुरस्ती दीदी (सगी ननद) को विदाई में एक सस्ती साड़ी व लड्डू का चूरन देती हैं और उन्हें ससुराल एक चपरासी के साथ भिजवाती हैं और समिधा की विदाई अच्छी करती है क्योंकि समिधा लेक्चरर है। कहानी में रघुनाथ भइया की पत्नी आंगन में गयी तो बनारसी साड़ी और गहनों से लदी कदी एक थुलथुल महिला चारों ओर से घीरी थी में, झल्लाहट थी xxxxx समिधा ने तिलक के बाद कहा इजाजत चाहती हूँ उनकी पत्नी ने यूँ ही रस्मी तौर पर वह कहा- "ननद जी चार दिन यहीं रुक जाती।"[१] लेखिका के स्वर में - "ऐश्वर्य ने -- हाँ सच है कि यह नशा चेतना पर अहंकार की मोटी परत बनकर बिछ जाता है। किसने यह अधिकार दिया कि वे सुरसुती दीदी का अपमान करें?"[२]

"पत्नी अपनी इच्छा के विपरीत पति को पाकर सोचती है कि वह ऐसे पति के साथ जीवन निर्वाह नहीं कर सकती, जहाँ ठाठ बाट का जीवन न जी सके, "पता नहीं डैडी ने क्या सोचकर ऐसे आदमी के गले मुझे बांध दिया..... आखिर संस्कार भी तो कोई चीज़ है। जिन्दगी भर का भुक्कड़ दरिद्र स्कूल मास्टर का बेटा ..... इस आदमी को टॉलरेट करना अब मेरे वश की बात नहीं है।"पत्नी ने आई. ए. एस. पति को तलाक देने के लिये कोर्ट में मुकदमा दायर किया है"[३]

वह अपनी प्रतिष्ठा के लिये, धनवान बनने के लिये ही बड़े अफसर की पत्नी बनती है उसे दायित्व निर्वाह की परवाह नहीं वह पति को भौतिक सुख साधन की मशीन मानती है। इस तरह परिवार का विघटन हो जाता है।

(६) मूल प्रेरणा स्त्रोतो के आधार पर नारी पात्रो का वर्गीकरण ::-

(१) वासना प्रधान नारी पात्र :- इन नारियों का प्रेम अधिकांशतः वासना परिचालित प्रेम है। जिसमें ऐन्द्रिकता व विलास की मात्रा आधिक है। सात्विक प्रेम की अनुभूतियों से वे बहुत दूर हैं। ये जीवन भर एक प्रेमी को छोड़कर दूसरे की ओर भटकती रहती हैं। वेश्या जैसे निकृष्ट जीवन में सुखद अनुभूतियों का अनुभव करती हैं। ये अपनी लैंगिक भावनाओं को संतुष्ट करने हेतु अनेक पुरुषों का आश्रय लेती हैं। इन्हें ये अनुभूति कभी नहीं होती कि ये जिस कार्य में प्रवृत्त हैं उससे किसी दूसरे को कितना दुःख पहुंच रहा है अधिकतर ये सात रुप में या वर्तमान कहानियों में 'रखैल' जैसी श्रेणी में आती है। यौवन जन्म वासना की पीड़ा से पीड़ित हो पथभ्रष्ट जीवन बिताती हैं।

'घर गमला' (यागेश गुप्ता) कहानी में नायिका एक कॉलगर्ल का स्वरूप धारण करने की कोशिश करती है - "वह अन्दर आ गयी उस आदमी ने देखा उसकी बगल में एक दरी है उसने दरी बिछा दी और

---

१ बेनकाब (क्रौंचवद्य तथ अन्य कहानियाँ) ऋता शुक्ला प्रं सं. १९८५ पृ. ८९-९०
२. वही - पृ. / ९१ - ९२
३. जवाहर सिंह : चौथा आश्चर्य (राष्ट्रीय विदूषक) पृ. ५५ शब्दकार दिल्ली पृ. सं. १९८०

लेट गयी (बोली) किसी ने ठीक ही कहा है एक से भले दो।"[१]

'एक प्यास पहेली' (राजेन्द्र अवस्थी) में सौतेली माँ ही अपनी सौत के बेटे को प्यार करने लगती है। एक दिन पति शिकार के लिये जाता है तब- "जंतरी के गले में हाथ डालकर झूले की तरह झूल गयी। जंतरी हक्का बक्का देखता रहा" - भरोसा रख माँ। हाँ रे मेरे साथी जंतरी जब तू मुझे माँ कहता है तब मैं सोचने लगती हूँ कि मैं बूड़ी हो गयी हूँ। मरघट पास है। मेरे कानमुझे काटने को दौड़ते हैं।"[२] चंदिया पुन्ना के मरने के बाद कहती है- "मेरा कौन बैठा है जंतरी। क्या ये भयावनी काटती रातें ही मेरी बाजुओ की छाया बनकर रहेंगी। मैंने तुझे कब देखा था, तू भूल गया होगा। तेल पिये डंडे की तरह तेरा मुस्तैद तन काल्हादेव गाँव के किस जवान पर इस तरह आया है? तेरी छवि बिसरती नहीं जंती। एक गहरा काँटा चुभा है और आज भी उसका दर्द मेरे पूरे शरीर को साल रहा है। हाँ जंतरी -कहते कहते चंदिया चुप होकर साँस लेने लगी।"[३]

(2) **सात्विक प्रेम प्रधान पात्र** - इस वर्ग की नारियों के प्रेम में सात्विक अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। इनका प्रेम त्याग को साथ लेकर एक प्रभावी व्यक्तित्व का निर्माण करता है। प्रेम की सच्ची अनुभूतियों का अनुभव कर ये कभी भी शारीरिक स्पर्श प्राप्त करने की आकांक्षा प्रकट नही करते। ये प्रेम के आग्रह के बाद व आमंत्रण प्राप्त होने के बाद भी बहुत सोचविचार कर कदम रखते हैं। ये अपने अगाध स्नेह को काम वासना द्वारा कलुषित नही करना चाहते। भारतीय नारी के समस्त गुणों से युक्त ये नारीपात्र समर्पण, त्याग व सेवा की भावना लिये रहते हैं। ये नारी पात्र अपने प्रेमी की खुशी के लिये उसकी उन्नति के लिये प्रणय को - प्रेमपीड़ा को अपने ही पैरों से कुचल कर अपने जीवन का अंत तक कर देते हैं। इन नारी पात्रों का व्यक्तित्व व स्वभाव प्रभावोत्पादक व सजीव बन पड़ता है।

'सती (प्रणय कुमार बन्ध्योपाध्याय) कहानी की नायिका कमला तवायफ होकर भी दिवाकर को पत्नी चारू से ज्यादा चाहती है। और कहानी के अंत में दिवाकर के लिये अपनी जान तक दे देती है। दिवाकर की पत्नी चारू सोचती है कि कमला की हैसियत हर तरह से ऊँची है कमला वाकई बाजी मारकर बहुत आगे निकल गई...."[४] कमला तवायफ होने के बाद भी वासना को स्थान नही दिया है। वह दिवाकर से बहुत प्यार करती है उसके प्रेम में सात्विकता का समावेश है।

---

१. सारिका - १ जून १९८८ / पृ. २८

२. सत्रह आंचलिक कहानियाँ - (एक प्यास पहेली) राजेन्द्र अवस्थी सं. राजेन्द्र अवस्थी / पृ. ११०

३. वही -/ पृ. ११२अनामिका प्रकाशन दिल्ली सं. १९९३

विशेष - इनकी कहानियाँ कादम्बिनी और साप्ताहिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित हो चुकी है।

४. प्रतिनिधि हिन्दी कहानियाँ - १९८८ सं. हेतु भारद्वाज / पृ. १०८

कहानीकारों ने कहानियों में प्रायः दो प्रकार के नारी पात्रों की सर्जना की है। एक ओर कल्पना से निसृत सभी आदर्श गुणों से समन्वित नारी चरित्र है तो दूसरी ओर समस्त मानवीय दुर्बलताओं से मुक्त नारी चरित्र है। प्रायः इन नारी चरित्रों की कल्पना व सर्जना इसी हेतु हुयी है जिनसे आदर्श नारी चरित्र को अधिक महत्व व निखार मिल सके।

प्रथम विभाजन मनोवृत्तियों के आधार पर है। मानसिक वृत्तियां व्यक्ति को दो विभिन्न पथों पर अग्रसर करती है। सद्वृत्तियों पर चलने वाले व्यक्ति सदगुण सम्पन्न होते है और ये अन्ततोगत्वा सच्चे अर्थों में सुख के भागी होते हैं। असद्वृत्तियों में लीन व्यक्ति जीवन की अनेक परिस्थितियों और विष्मताओं का सामना करते हैं और सदैव मिथ्या प्रलोभनों में फसंकर दुःख के भागी होते हैं। मनोवृत्तियों के आधार पर ही कुछ नारियों में अधिकारवृत्ति व कुछ में विनीत् वृत्ति पायी जाती है। किसी की किसी में अहंभाव भी उतना तीव्र हो जाता है कि वे अपने के समक्ष सभी को तुच्छ समझती हैं। किसी किसी पात्र के लिये विनम्रता ही उनका सबसे बड़ा शील है।

नारी पात्रों का दूसरा विभाजन व्यक्तित्व के आधार पर है जिनमें अर्न्तमुखी व बहिर्मुखी दो भागों में विभाजित किया गया है। तीसरा विभाजन मनोग्रंथियो के आधार पर है जिसमें साधारण और असाधारण दो वर्ग है। कुछ नारी पात्र सामान्य ढ़ंग से अपना जीवन परिचालित करते है। किन्तु कुछ नारियों की मानसिक ग्रंथियां इतना अधिक प्रभावित करती है कि उनके समस्त व्यवहार असमान्य दृष्टिगत होते हैं। चौथा विभाजन इच्छा शक्ति के आधार पर है कुछ नारी पात्रों में इच्छा शक्ति की दृढ़ता और कुछ में इच्छा शक्ति की दुर्बलता पायी जाती है।

पांचवां विभाजन मानवीय गुणों के आधार पर है। कुछ नारी पात्र सद्गुणी और कुछ दुर्गणी हैं।

छठा विभाजन प्रेरणास्त्रोतों के आधार पर किया गया है। यौन भावना या कामेच्छा नारी व पुरुष की मूल प्रेरणा है किन्तु कुछ नारियों में प्रेम की सच्ची अनुभूतियाँ है। फलतः उनका प्रेम त्याग, तपस्या, कर्त्तव्य, ममता आदि की भावनाओं से आपूर्तित है। इसके विपरीत कुछ नारियों का प्रेम वासना युक्त है जिनका लक्ष्य शरीर की भूख मिटा लेना होता है। ऐसी नारियाँ जिस किसी भी पुरुष की ओर आकर्षित होकर अपनी लैंगिक भावनाओं को तृप्त करती रही है।

इस प्रकार उपर्युक्त वर्गीकरण पात्रों में दृष्टिगत होने वाले विशेष गुण व विशेष व्यवहार के आधार बनाकर किये गये हैं जो गुणात्मक न होकर मात्रात्मक अथवा परिमाणात्मक हैं। वास्तव में यह वर्गीकरण व्यवहार से, स्वभाव से, ओत प्रोत है।

पंचम अध्याय

नवें दशक के हिन्दी कहानीकारों की कहानी में नारी के प्रति अभिव्यक्त्व वैचारिक वैविध्य में नारी की विशिष्ट परिणतियाँ

१- दार्शनिक -	१. आत्मोत्सर्गी
२- नियतिवादी -	१. कुण्ठाग्रस्त आत्मपीड़क
३- आदर्शवादी -	१. समर्पिता २. करुणायुक्त
४- यथार्थवादी -	१. आवेगशील २. द्वन्द्वपरक ३. खण्डित व्यक्तित्व ४. परपीड़क

नवें दशक की हिन्दी कहानी का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि विभिन्न विचारधाराओं में नारी ने किन-किन स्वरूपों को गृहण कर रखा है। इस वैचारिक वैविध्य में मनोविज्ञान का समावेश है। कथाकारों के मानस पटल पर मनोविज्ञान एवं विचारधाराओं का अनूठा संगम ये नारी पात्रों की विशिष्ट परिणतियाँ है।

वर्तमान जीवन अनेक प्रकार की विसंगतियों और विषमताओं से आक्रांत है, जिनके प्रति समाज का कोई भी प्रबुद्ध सदस्य उदासीन नहीं रह सकता। एक कथाकार समाज के प्रबुद्ध वर्ग का सबसे अधिक संवेदनशील प्राणी है। अतः वह आज उतना ही अधिक व्यग्र है। नवें दशक की कहानी में एक ओर सत्तापद लोलुप, अर्थपिपासु, स्वार्थी व भ्रष्ट तथाकथित समाज उन्नायकों का चरित्र का निदर्शन रहता है। दूसरी ओर नारकीय जीवन को तिल-तिल जीते विपन्न वर्ग के पतित, असामाजिक, आपराधिक हिंसक और समस्त कुत्सित वृत्तियों से युक्त चरित्र का चित्रण भी मिलता है। परिवेश मे अव्यवस्था और असुरक्षा, आतंक और अनैतिकता के विष ने वर्तमान जीवन को विषाक्त बना दिया है। प्रत्येक क्षेत्र के दुस्सह भार को ढ़ोना आम आदमी की नियति है।

राजनैतिक सामाजिक. आर्थिक और सांस्कृतिक ज़ीवन में मूल्यहीनता और संस्कारहीनता गहरी जड़े जमा चुकी है। विसंगति विडम्बना और आडम्बर ने समाज को आंतकित रूप से कमजोर कर दिया है। संबंधो का व्यवसायीकरण हो गया है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने मानवमूल्यों को विधटित कर दिया है। प्रश्नों के आवर्तो में घिरी फंसी नारी की अस्मिता आज भी चुनौती का विषय है। कथाकारों नेअपनी अनुभवजन्य धारदारदृष्टि से परीक्षण करके सत्य को अनावरित किया है। इस दशक की हिन्दी कहानियों में नारी के प्रति कथाकारों की दृष्टि में विचारों में विभिन्नता दिखाई पड़ती है। कथाकारों की दृष्टि नारी के दार्शनिक, नैतिकतावादी, समाजवादी, व्यवहारवादी,आदर्शवादी, यथार्थवादी विचारधारओं पर टिकी है। नारी के प्रति अभिव्यक्त वैचारिक वैविध्य में कथाकारों ने इन विचारधाराओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इस दशक की कहानियों के नारी पात्र एकं वर्फ ढ़की झील के समान है। नवें दशक में कहानियाँ आंचलिक, सामाजिक पारिवारिक, राजनैतिक विविध मुखौटों को धारण किये हूये है।

कथाकारो की नारी विषयक दार्शनिक दृष्टि-

दर्शन किसे कहते हैं? इसका विषय क्षेत्र कहां से कहां तक है? यह एक विवादास्पद प्रश्न है। "यदि दर्शन शब्द का अर्थ सत्य साक्षात्कार किया जाय तो ज्ञान विज्ञान के सभी विभाग दर्शन की शाखा प्रशाखा बन जाते हैं। धर्म साहित्य कला, शिल्प, इतिहास, अर्थशास्त्र, रसायन एवं भौतिकशास्त्र ये सभी विषय दर्शन को समृद्ध और परिपुष्ट करते दीख पड़ते हैं।"[१]

"दर्शन एक व्यवस्थित विचार द्वारा विश्व और मनुष्य की प्रकृति के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का निरन्तर प्रयत्न है।"[२] हम जिस संसार में निवास करते हैं और उसके साथ हमारा जो संबंध है- यह धारणा ही दर्शन है। इस दृष्टि से दर्शन मनुष्य की मूल उत्पत्ति और उसकी समस्याओं की प्रकृत्ति और ब्रह्माण्ड की ज्ञा न, विचार, जीवन कला तथा धर्म की समस्याओं की चिन्तन और अस्तित्व के बीच मूलभूत संबंध की समस्याओं तथा पदार्थ और मन के बीच संबंध की व्याख्या करता है।

प्राचीन दार्शनिकों ने दर्शन के इस विस्तृत स्वरूप को ग्रहण न करके मानव अस्तित्व को दो भागों में मानसिक और भौतिक में विभाजित कर मानसिक स्वरुप को ही दर्शन में ग्राह्य माना है। उन्होने सूक्ष्म मानसिकता को इतना अत्यधिक महत्व दिया कि स्थूल शारीरिकता और भौतिकता अश्पृश्य बन गयी। साथ ही मानसिकता को सत् और भौतिकता को असत् मान लिया गया। इस प्रकार दर्शन मानसिक बौद्धिक अध्ययन तक सामित हो गया। प्रायः सभी दार्शनिकों ने अध्ययन के लिये सृष्टि, ईश्वर, आत्मा, मन, बुद्धि, कर्म, पुर्नजन्म आदि विषयों का चयन किया।

आधुनिक मनीषियों ने प्राचीन दार्शनिकों की इस मान्यता को परिवर्तित करने का प्रयास किया। उन्होंने दार्शनिक मतों का वर्गीकरण आस्तिक नास्तिक अथवा आध्यात्मिक भौतिक आधार के स्थान पर नितान्त सापेक्ष आधार पर करना उचित समझा। सैद्धांतिक स्तर पर यह सत्य है कि कर्म बंधन का और जगत दुख का मूल है किंतु इसके विपरीत इस तथ्य को भी कि कर्म मुक्ति का साधन है और जगत चरम सुख का कारण है। इस बात को भी निराधार नही माना जा सकता। आधुनिक विचारकों ने अध्यात्मवाद एवं भौतिकवाद को परस्पर पूरक रूप में देखने तथा सत्य एवं स्थूल व्यवहार दोनों को समन रूप से साधने का प्रयास किया है।

नवें दशक के कथाकार समन्वय वादी हैं। इन कथाकारो की विचारणा परस्पर मान्यताओं से टकराती नहीं हैं अपितु उन्हें अपने में सहेजती चलती है। कहानीकारों ने सृजनात्मक स्तर पर अहं चिन्तन पर यथेष्ट बल दिया है। उनकी विचारधारामेंविविध दार्शनिक अवधारणाएं दृष्टिगत है, पर उन सब में अहंवाद का विशिष्ट स्थान है।

---

१. वीरेन्द्र कुमार गुप्त : जैनेन्द्र व्यक्तित्व और कृतित्व सं. मिलिन्द सत्य प्रकाश पृष्ठ 15

१. शिक्षा के सामान्य सिद्धांत - पाठक एवं त्यागी/ पृ. २४८ विनोद पुस्तक मंदिर

अहं का लौकिक एवं नकारात्मक भाव अहंकार शब्द में निहित है। जिसका अर्थ गर्व या घमण्ड लिया जाता है। पर कहानीकारों का अहंवाद किसी मूल-अहंवादी सिद्वांत की परिणति न होकर उनके स्वचिन्तन की विशिष्ट धारणा है। ये अहं की निजता और विश्वास के बीच का द्वार मान कर उसे जड़ और चेतना में देखते हैं और सर्वत्र उसकी व्याप्ति मानते हैं। अहं व्यक्तिगत ही नहीं होता यह समष्टिगत भी होता है। व्यक्ति हो या समूह जब तक उसका अहं शेष के प्रति समर्पणात्मक नहीं होगा, तब तक उससे कल्याण की संभावना नहीं। जब अहं शेष के प्रति समर्पणात्मक हो जाता है तब व्यक्तिवाद और समूहवाद दोनों उपयोगी बन जाते हैं। ऐसा न करने पर व्यक्ति समाज के हाथों में खिलौना बन कर रह जाता है। "अंह का कल्याणमय परिष्कार असम्भव होते हुये भी बुद्धि के समक्ष निरन्तर उपस्थित रहकर मानवता के बुद्धित्व का कर्त्तव्य बनता है।"[१] अहं अंश और शेष के मध्य एक अनिवार्य द्वार है ब्रह्म स्वयं को अंश में अभिव्यक्त करता है। स्वयं को अंश मानने की भावना अहं में जितनी विकसित और दृढ़ होती है उतना ही अहं विस्तृत बन जाता है। अहं की कसौटी परस्परता है।"[२] कहानियों में मानव-मानव (स्त्री-पुरुष) की परस्परता पर विचार प्रकट किये गये हैं।

व्यक्ति-व्यक्ति के सम्पर्क, प्रेम और आकर्षण में वह नैतिकता के आधार पर मानसिकता को उदात्त बनाना चाहते हैं। मानव-मानव की परस्परता का सबसे महत्वपूर्ण अंग नर-नारी संयोग है। इस दशक के कथाकार भी साठोत्तरी कहानीकारों की भाँति सैक्स को उपेक्षणीय अथवा घृण्य नहीं मानते। सैक्स को वे मूलभूत शक्ति मानते हैं जो व्यक्ति नारी अहं का परिष्कार कर उसके व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होती हैं। नरनारी के बीच किसी वायव्य आदर्श को नही शुद्ध प्रेम को वर्तमान रुप में कथाकार देखना चाहते हैं। इन सभी के द्वारा कहानियों में की गयी सैक्स की व्याख्या नर नारी के शरीर संभोग को न तिरस्कृत करती है न ही उसमें बंधती है। वह मानव की सम्भावनाओं को विस्तृत करती और उसे विराट की ओर मोड़ती है।

इस दशक की कहानियों की नारियाँ अहंवाद से प्रेरित होकर अपने नारीत्व को समग्रता का भोग प्राप्त करने के लिये आत्मिक वृत्ति से निर्मित तथा स्वच्छन्द मनोवृत्ति से संचालित होती हैं। नारी की भोगाकांक्षा की सम्पूर्ति में उसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की गयी हैं। ये नारियां परम्पराओं को अस्वीकार करती हुयी नारी स्वातन्त्र्य की चेतना से परिपुष्ट हो नवीन मूल्यों की आग्रहशीलता लिये हुये हैं। इन नारी पात्रों का विद्रोह वैयक्तिक स्तर पर ही है। परिवार या पति ही इससे प्रभावित होता है। समाज अछूता रहता है। पर कहीं-कहीं विद्रोह समाजिक भी है।

नारियाँ अपनी अन्तर्जागतिक, वृत्तियों, विकृतियों, कामपिपासाओं के कारण विद्रोह पर उतर आती हैं पर समाज, परिस्थितियों तथा संस्कृति के साथ उनका कोई औचित्य सिद्ध नहीं हो पाता। इस प्रकार विद्रोह का अंत उनकी अहंता, वैयक्तिक कामनाओं, अभिशिप्तियों में ही उलझ कर रह जाता है। अन्ततः वे अपने देह दान में ही काम वासना के उद्दाम वेग को शांत कर उत्सर्ग की प्रक्रिया में निमग्न हो जाती है। इस दशक में नारी की दार्शनिक परिणति आत्मोत्सर्गी है।

---

१. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी : डॉ. सावित्री साहित्य प्रकाशन दिल्ली पृ. ८५

२. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी : डॉ. सावित्री साहित्य प्रकाशन दिल्ली पृ. ८५

आत्मोत्सर्गी - आत्म या निजत्व का उत्सर्ग ही शाब्दिक अर्थ में आत्मोत्सर्ग है। भारतीय दर्शन में भी अपनी अहंता को समाप्त कर 'पर' के लिये समग्रतः अर्पित होने की प्रक्रिया ही आत्मोत्सर्ग है क्योकि त्याग से मानव जीवन में क्षमता और स्वस्थता की ही वृद्धि होती है वस्तुतः जो आनंद 'दान' में है वह 'भोग' में नहीं। त्याग में एक विशेष आनन्द का भाव विद्यमान होता है। इतिहास साक्षी है कि जिन व्यक्तियों ने त्याग और बलिदान दिये हैं जिन्होंने स्वेच्छा से अपने आप को उत्सर्ग और न्यौछावर कर दिया है उनके समक्ष आज भी हमारा मस्तक श्रद्धा से झुक जाता है। इसके विपरीत जिन्होंने भोगा और पाया है उनके प्रति हमारे मन में श्रद्धा के भाव आ ही नही सकते।" एक विरोधाभास जीवन में दिखाई देगा। वह यह है कि रखने से नही, देने से जीवन में सार्थकता आती है। उपास्य के आधार पर कैसे जीवन में उसी समर्पण की सुविधा हो आती है। उपास्य को हम निराकारता के क्षेत्र से मानो उतारकर अपने पास और प्रत्यक्ष लेने की चेष्टा किया करते हैं। परमेश्वर उस प्रक्रिया में अनायास हमारी प्रिय से प्रिय मूर्ति का रुप ग्रहण कर लेता है।"[१] जब हमारे स्नेह की प्रगाढ़ता किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति इतनी अधिक बढ़ जाती है कि हम उसी को अपना उपास्य समझने लगते हैं तो उसके प्रति उत्सर्ग की भावना सहज और स्वाभाविक प्रतीत होती है। आत्मोत्सर्ग द्वारा जीवन की चरम उपलब्धि सुगम हो जाती है।

कहानियों में नारी पात्रों में आत्मोत्सर्ग की भावना विस्तृत रुप में मिलती है। अधिकांशतः उनका यह उत्सर्ग अपने प्रेमी पति के प्रति है। स्वेच्छया अपने आप को प्रेमी के लिय न्यौछावर कर देती है और इसी में जीवन की सार्थकता पाती हैं। यहाँ तक कि वे शारीरिक रुप में देहदान को अनुचित नही समझती। इस दशक में नारियाँ विशेष रुप से देहदान करती, कामवासना के उद्दाम वेग को पुरुष संसर्ग से शाँत करती एवं अपने व परिवार के सुख के लिये गैर पुरुषो को शरीर बेचती नारियों का चित्रण हिन्दी कहानियों में 'उत्सर्ग' के रुप में चित्रित है। उन्ही नायिकाओं को हम आत्मोत्सर्गी कह सकते हैं।

'अनिन्दिता तुम्हारे लिये ' कहानी में रुपकुमार और अनिन्दिता की बातें हो रहीं है- "प्रागाढ़ आलिंगन और स्नेहसिक्त स्पर्श के बीच अनिन्दिता का स्वर उबरता है" सुनो प्रियतम तुम चाहो तो विवाह मत करों.... चाहो तो मुझसे हजार मील दूर रहो पर जहां भी रहो मेरे बन कर रहो .... हे अनुपम, हे मनुष्य श्रेष्ठ तुम मुझसे चिरन्तन प्रेम करो... मैं जब उदास होऊं.... अत्यंत महान सूर्योदय और कोमल सूर्यास्त देखकर अकारण मेरी आँखे जब भर-भर आएँ तो तुम मेरे पास आओं मुझे ढेर सारा प्यार करों जन्म जन्मातंर तक xxxxxxxxxxxxxxxxxxxत तुम्हें मैं खोना नहीं चाहती ..... कतई नहीं xxxxxxxxxxxxx मुझे स्वीकार करो......... मुझे स्वीकार करो।"[२]

---

१. जैनेन्द्रः समय समस्या और सिद्धांत - पृ. ४१२-४१३

(जैनेन्द्र के उपन्यासो में नारी : डॉ. सावित्री पृ. २००)

१ अनन्दिता तुम्हारे लिये (उसपार गोधूलि) आशीष सिन्हा आर्य प्रकाशन मण्डल प्र. सं. १९९१, पृ. १८५

इन्दुबाली की कहानी 'शिव-नेत्र' में नेहा एक ऐसी त्याग की प्रतिमूर्ति दिखाई पड़ती है जो कि अपनी छोटी कुंवारी ननद की इज्जत बचाने के लिये उसे अपने पति (ननद का भाई) के साथ घर भेज देती है और गुण्डों से कहती है कि तुम्हें लड़की चाहिये मैं तुम्हारे साथ चलने को तैयार हूँ और ननद को और अपने पति को घर जाने के लिये कहती है वे दोनों भाई बहिन सुरक्षित घर चले जाते हैं। "गुण्डों का रुप भयंकर हो चला था नेहा ने स्थिति को देखते हुये कहा- "तुम कुमुद को लेकर घर जाओ, इनको मुझे ले जाने दो।"[१] उसके बाद जब उन गुण्डों की इच्छा पूरी हो जाती है न जाने क्या-क्या होता है उसके साथ। घर वापिस आकर अपने आत्मोत्सर्ग के बाद घर में कोई स्थान नही, घर से सास ससुर से इतनी भयंकर मानसिक यातना मिलती है जिसकी कल्पना भी असंभव। वह गर्भवती थी और परिवार की इज्जत, कुमुद की इज्जत व पति की लाज बचाती हुयी, केस न करने की गुहार लगाती हुयी घर से अनजाने में कहीं गुम हो जाती है। इस कहानी में 'दान' है 'भोग नही। त्याग है 'प्रेम' नही 'साहस' है, धैर्य नही और नेहा का 'उत्सर्ग', आत्मोत्सर्ग 'सर्वोत्सर्ग' सभी कुछ एक नारी में दृष्टव्य है। नारी ने नारी को बचाया पर 'सास' ने इस उत्सर्ग में कुछ भी न दिया। धन्य है नेहा जैसी नारी का उत्सर्ग। नवें दशक में कहीं-कहीं ऐसे उत्सर्ग भी दिखाई दिये हैं जो एक त्याग, साहस, धैर्य, दान की मूर्तियों में है। नेहा को 'शिवनेत्र' को हम विस्मृत नही कर सकते, आत्मोत्सर्गी की श्रृंखला में। यह उत्सर्ग यथार्थ के साथ है यह समाज का कटु यथार्थ भी है लेकिन 'आत्मोत्सर्गी' नारी की यह परिणति दर्शनिक ही है। भारतीय दर्शन में 'पर' के लिये अर्पित होने की प्रक्रिया ही 'आत्मोत्सर्ग' कहलाती है। इन्दुबाली की 'नेहा' तो प्रसाद की नायिकाओं का बस समाज के साथ बदला हुआ रुप है।

निर्यातवादी - इस दशक के कथाकारों ने मनुष्य की लाचारी का जो खाका खीचा है वह भवितव्य के प्रति उनके विश्वास और उनकी नियतिवादी धारणाओं पर आधारित है। वे मानते हैं कि मनुष्य जहाँ भी है बहुत बेचारा है। उसके लिये विद्रोह व्यर्थ और जीत असम्भव है। कर्म और फल के बीच इनको कोई तारतम्य नहीं दिखाई देता है। इन कथाकारों की यह मान्यता नायिकाओं की सामाजिक क्रांतिकारिता को कुण्ठित कर देती है। अपने समाज की संकीर्ण रीति नीति से असंतुष्ट होते हुये भी उसके प्रति विद्रोह नही करती। विद्रोह की सामर्थ्य रखते हुये भी वे ऐसा नही कर पाती क्योंकि अपने स्त्रष्टा की मान्यताओं के अनुरुप ढलकर वे सोचने लगती है कि विद्रोह और क्रांति में गति प्रतिक्रियात्मक है और उससे समाज का हित नही हो सकता। समाज की रीति नीति को सीधे भंग करने से उसे धक्का लगेगा। उनमें उनके स्त्रष्टा के विश्वास ने घर कर लिया है कि समाज में विकास ताप से नही तप से होगा, कष्ट देने से नहीं, स्वेच्छा से कष्ट सह लेने से होगा। इस मान्यता में बंधकर उनके स्वतन्त्र विकास के सपने धरे रह जाते हैं और वे अकर्मण्यता की सीमा तक पहुँचकर सामाजिक संघर्ष से बचती है। उसके रूढ़िग्रस्त रीतिरिवाजों और जड़ विधिनिषेधों का विरोध करने से कतरा जाती है। बाहर के संघर्ष और विद्रोह से मुँह मोड़ वे अर्न्तमुखी होकर आत्मपीड़न को गले लगा लेती है। यह उनके जीवन की विडम्बना ही तो है कि सामर्थ्य होते हुये भी समाज की चुनौती की स्वीकार करके तेजस्वी नायिका के रुप में नही उभर पाती और सामाजिक अन्याय से संतप्त नारी के मुक्ति संग्राम को कुण्ठित करती हुयी प्रतीत होती है। आत्मपीड़न एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने 'स्व' में निष्ठावान रहते हुये अपने से बलवती शक्तियों का सामना करता है। वास्तव में यह आत्म व्यथा और पीड़ा हो सकती है जो इस समस्त ज्ञानाडम्बर के आतंक से अभिभूत न हो और नीचे प्रेम की जीवंतता की कमी को पकड़ और पहचान ले। तब अकर्म के ही रास्ते से सर्वोदयी अध्यात्म एक प्रखर और प्रचण्ड कर्म की उज्जवलता में उतिष्ठ होकर जगमगा आयेगा और मालूम होगा कि उसमें मौलिक प्रकाश कोई दूसरा नहीं।"[२]

---

१ शिव नेत्र '(अंधेरे की लहर) - इन्दुबाली प्र. सं. १९८५ इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली पृ. ५९

१. जैनेन्द्र : समय 'समस्या' और सिद्धांत पृ. १०१

स्त्री आत्म व्यथा और त्याग द्वारा विगड़े को सुधार सकती है। सैक्स की समस्या का हल मुक्त भोग में संभव नहीं है। पुरुष के समान अधिकारों के भोग करने में भी नही है केवल स्त्री ही आत्मपीड़ा द्वारा पथभ्रष्ट पुरुष को सही पथ पर लाकर इस समस्या का समाधान खोज सकती है। नारी जीवन के ये तीन पहलू सैक्स, प्रेम और विवाह पुरुषों की अनैतिकता को नैतिकता में बदलने का सफल उपचार है इसी आत्म परिताप का सहारा लेकर नारी पात्र दूसरे के भीतर करुणा जगाने तथा अपने उद्देश्य की सिद्धि में सफल होते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्त्रियाँ अपने को कष्ट पहुँचाकर आत्मीयों को सुख पहुँचाने में सफल होती है। सामाजिक दृष्टि से वे स्वयं तपकर समाज को ताप पहुँचाती हैं और जाग्रति प्रदान करती हैं।

इस प्रकार स्त्रियाँ अपनी आंकाक्षाओं, विवाहपूर्व देखें सपनों की अभिपूर्ति के अभाव में कुण्ठित हो जाती है। इस अवतरण में नारी की नियतिवादी विचारधारा प्रस्तुत है।

कमला दत्त की कहानी 'कीड़ा रेमश का' में नायिका हर तरह की बातें अपने मित्र जो पूर्णतः अजनबी है उनसे करती है और वार्तालाप में यह भूल जाती है कि मित्र जी एक पुरुष भी हैं और वे स्वयं एक नारी। पुरुष की नियति वे जानती है समझती हैं और उसके बाद कहानी के अंत में नियतिवादी दृष्टिकोण नायिका के अपने शब्दों में-

" यह क्या है, जो कोई निर्णय भी नहीं लेने देता? आधे-आधे रास्ते से लौट आती है। बचपन में एक बार कुतुबमीनार गयी थी। आधी सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद थककर लौट आई थी। सोचा था ऊपर पहुँचकर भी क्या होगा? क्षणभर का सुख। ××××× आधे-आधे रास्ते पहुँचकर लौटती रहेगी। यही उसकी नियति है। क्या वह आजन्म संयमव्रती बाल विधवाओं की तरह अपने को सालती ही रहेगी! नही वह जॉन हैनकॉक भवन की खिड़कियों की तरह रुक-रुक कर टूटेगी। नहीं वह रेशम के उस कीड़े की तरह है, जिसके लिये अण्डे से लारवा और लारवा से प्यूपा तक पहुँचने के लिये उन्होंने सुन्दर रंगों वाला रेशमी कवच पहनना बहुत जरुरी था। पर वयस्क होने के लिये, उस कवच को तोड़ना जरुरी था। लेकिन यह ऐसा अभिशप्त कीड़ा है, जो सुनहरे रंगों के जाल में फँस गया है। वह कभी उसे तोड़ नहीं सकेगा, कभी वयस्क नहीं होगा- बस धीरे-धीरे सूखकर खत्म हो जायेगा।

कुण्ठाग्रस्त- व्यक्ति की प्रबल आकांक्षाओं की सिद्धांत के मार्ग में कभी-कभी कुछ ऐसी बाधाएँ आ जाती हैं जिनका निराकरण करना उसकी शक्ति के बाहर होता है इसके परिणाम स्वरुप मानव मन की जो स्थिति होती है उसे हम कुष्ठा की स्थिति कह सकते हैं। पद्मा अग्रवाल के शब्दों में- "अवरोध के कारण किसी भी तीव्र प्रेरक इच्छा पूर्ति अथवा ध्येय की प्राप्ति न होने पर मन की एक विचित्र क्षुब्धावस्था है।"[२] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य कभी जिन बातों के विरुद्ध जूझता है और पराजित होता है वहाँ सामजस्य स्थापित करने या समझौतावादी प्रवृत्ति अपनाने की अपेक्षा वह अपने उद्दाम अहं के कारण अपनी पराजित स्थिति में भी अंदर ही अंदर क्षुब्ध होता हुआ उसी में विलय हो जाता है और वह उबरने के प्रयास का त्याग कर पीड़ा

---

१. हिन्दी लेखिकाओं की श्रेष्ठ कहानियाँ - सम्पादक योगेन्द्र कुमारलल्ला, श्री कृष्ण 'कीड़ा रेशम का' कमला दत्त प्रथम संस्करण १९८४ पृ. १५/ राष्ट्रभाषा प्रकाशन दिल्ली, ये कहानियाँ विभिन्न पत्रिकाओं में नवें दशक में प्रकाशित हो चुकी है।

२. पदमा अग्रवाल मानविकी परिभाषिक कोष पृ. १२१

के दलदल में गहरे उतरता चला जाता है। व्यक्ति दूसरे की सहानुभूति प्राप्त करने को नही बढ़ता, वरन् दूसरे को भी पीड़ित करने के लिये इसका आह्वान है। "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह साधना न होकर कुण्ठा है। हमारे सामाजिक मूल्य तथा व्यक्तिगत दोष दोंनों ही हमारी आकांक्षाओं को कुण्ठित करते हैं दुर्बलता, कुरुपता, कुशलता में कमी या निम्न स्तर की बुद्धि व्यक्ति की सफलता के मार्ग में रोड़े बन सकती है इस प्रकार अवरोध वाह्य अवरोधों की अपेक्षा कही अधिक स्थायी होते हैं।" [१] मनुष्य की काम प्रवृत्ति दमित होकर उसके अचेतन में कुण्ठा का रुप धारण कर लेती है। अचेतन में छिपी ये कुण्ठाएं उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं।

पैतालीस वर्षीय कुंवारी पदमावती की जीवन शैली और उसके परिवार की गरीबी ने उसे कुण्ठित बना दिया है-

"अन्दर जो कुण्ठित कौमार्य को और ज्यादा भेदने वाले दीपक जल रहे हैं, इस प्रौढ़ावस्था में सिर्फ परलोक में तारण के लिये दुल्हन बनने की विवशता के उनकी झाई को कही निकास ही नहीं मिल पा रहा है बाहर को। झाँई को निकास नहीं मिल पा रहा, तो लगता है आत्मा की अंतरंग परतों में काजल बैठा जा रहा है। ---- हे राम, जिन सुहागिनों की गोद में छौने आते रहते हैं वो कैसी छोटी छोटी डिबिया में काजल समेटकर रखे रहती हैं? [२]

नारी का सबसे बड़ा दर्द है उसके वजूद को खिलौना समझना। उसके पास आकर पनाह ली, ठंडक ली और फिर उड़ गये। वह सबको प्यास के नाम पर शीतल जल बांटती रही मानो वह कोई बावली हो।"१ नासिरा शर्मा की कहानी 'बावली' नारी दर्द की इसी कथा को मार्मिक ढंग से कहती हैं मेरे वजूद की दीवारों में बेशुमार ताक बने हुये थे जिनमें विभिन्न कबूतरों ने बसेरा कर रखा था। ताकों के बड़े-बड़े दर्रो में गर्मी से तपती दोपहर से थके परिन्दे मेरे ठंडे वजूद में आकर पनाह लेते थे। कितने -------? बेशुमार आये। अपना दुख मेरे वजूद की बावली में डालकर मेरे दिल के दालानों में बैठने लगे और मैं सब कुछ भूलकर उनमें अपने को बांटती रही। xxxxx में तो उनमें प्यास के रिश्ते के नाम पर बांटती रही। मैं सुबह का धागा जोड़ बैठती और पीने वाला मुझे पानी से भरी बावली से अधिक कुछ नहीं समझता था। जहाँ आराम किया जा सकता था, प्यास बुझायी जा सकती थी xxx मगर आखिरी साँस तक साथ नही दिया जा सकता था।"[३] इस कहानी में नायिका कुण्ठित होती दिख रही है।

सुनील सिंह की कहानी 'सुबह-सुबह' में नायिका आर्थिक परेशानी में होने के कारण कॉलगर्ल बन जाती है और छोटी बहिन को इस परिवेश से बचाने के लिये दूर होस्टल में भेज देती है तभी वह इस युवक के सम्पर्क में आई xxx वह चार अंकों की तनख्वाह पाने वाला अविवाहित अफसर था। एक दिन वह उसकी xxx होने पहुँच गयी [४] इस कहानी में नायिका कुण्ठा और घुटन में जी रही हैं वह जो खुद कर रही है दुःख पा रही है वही करने उसकी बहिन पहुँच जाती है।

---

१. नार्मल एल. मन : मनोविज्ञान पृ. १७६

२. सुहागिनी - शैलेश मटियानी की प्रति. कहानियाँ पृ. सं. १९८७
साहित्य भण्डार इलाहाबाद सं. डॉ. बटरोही

३. नासिराशर्मा : बावली (पत्थरग.लो) पृ. ११ राजकमल प्रकाशन दिल्ली पृ. सं. १९८६

४. सुनील सिंह : सुबह सुबह (जलतरंग) पृ. ६६ संभावना प्रकाश हापुड़ पृ. सं. १९८९

आत्मपीड़क - "आत्मपीड़ा एक ऐसी स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने स्व में निष्ठावान रहते हुये अपने से बलवती शक्तियों का सामना करता है। वास्तव में यह आत्मव्यथा और पीड़ा हो सकती है जो इस समस्त ज्ञानडम्बर के आतंक से अभिभूत न हो और नीचे प्रेम की जीवंतता की कमी को पकड़ और पहचान लें। तब अकर्म के ही रास्ते से सर्वोदयी अध्यात्म एक प्रखर और प्रचण्ड कर्म की उज्जवलता में उतिष्ठ होकर जगमगा आयेगा और मालूम होगा कि उसमें मौलिक प्रकाश कोई दूसरा नही।"१

स्त्री आत्मपीड़ा द्वारा परिवार में वृहत् परिवर्तन ला सकती है। स्वयं कष्ट तो बहुत उठाती है उसके बाद परिवार में एक उदाहरण बनकर ससम्मान रहने का अवसर भी प्राप्त करती है। मरणोपरान्त भी पति, पुत्र व परिवारी जन उसकी गाथाओं को लम्बे समय तक याद करते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अपने को कष्ट पहुँचाकर अपनें आत्मीयों के अन्याय को ललकारती है। अपनी आत्मपीड़ा से कठोर से कठोर व्यक्ति को भी स्त्री करुणाद्रित कर देती है। आत्मपीड़ावस्था में भी पति को कभी निराश नही करती, उसके आकर्षण का सम्मान कर नारी जन्य भोग लाभ करती हुयी उसके अन्तस में विराजराम होने का प्रयास करती है। अपनी आत्मपीड़ा से कभी पति या प्रेमी को अवगत नही कराती। वह स्वयं अपने कृत्यों से लांछित अनुभव कर साथ रहकर भी एकांगी बनकर आत्मपीड़ा भोगने को हर समय तत्पर रहती है। मध्यवर्गीय परिवार में वधू का मान उसके अपने गुणों के कारण नहीं अपितु उसके आगमन के पश्चात् हुयी घटनाओं पर टिका है। आज भी अगर वधू के आने के बाद ससुराल में समृद्धि हो तो लक्ष्मी अन्यथा हर दुर्घटना या हानि के लिये बस वही निरीह प्राणी उत्तरदायी ठहराया जायेगा। पत्नी का सारा सुख उधार का है जो पल भर में हवा हो सकता है। "उमा अपनी सुन्दरता के कारण समृद्ध परिवार की वधू बन जाती है जहाँ समृद्धि होने पर xxx सबका प्यार मिलता है। परन्तु एक बार मायके आने पर पति को पत्नी के चरित्र पर सन्देह करने का एक कारण मिल जाता है। जब उसका पूर्व प्रेमी पड़ौसी उसे कुछ भेंट करने जाता है। बस उस बार वह पति परित्यक्ता सी ससुराल आती है। बेटे का रुख देखते ही सास-ससूर ननद के लिये भी वह अब कुल्टा है। उसकी नियति दासी से भी निकृष्ट हो जाती है क्योंकि उसे अपने कुल की मर्यादा के लिये वही रहना भी है, चाहे पति उसे छोड़ नया विवाह रचाने का बहाना ढूंढ ही लेता है।"१ नियतिवादी धारणा में नारी का रुप हमेशा दयनीय हो जाता है। कारण है कि नियति ही ऐसी समाज की है इससे नारी कुण्ठित और आत्मपीड़क हो जाती है।

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की 'अब वह नही सोयेगी' कहानी में गीतिमा अपने पति द्वारा प्रताड़ित फिर पति द्वारा शोषित होने के बाद जब सेकेण्ड ग्रेड टीचर हो जाती है तब पति से कहती है -

"मैं जो अत्याचार और शोषण झेल रही थी, उससे मुझे बाहर निकलना ही था। मानसिक और शारीरिक उत्पीड़न को हद से ज्यादा झेला है मैंने। ममन्तिक वेदना के क्षणों को मैंने सदियों की तरह लंबे होते देखा है पूरे इक्कीस वर्ष के बाद जागी हूँ।"२

---

१. उधार का सुख कहानी - चन्द्रकिरण सौनरेक्सा

२ 'अब वह नही सोयेगी (आदिपर्व तथा अन्य प्रति कहा.) यादवेन्द्र शर्माचन्द्र

इस कहानी में बड़ी भाभी- सम्पूर्ण जीवन आत्मपीड़न में जीती है। निवेदिता बुढ़लाकोटी की कहानी 'टुकड़ों' में बंटी धूप की मूक नायिका एक प्रोफेसर की खूबसूरत पन्द्रह वर्षीय कोमल कली जैसी बेटी है। मां के निधन के कारण पिता अपने प्रिय शिष्य नारायण के साथ बेटी का व्याह कर देते हैं। नारायण छब्बीस वर्षीय खूबसूरत नौजवान है पर अपने ही घर में पराये। सौतेली माँ के साथ न जाने कैसे रह रहे हैं। घर की लाडली बड़ी भाभी (मूक नायिका) की ननद कह रही है- "मुझे भाभी के वे छोटे-छोटे मेहदी रचे हाथ आज भी याद हैं जिनसे दरवाजे के दोनों ओर अम्मा ने छापे लगवाये थे। भाभी के हाथ भैया के बड़ों हाथों के सामने बिलकुल अस्तित्व हीन लग रहे थे जैसे नियति ने उसी समय लेखा लेख दिया हो कि अब ये जीवन भर अस्तित्वहीन ही रहेंगे।"[१] वास्तव में इस कहानी में सौतेली सास अपनी बच्ची समान बहू के साथ ऐसा खेल खेलती है कि नारायण हमेशा घर के बाहर बैठक में ही रहता है और बेचारी मूक वधू बोलकर भी अनजान, बेनाम सा जीवन बिताती है और सभी के छोटे-छोटे बच्चे खेलते हैं वह उन्हें मात्र देखकर ही तसल्ली कर लेती है कहानी के अंत तक अस्तित्वहीन ही नजर आती है। बड़ी भाभी की लाचारी की जीवंत झाँकी है। भाभी को विद्रोह व्यर्थ और जीत असंभव लग रही है इस जीवन की नियतिवादी विचारधारा ने नायिका को कुण्ठित और आत्मपीड़क बना दिया है।

आदर्शवादी - आदर्शवाद जीवन जगत् में जो कुछ देखता है, उसे उद्देश्य विशेष को पूर्ति के लिये, भावना कल्पनानुसार थोड़ा बहुत परिवर्तित अथवा सजा सँवारकर प्रस्तुत करता है। आदर्शवाद वेशभूषा- केशसज्जा से अलंकृत करता है। वास्तविक रुप में आदर्शवादी को सुधारवादी, उपदेशक, प्रचारक एवं प्रोपेगैडिस्ट कह सकते हैं। ये विचारधार ऐसी है जिसके स्वरुप को हम चौखटे का रुप दे सकते हैं जिसमें उपर्युक्त ये चारों वैठते हैं। ये विचारधार साहित्य में सुन्दरता, प्रभावोत्पादकता और पथ प्रदर्शकता प्रदान करती है। पात्रों का आदर्शीकरण हो जाने से उनमें एक लचीली सजीवता आ जाता है। प्रेमचन्द जी ने लिखा है- "साहित्य में मानव जीवन की केवल नकल करने को बहुत ऊँचा स्थान नही दिया जाता। उसमें आदर्शों की रचना करनी पड़ती है। आदर्शवाद का ध्येय यही है कि वह सुन्दर और पवित्र की रचना करके, मनुष्य में जो कोमल और ऊँची भावनाएं हैं उन्हें पुष्ट करे और जीवन के संस्कारों से मन और हृदय में जो गर्द और मैल जम रहा हो उसे साफ कर दे।"[२]

हिन्दी कहानियों में ऐसे नारी पात्र हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों के सामने सिर नही झुकाते, जिनमें बल है, विश्वास है, प्राणशक्ति है जो वासनाओं के पुंज नही, जिनमें धैर्य है, आत्म उत्सर्ग है, आत्मदमन है, अन्याय के प्रति विद्रोही हैं, कष्टों के बीच अपना रास्ता आप बनाते हैं। उनका चारित्रिक विकास पाठकों में उल्लास, आत्मविश्वास और प्रकाश उत्पन्न करते हैं। उनमें संकल्प की दृढ़ता और विजयनाद जीवन संघर्ष से हमारा पथ प्रदर्शन करता है हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, आत्मीयता व अनुराग का विस्तर करता है। सत्य पर और उसकी विजय पर आस्था रखने वाला आदर्शवादी ही (कथाकार) उदात्त चरित्रों की सृष्टि द्वारा पाठकों को प्रेमोल्लसित ही नहीं परिष्कृत भी करती है। कथाकार इसी महान लक्ष्य द्वारा कहानियों में आदर्श को उचित स्थान देकर नारी पात्रों के सम्मान में बढ़ोत्तरी करता है।

---

१. टुकड़ों में बँटे हुए - निवेदिता बुढलाकोटी (पच्चीस श्रेष्ठ कहानियाँ सं. हिमांशुजोशी किताब घर - नई दिल्ली सं. १९९३/पृ. ८३

(ये कहानियाँ विभिन्न पत्रिकाओं में नवें दशक में प्रकाशित हो चुकी हैं।)

२. साहित्य का उद्देश्य प्रेमचन्द्र पृ. ५८

इस दशक की हिन्दी कहानियों के उन पात्रों को हम आदर्शवादी की संज्ञा दे सकते हैं जो तप त्याग, सत्य अहिंसा एवं भारतीय संस्कृति से ओत प्रोत हैं। यदि हम आदर्शवाद, आदर्शवादी इन दो शब्दों के साथ वास्तविक रुप में न्याय करना चाहते हैं तो तीन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक हैं-

(१) आदर्शवाद में सदैव लेखक का व्यक्तित्व प्रधान रहता है उसमें तटस्थ वैज्ञानिकता का गुण कम होता है।

(२) आदर्शवादी रचनाएं भावात्मक होती है। जीवन की वास्तविक कठिनाइयों को आँखों से ओझल कर असाधारण और अलौकिक पात्रों की सृष्टि आदर्शवाद की एक विशेषता है।

(३) कभी-कभी यह भावातिरेक रचना को अवास्तविक और अविश्वसनीय भी बना देता है। लेखक वास्तविकता को छोड़कर पात्रों को अपनी कल्पना का भी रुप प्रदान करने लगते हैं। अंततः आदर्शवादी वह है जो वाधाओं , संकटों के होते हुये भी शालीन तरीके से काम कर लेता है अपने को विस्मृत नही करता वह आदर्शवादी है।

नारी पात्रों की कुछ परिणतियाँ आदर्शवादी विचारधारा के रुप में इस दशक की कहानियों में दिखाई दी है। आर्दशवादी विचारधारा में नारी समर्पिता व करुणायुक्त स्वरुप को धारण किये हुये है। नारी का समर्पित रुप इन कहानियों में अधिकतर पति के सुख के लिये है या प्रेमी के हितार्थ नारी की प्रतिमूर्ति है करुणा। इस कारण समाज में करुणा युक्त को आदर्शवादी ही कहेंगे क्योंकि समाज में करुणा सर्वत्र व्याप्त हो जाती है और करुणा से कोई भी द्रवित हो सकता है। हमारे मूल आदर्श भी यही हैं कि हम सबसे प्रेम करें जिससे प्रेम की भावना रखेंगे उसके दुःख से भी दुःखी होगें। नारी ऐसी ही वस्तु है। जिसमें आकर्षण है पास बुलाने का, उसके पास जाकर उसकी व्यथा सुनकर प्रत्येक मानव करुणा युक्त होगा यदि वह भारतीय संस्कृति व अपने मूल आदर्शो को जानता होगा। आदर्श के साथ-साथ अब ये परिणतियाँ यथार्थ का भी स्वरुप ग्रहण कर चुकी है।

इस दशक की कहानियों को पढ़ने पर ऐसा लगता है कि हम नायिका के मानस की गहराइयों में उतर रहे हैं। यद्यपि यह मानस यात्रा बड़ी चकरीली और पंथरीली लगती है और कई अंधकार पूर्ण गुफाओं से गुजरना पड़ता है जहाँ पग-पग पर फिसलने का डर बना रहता है फिर भी हम इस आशा से यात्रा के सभी कष्टों को धैर्यपूर्वक सहते चलते हैं कि यात्रा का अंत सुखद व संतोषप्रद होगा। अब नायिकाओं में मांसलता कम व मानसिकता अधिक होती है। आदर्शवाद के समर्थक नवे दशक के कथाकार हैं पर वे यथार्थ को साथ लेकर चले हैं। आदर्श का हाथ थाम कर अंचलिक कथाकार विशेष रुप से चले हैं। पर कहीं-कहीं सामाजिक पारिवारिक राजनैतिक कहानियों में भी आदर्श के दर्शन होते हैं। आदर्शवादी विचारधारा को साथ लेकर नवें दशक की कहानी में नारी समर्पिता व करुणायुक्त दोनों रुपों में दृष्टव्य है। आदर्शवाद में समर्पिता व कुरुणायुक्त नारी की विषिष्ट मनोवैज्ञानिक परिणतियाँ है। आदर्श का मनोविश्लेषण के साथ घनिष्ट संबंध है। क्योंकि आदर्श में जीवन मूल्य समाहित होते हैं और पात्रों के मानसिक क्षितिज पर इन मूल्यों का आदर्शवादी विचारधारा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। आदर्शवादी नारी के चरम उत्थान के पुजारी होते हैं किन्तु फिर भी उसके अन्तस के मनोविकारों का तिरस्कार नहीं करना चाहते इसीलिये रुढ़ चित्रात्मक स्वरुप को वे अस्वीकार करते हुये व्यक्ति के स्तर पर नारी पात्रों के माध्यम से कथाकार जीवन की कुण्ठा, द्वन्द्वात्मक चेतना, अनास्था, आकांक्षा, करुणा आदि को उभारने का सफल प्रयास करते हैं।

समर्पिता - समर्पण की भावना में निष्कायता विद्यमान रहती है पर उसके साथ जिसके प्रति समर्पण की भावना रहती है, उसमें श्रद्धा भाव भी निहित रहता है। इस प्रकार समर्पित व्यक्तित्व अपने अहं का विगलन कर दूसरों में समा जाता है। 'स्व' और 'पर' का भेद वहाँ नहीं ठहर सकता। इस स्थिति में सब कुछ पर के लिये होता है। वहाँ 'स्व' के लिये कोई स्थान नही रहता। 'स्व' का बोध ही मनुष्य में भेद भाव उत्पन्न करता है और यह भेद भाव कल्याण कारक नही हो सकता। समर्पण का भाव इस भेद बुद्धि को नष्ट करता है। समर्पण का भाव व्यक्ति किन्ही बाह्य शक्तियों से नहीं अर्पित करता वरन् यह उसके अन्तःकरण में विद्यमान रहता है। व्यक्ति के अन्तःकरण में अन्तर्निहित प्रेम एवं द्वन्द्व भाव उसे समर्पण के लिये प्रेरित करता है। स्वेच्छा से किया गया समर्पण उपयोगी भी हो सकता है। मनोवैज्ञानिक कथाकारों ने कहानियों में चिंतन के धरातल पर नारी पुरुष की परस्परता में देह संबंध या काम संबंध को बहुत ही सहज एवं स्वाभाविक रुप में ग्रहण किया है। ऐसे संबंधों में वे किसी भी मर्यादा और आचार संहिता का अनुसरण नही करते अपितु देह की अवश्यकता और उसकी पूर्ति के रुप में परस्पर आदान प्रदान के नैसर्गिक भाव को ही महत्त्व देते हैं, तभी उनके नारी पात्र प्रेम और विवाह की सीमाओं में आबद्ध रह कर भी प्रेम संबंधों को हार्दिकता से संग्रहित करते हैं। उदाहरण अगले पृष्ठ पर -

पति और पत्नीत्व की मर्यादाएँ व्यक्तिगत भले ही हो पर सामाजिक नहीं है। तभी तो वे व्यक्तिगत संबंधों में पत्नीत्व के स्थान पर अधिसंख्य नारीपात्र प्रेयसीत्व में जीते हुये भी पति के अपने मित्र या पर पुरुष के प्रति समर्पित होते हैं वैसे भी नारी में समर्पण का भाव कूट-कूट कर भरा होता है जब ये प्रेमी के प्रति स्वेच्छा से उत्सर्ग न्योछावर कर देते हैं तब बाद में पछताते हैं और दुःखी भी होते हैं। ये समर्पण कभी-कभी पतित लोगों के मध्य पहुँचा देता है। समर्पिता के भी तीन भेद होते हैं-

(१) एक वर्ग वह है जो भावनात्मक रुप से समर्पिता नारी के रुप में

(२) दूसरे वर्ग में वे नारियाँ है जो किसी हेतु विशेष के लिये पुरुष को समर्पित

(३) तीसरे वर्ग में वे नारियां है जो विशेष कारण या प्रतिक्रिया के कारण समर्पिता है।

पुरुषों के अहं के विगलन के लिये ही नारी पात्र समर्पिताओं का स्वरुप धारण करते हैं। भरतनाट्यम कहानी में दूसरे वर्ग की समर्पिता का चित्रण है जो 'हेतु विशेष' के लिये अपने पति के बड़े भाई के सामने समर्पित है। वह अपने निजी स्वार्थ के लिये कर रही है। 'भरतनाट्यम' का नायक घर पहुँचकर देखता है कि भाई साहब नहीं है, इससे आश्वस्त होता है। एडवेंचर का आनन्द लेता हुआ वह धीरे-धीरे आहिस्ता-आहिस्ता अंदर बढता है। पत्नी की कोठरी के सामने खड़े होकर सोचता है कि कैसे इसे चौका दूँ, "तभी किवाड़ खुले और भाई साहब पसीना पोछते हुये बाहर निकल गये। मुझे सामने पाकर हतप्रत हुये और आँख चुराकर बगल से बाहर निकल गये। कोठरी के अंदर से बाहर आते हुये मेरी पत्नी की नजर मुझ पर पड़ी तो वह पथरा गयी। मैने स्पष्ट देखा, उसके गालों पर और अधरों के नीचे दाँत काटने के निशान थे। कपड़े अस्त व्यस्त थे। साँस तेज थी। देखते-देखते मुझे उसकी आँखों का पानी बदलता नजर आया। वह मुझे घूर रही थी।[१] कई दिन बाद पत्नी ने स्वयं स्वीकारा, "उनकी गलती नहीं है मैं ही xxxx लिवा लाई थी, बेटा पाने के लिये।"[२]

(पति इस कहानी में ही कहता है मैं इसे गंभीरता से नहीं लेता इसे मेरा लिबरल आउट लुक कह सकती हो)

ये तीसरे प्रकार की समर्पिता है जो किसी विशेष कारण या प्रतिक्रिया फलस्वरुप समर्पिता है। ये गरीबी व मध्यम वर्गीय जिन्दगी से त्रस्त होकर एक वृद्ध व्यक्ति से संबंध रखने लगती है और उसको समर्पित हो जाती है। "नारी एक बूढ़े उद्योगपति से संबंध रखना अनुचित नहीं मानती। अपने पति को वह छोड़ चुकी है। उद्योगपति की फैक्टरियाँ पैसा उगल रहीं। वह-बाप का पुराना दोस्त है। लड़की का नखरीला स्वर और कहकहों की आवाजें कमरे से आती हैं।"[३]

इस कहानी में नायिका कहती है "वह पति एक परमेश्वर था वह हर माह तनख्वाह भेंट चढ़ाता था यह एक डैडी है बैंक में मेरे नाम एक एफ. डी. करवा दी है कोठी है कार दी है xxxx सौदा वह भी था यह भी है xxx लेकिन क्या यह सौदा बेहतर नहीं है।"[४]

(भरतनाट्यम) कहानी अगस्त १९८१ में सारिका में प्रकाशित हो चुकी थी।

१. शिवमूर्ति : भरतनाट्यम (केशर कस्तूरी) : पृ. ५३ राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली १९९१
२. शिवमूर्ति : भारतनाट्यम (केशर कस्तूरी) पृ. ६९ राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली
३. सुरेश सठे : अंधी सुरंग (सुबह पुरनी थी) पृ. ५६ पराग प्रकाशन दिल्ली पृ. सं. १९८९
४. सुरेश सठे : अंधी सुरंग (सुबह पुरनी थी) पृ. ५६ पराग प्रकाशन दिल्ली पृ. सं. १९८९

प्रेमपूर्ण दाम्पत्य संबंधों की कहानियाँ इक्का-दुक्का है। क्योंकि आज के संघर्ष करते पति पत्नी प्रेम और भावुकता को जीवन मे पीछे छोड़ चुके हैं। यथार्थ के कठोर धरातल पर आज भी कुछ संबंध मधुर हैं- नमिता सिंह की कहानी 'उत्सव के रंग' की नायिका विनीता यह प्रथम वर्ग की समर्पिता है जो पति को भावात्मक रुप से समर्पित है। विनीता का चेहरा अमर के चेहरे पर झुक आया था। उसका पोर-पोर हँस रहा था। पता नही लाल बिन्दी थी या लाला साड़ी का रंग छाया हुआ था- कि उसका चेहरा लाल था, मानों गुलाल मल दिया हो किसी ने। फागुन का गुलाल। आकाश उनके ऊपर छा गया था और वह लाली उन्हें भी रंग दे रही थी- भीतर बाहर सब ओर उन्होंन आँखे बन्द कर लीं। पूरी आकाश ही उत्सव के रंग में सराबोर था।"[१]

करुणायुक्त - सम्पूर्ण साहित्य एवं सृजन का आधार करुणा है। करुणार्द्र होकर ही नारी पात्र अपनी जीवन यात्रा सम्पन्न करते हैं। कथाकारों ने जीवन संघर्ष के मध्य ही सत्य का बोध प्राप्त करने की चेष्टा की है। मानव पीड़ा में ही सत्य का स्वरुप रहता है। इस दशक के कहानीकारों की विचारधारा का मूल उद्गम ही मानव व्यथा है। दुःख से ये स्वयं छुटकारा नहीं चाहते हैं वरन् दुख में ही आत्मान्वेषण अथवा सत्यान्वेषण करते हैं।

करुणा द्वारा ही व्यक्ति अपने अहं का पोषण और विरोधी परिस्थितियों से विद्रोह करता है। जिस स्थिति पर व्यक्ति का बस नही चलता जहाँ उसकी भौतिक शक्तियाँ काम नहीं करती, वहाँ आत्म पीड़न का सहारा लेकर अपनी कारुणिक स्थिति से वह दूसरे को द्रवित करने में सफल हो जाता है विशेषकर नारियाँ इस दिशा में तीव्र गति से बढ़ती हैं। शोषण होने के बाद नारी पात्र करुणायुक्त हो जाते हैं। आत्मपीड़न और अत्याचारों के दो पाटों में पिसने वाली नारी भी करुणायुक्त है।

कथाकार शिवमूर्ति की 'कसाईबाड़ा' वास्तव में बड़ी मार्मिक कहानी है इस कहानी में नायिका शनीचरी का चरित्र बहुत ही दुखित है शनीचरी के करुणार्द्र चरित्र के कारण कहानी ने बहुत प्रसिद्धि पायी है। कहानी एक गाँव की है जिसके चलते पुर्जे प्रधान ने गाँव के गरीबों की दस सुन्दर लड़कियों को बिना दहेज के आदर्शवादी विवाह के नाम पर बेच दिया और इस प्रकार गाँव में प्रतिष्ठा अर्जित कर ली। अगले चुनाव में इसी पद के प्रत्याशी लीडर जी को ईर्ष्या हुयी और संयोगवश ऐसा मौका मिल गया कि वर्तमान प्रधान को जनता की निगाह से गिराकर अपना रंग चोखा कर सके। उससे शनीचरी को धरने पर बैठा दिया क्योंकि यह बात खुल गयी थी कि प्रधान ने शनीचरी की लड़की रुपमती सहित गाँव की अन्य नौ लड़कियों को वास्तव में धंधा करने के लिये बेच दिया है। इसके पश्चात लीड़र, दरोगा, ग्राम प्रधान अपने-अपने तरीके से शनीचरी का शोषण करते हैं। पुराना शत्रु ग्राम प्रधान झोपड़ी से निकाल देते हैं दूसरे हितैषी बनकर दो बीघा जमीन धोखे से हस्ताक्षर कराकर ले लेते हैं तीसरे दरोगा उसे ग्रामप्रधान व लीडर जी की लूट में उसे अपराधी घोषित करवा देते हैं उसकी लाश तक का सम्मान नहीं करते वरन् लात घुसों से मारते हैं।

---

१. नमिता सिंह : उत्सव के रंग (नील गाय की आँखे) पृ. ९२ वानी प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९९०

२. कसाईवाड़ा- (शिवमूर्ति- धर्मयुग ६ जनवरी १९८०)

शिवमूर्ति की बहुचर्चित कहानी 'तिरिया चरित्तर' की विमली का सम्पूर्ण चरित्र ही करुणायुक्त है। विमली नौ साल की उम्र में बाप की चाह के इंतजाम के लिये बकरी खरीद कर लायी थी। भट्टे पर काम करने वाली लड़कियों का ठेकेदारों द्वारा या मालिकों द्वारा शोषण किया जाता है। कुइसा को अच्छा लगता है, "सिर पर ईट उतारते हुये गरम साँस और तन का परस'। विमली को कुइसा छेड़ा करता है। माँ उसे अधकपारी की दवा कराने डॉक्टर के पास ले जाती है, वह भी उसे देखकर खीसे निकालता है। कहता है ए पतरकी। पतली कमर वाली तिरिया। तेरा मन मेरे पर आये या न आये, मेरा मन तेरे पर ही लगा हुआ है"[१]

समाज में हर तरफ नारी का घर व बाहर दोनों जगह शोषण हो रहा है। "जनम भर दूसरों की कुटौनी पिसौनी करे गोवर सानी करें फटा उतारा पहिरे ××× एक टूका रोटी के लिये दूसरे का लरिका सोचाये।"[२] विमली का पति तो सीताराम था, अनजाना अनदेखा। 'कटही' विमली अपने को बचाकर रखती है। दुनियाँ भर की भूखी नजरों की भाखा पढ़कर कब की पंडित बन गयी है। ससुराल आने पर ससुर का मन बदल जाता है। वह पंचायत करना नहीं चाहतीः क्योंकि पंचरस लेकर ऐसे-ऐसे सवाल पूँछेगे कि उसे ×××। पंचायत को वह बताना चाहती है उसके साथ मुँह काला करने वाला आदमी ससुर था। भरी सभा में लाचार औरत की बेइज्जती होती है। ससुर के आरोप सही माने जाते है। उसे दागा जाता है। वह बेहोश होकर गिर पड़ती है। पुजारी जी कहते हैं, तिरिया चरित्र समझना आसान नहीं है और बीसों सिर सहमति में एक साथ हिलते हैं। इस कहानी में नायिका का सम्पूर्ण जीवन करुणा से भरा है इस जालिम और बेरहम दुनियाँ में विमली कुछ नहीं कर पाती।

हिमांशु जोशी की 'जलते हुये डैन नामक कथा संग्रह में समस्त कहानियाँ करुणिक संवेदना युक्त व अंचल विशेष की पीड़ा को लेकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हैं। जोशी ने यहाँ पाठकों को ढेठ नवें दशक के बोध के सामने खड़ा कर दिया है। तरपन' कहानी की मधुलि का चरित्र इतना करुणार्द्र है कि पाठकों को गोदान की दूसरी झाँकी के जीवन्त दर्शन होने लगते हैं क्षोभ और कड़वाहट के साथ भयानकता की सनसनी आदि से अंत तक व्याप्त है। "मधुलि का पति सड़क बनाते समय सुरंग में उड़ जाता है उसके तीन-तीन अबोध बच्चे हैं। दाने दाने को मुँहताज है और सामाजिक सवाल सामने खड़ा है- तर्पण का --- पिण्डदान का ! जहाँ दिये में तेल नही घर अंधेरे में वहाँ इतनी रकम कहाँ से आयेगी! महाजन से रकम माँगने में मधुलि के रुप की डकैती की स्थिति है। सरकारी कर्मचारी ओवरसियर किसी भविष्य की प्रतीक्षा की अबूझ बात करता है।"[३]मधुलि के चरित्र में एक करुण निराशा व्याप्त है। मधुलि का चरित्र गोदान से भी ज्यादा हृदय द्रावक है। इतना करुणायुक्त है कि पाठक स्वयं करुणा में डूब जाता है।

संजीव की घर चलो दुलारीबाई भी एक नारी की करुण कथा है। "कचहरी के बरामदे में सन्नाटा छाया हुआ है, मुँह मारते कुत्ते, साँड और गाय, सुअरों को छोड़कर कोई नही हैं वहाँ। सन्नाटे में सिर धुनकर अपनी करुण घुटी रुलाई को अकेली रो रही है दुलारी बाई किसकी ओस में?" संजीव ने यह दर्दनाक सवाल 'घर चलो दुलारी बाई' नामक कहानी में उठाया है। समाज के ठेकेदार निरपराध नारी की खड़े देखते हैं। न्यायालय उसे फूँककर जा चुका है। आँसुओं से उसकी चिंता पट जाती है। अब इस मरघट में क्या बचा है। क्योंकि वह और थी, उसके फड़कते होंठों को बंद कर दिया गया। पति और बेटे को मार तुम पर हाथ साफ करने की कोशिश की जा रही थी। तुम पर अवैध संबंधों का आरोप लगाया गया, 'भरस्ट' कहा गया। मुकदमें के जरिये तुम पार नही पा सकती। सभी ने तुम्हें समझाया था, "लेखपाल पटवारी से लेकर ऊपर तक सब गीध की तरह तुम्हारा माँस चुगते जायेंगे। वह कुत्तागीरी उन्ही बड़कवों के लिये छोड़ दो। इस राज में तुम्हारे लिये नियाव नही है।"[४]

---

१. शिवमूर्ति : तिरिया चरित्तर (केशर कस्तुरी) पृ. ७८ राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली १९९१

२. शिवमूर्ति : तिरिया चरित्तर (केशर कस्तुरी) पृ. ७८ राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली ८१

३. तरपन (जलते हुये डैने) हिमांशु जोशी/ पृ. सं. १९८१

४. घर चलों दुलारीबाई:(दुनियाँ की सबसे हसीन औरत) संजीवःपृ.15यात्री प्रकाशन दिल्ली1990

यथार्थवादी

कहानी यथार्थवादी विधा है। उसका जन्म भी यथार्थवाद के जन्म के साथ माना जा सकता है। वर्तमान कहानी के संबंध में यह कथन अक्षरशः सत्य है। कहानी में आवश्यक है कि उसमें सामाजिक सत्य का कोई टुकड़ा हो। कहानीकार उसे अपने परिदृश्य से उठाकर वस्तुनिष्ठ और सार्वभौम रुप में रचना करता है। 'यथार्थ' चित्रण में अनेक अवरोधक तत्व हैं कभी समाज, कभी आदर्श आड़े आता है तो कभी सामंती सोच। आज के युग में व्यवस्था, राजनीति और पूँजीवाद ने यथार्थवादी सोच को बाधित करने में कोई कोर कसर नही रखी है। परन्तु वर्तमान कहानी ने सत्य को निर्भीक होकर खुले शब्दों में कहा है।

बिभिन्न आचार्यो के अनुसार यथार्थ-

यथार्थ का अर्थ विभिन्न शब्द सागरों में देखने को मिलता है पर यथार्थ के वास्तविक रुप के दर्शन विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं में है- "प्लेटो का मत है कि 'यथार्थ' जड़ है कोई विचारवान व्यक्ति ही उसकी पकड़ कर सकता है। यथार्थ का ज्ञान कोई विशेषता नहीं है। उसकी प्रतीति कराने वाले में विशेषता रहती है। रुप, आकार, रचाव, सार्त्र के तर्क के अनुसार यथार्थ हैं। परन्तु 'जेने' प्रत्युत्तर में कहते हैं कि जो दृष्टिगोचर होता है, वह यथार्थ से भी यथार्थ है।[१]

असंगति और विघटन यथार्थ हो सकता हैxxxxxxx परन्तु वह समग्र यथार्थ नहीं xxx खण्ड यथार्थ मात्र है। विज्ञान का नियम संघटन है विघटन नही। xxx यथार्थ बोध की ऐसी परिभाषा जो जीवन का निषेध करे अयथार्थ मानी जायेगी। xxxxx यथार्थबोध को सचेतन प्रक्रिया न मानकर एक सहज अप्रत्यक्ष प्रक्रिया मानना ही संगत है। सचेतनता का अर्थ है बोध सर्जना की प्रक्रिया मे बोध की प्रमुखता बाधक हो सकती है।"[२]

"वस्तु का यथार्थ और क्या होता है? सिवा उस यथार्थ के जिसे वह देखता है और महसूस करता है और महसूस करने की प्रक्रिया में उसे शक्ल देना है। वह शक्ल जो यथार्थ की भी है और उसकी अपनी भी।"[३] इसके साथ यह भी उतना ही सत्य है कि "वैचारिकता के बिना कोई समाज में निहित यथार्थ का साक्षात्कार नहीं कर सकता है।xxx यथार्थ की अपेक्षा यथार्थ के प्रसव की प्रक्रिया पर रचनाकार का ध्यान केन्द्रित होता जा रहा है। आज के यथार्थ को सत्यं, शिवं, सुन्दरम् जैसे परम्परागत सूत्रों के द्वारा भी व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है। xxx आज का यथार्थ मानवीय चेतना के उन मर्म स्थलों का यथार्थ है जो कि अपने समय के दबावों से अपने समय की वस्तु स्थितियों से सबसे अधिक विन्दुओं पर प्रतिकूल होते हैं।"[४] यथार्थ क्या है? इसका उत्तर प्रस्तुत शब्दों में देने का प्रयास किया गया है: "यथार्थ सारा संसार है। पर उसमें से रचनाकार कुछ चुनता है। xxx चुनने पर ही उस कहानी का संसार निर्भर करता है। इस चुनाव के पीछे अपनी वैयक्तिक प्रतिमा होती है। पर अपने विश्वास, अपनी निराशाएं अपने द्वन्द्व भी होते हैं। अपनाा आनन्द शायद सबसे कम होता है।"[५]

---

१. श्रीपतराय : समकालीन कहानी में नयी संवेदना : समकालीन कहानी दिशा और दृष्टि से उद्धृत : संपादक डा. धनंजय पृ. १०० : अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद १९७०
२. डॉ. नगेन्द्र : नयी समीक्षा : नये सन्दर्भ : पृ. ६६ सं. १९७४
३. विजय मोहन सिंह परिवर्तन की प्रक्रिया : समयकालीन कहानी दिशा और दृष्टि पृ. १२८ सम्पादक डॉ. धनंजय
४. रमेशचन्द्र शाह - कहानी और आधुनिक रचना- वही पृ. १८४-१८५
५. देवीशंकर अवस्थी : सन् साठ के बाद की हिन्दी कहानी पृ. ८४

हिन्दी कहानी में 'यथार्थ' का अर्थ प्राकृतिक दृश्यों, तथ्यों वाह्यवस्तु वर्णन तक ही समझा जाता था। परन्तु समकालीन कहानी जो 'यथार्थ' की ही कहानी है उसका यथार्थ जीवन की अनेक तहों में लिपटा है। ये तहें- सामाजिक, पारिवारिक संबंधों, दाम्पतय, धर्म, राजनीति, साम्प्रदायिकता और जातीयता आदि की बहुआयामी है। वर्तमान कहानी के वदले नये परिवेश का यथार्थ ही अधिक उभरा है। यथार्थ अनेक रुपों में उद्घाटित होता रहता है उसे सही समय पर पहचानने की आवश्यकता है। समकालीन कहानी नवऔपनिवेशिक विकास के भयावह यथार्थ का मुकाबला कर रही है, उससे टकरा रही है। भारतीय जीवन विरोधाभास, त्रासदी और पीड़ा का जीवन है। समकालीन कहानी ने जीवन की यातना और यातना के कारणों को उकेरा है। यह भी कहानी में यथार्थर्थ की पहचान कराता है।

यथार्थवादी चेतना में विचार और अनुभव दोनों का संयोग रहता है। वर्तमान कहानी यथार्थ की कहानी है। निम्न व मध्यवर्ग को यथार्थ ने कहानी में उचित स्थान प्रदान किया है। शोषित और दलित वर्ग को भी जागरण की हवा ने महत्वाकांक्षी बना दिया है। वे अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिये आरक्षण की माँग को उचित समझते हैं और अधिकारों के लिये संघर्ष को तत्पर हैं। यह संघर्ष भावंक पैदा करता है और यह आतंक एक यथार्थ है। कहानियों में यथार्थ के नये-नये रुप देखने को मिलते हैं। धन ही जीवन की सफलता की पहचान है। विलास सामग्री का चयन, स्त्री पुरुष संबंधों में मर्यादाओं की सीमाओं को तोड़ना, बेरोजगार युवक का क्रांतिकारी बन जाना, परिस्थिति की दासता, बेरोजगार जीवन आदि। विज्ञान ने यथार्थ को जन्म दिया है। यथार्थवाद जीवन को देखने समझने की विकट दृष्टि है। विज्ञान ने मानव को "माइक्रोस्कोपिक" दृष्टि प्रदान की है। यही "वास्तविकता" यथार्थवाद का प्रथम बिन्दु है।"[१] लेकिन मन और बुद्धि द्वारा ही यथार्थ का ज्ञान संभव है। यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति यथार्थवाद है। जीवन की सच्ची अनुभूति सच्ची प्रत्यक्षनुभूति यथार्थ है। नवें दशक में यथार्थवाद के दो रुप ही देखने को मिले हैं।

(i) सामाजिक यथार्थवाद

(ii) राजनैतिक यथार्थवाद

यदि हम राजनीति को समाज से ओतप्रोत मान ले और समाज की ही एक प्रवृति माने तो यह सामाजिक यथार्थ में ही आती है। यह निश्चित है कि मन और बुद्धि द्वारा ही यथार्थ का ज्ञान संभव है। किसी भी विचारधारा के साथ मनोविज्ञान का घनिष्ट संबंध होता है। यथार्थवाद भी मनोविज्ञान से आंतरिक एवं बाह्य रुप से जुड़ा हुआ है।

मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद , यथार्थवाद की प्रचलित मान्यताओं की प्रतिक्रिया पर आधारित है। "यथार्थवाद की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार जहाँ आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों के समुच्चय को सामाजिक यथार्थ कह सकते हैं।" वहाँ मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद मनुष्य के बाह्य जगत के प्रभावों को स्वीकार नहीं करता है। मनुष्य के मानसिक जगत के भीतर ही यथार्थ की सम्पूर्ण समाहिति का अनुभव करता है।

---

१. समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम। सं. १९९४ हिन्दी बुक सेंटर

मानव मन और अन्तर्मन के चेतन उपचेतन की ग्रंथियाँ, भ्रांतियाँ साहित्य में व्यक्त होती है। फ्रायड, एडलर, युंग आदि इसके प्रवर्तक हैं। मनुष्य का बाह्य जगत तो होता ही है, उसके साथ उसका एक अन्तर्जगत भी होता है। मानव का जीवन इसके द्वारा भी परिचालित होता है। मानव का अवचेतन, चेतन से अधिक प्रभावशाली होता है। मानव की सहज वासनाओं में कामवासना सबसे अधिक प्रधान होती है जो अन्तर्मन में छिपी रहती है। समाज के कारण व्यक्ति को अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता है। इन वासनाओं को अभिव्यक्ति न मिलने के कारण वह अवचेतन में दब जाती है। जिससे मानव जीवन में अनेक ग्रँथियाँ पड़ जाती है। यहाँ तक कि कुछ लोग मानसिक रोगग्रस्त तक हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव का स्वाभाविक विकास तभी हो सकता है जबकि वासनाओं का निषेध एवं दमन न किया जाय अपितु उनकी पूर्ति की जाए। अवचेतन की दमित इच्छाओं को साहित्य में वहीं तक स्थान मिल सकता है जहाँ तक वे समाज के लिये ग्राह्य हैं।

मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण की प्रक्रिया ने साहित्य द्वारा समाज और पाठक को स्वस्थ मनोवृत्ति के पात्र कम दिये। अस्वस्थ और विकृत मनोवृत्ति का सृजन ही अधिक किया। यद्यपि ये भी समाज का महत्वपूर्ण यथार्थ है, परन्तु साहित्य का उद्देश्य यदि शिव, सुन्दरम् माना जाये तो यह उसे पूरा नही कर सकता है। कहानी में व्यक्ति और समाज के बाहरी क्रियाकलापों के स्थान पर अवचेतन में घटित कार्यकलपों पर चिन्तन मनन किया गया। परवर्ती कथाकारों ने मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद को अनेक दिशाए दी। डॉ. नगेन्द्र अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवती प्रसाद वाजपेयी ने मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद की कथा रचना का सूत्रपात किया। इस दशक ने भी (१९८०-९०) इस पद्धति को गृहण किया है।[१]

सामाजिक एवं राजनैतिक यथार्थ के धरातल पर नवें दशक की हिन्दी कहानी टिकी है। इस दशक में कहानियों में नारी के विविध रूपों की झलक एवं उसकी विशिष्टि परिणतियाँ द्रष्टव्य हैं। कहानी में यथार्थवादी विचार धारा को प्रमुखता दी गयी है और उसमें नारी पात्र आवेगशील द्वन्द्वयुक्त, खण्डित व्यक्तित्व एवं परपीड़क रूप में दिखाई देते हैं। डॉ. ज्ञानवती अरोरा के शब्दों में-फ्रायड के मतानुसार मानव के क्रियाकलाप उसके अन्तर्मन की छाया होते हैं। कला प्रवृत्ति के दमन से अवचेतन में गहरी प्रतिक्रिया होती है कभी-कभी ये दमित इच्छाएं ही कला और धर्म की प्रेरक बन जाती हैं। एडलर ने इसे आत्मस्थापन और युंग ने मनः शक्ति कहा है।" 'मनोविश्लेषण पद्धति' के प्रयोग से कहानी में विश्वसनीयता अधिक आयी है। अब इस विचार धारा के साथ द्वन्द्वयुक्त खण्डित व्यक्तित्व एवं परपीड़क का अध्ययन भी आवश्यक है। इस दशक के हिन्दी कहानी में नारी चिारित्र्य की यथार्थवादी विचार धारा में विशिष्ट परिणतियाँ इस प्रकार है-

१. आवेगशील २. द्वन्द्वपरक ३. खण्डित व्यक्तित्व ४. परपीड़क

द्वन्द्वपरक :- एक ही समय में दो या अधिक विरोधी इच्छाएं एक साथ उत्पन्न होने और उनकी अभिपूर्ति संभव न होने के कारण जो तनाव मानसिक रूप में उत्पन्न होता है वही तनावपूर्ण स्थिति द्वन्द्व की होती है पर यह द्वन्द्व की स्थिति तभी द्वन्द्व के रूप में उपस्थित होती है, जब किसी आवश्यकता, आकांक्षा की पूर्ति या संतुष्टि नही हो पाती है।

---

१. समकालीन कहानी यथार्थ के विविध आयाम - डॉ. ज्ञानवती अरोरा सं. १९९४ पृ. १४३

सामान्यतः द्वन्द्व उत्पन्न होने के कारण पारिवारिक, सांस्कृतिक एवं कामपरक होते हैं। प्रथम प्रकार के द्वन्द्वो में माँ पिता के व्यवहार की असमानता, निर्भरता तथा भय के संघर्ष के कारण उतपन्न होते हैं। सांस्कृतिक द्वन्द्व में व्यक्ति प्रतिष्ठा एवं संस्कृति की विविध मान्यताओं से उत्पन्न विरोधी स्थितियाँ व्यक्ति के समक्ष आती है। कमपरक द्वन्द्व वासन तुष्टि के सांस्कृतिक अवरोधकों के कारण उत्पन्न होते हैं क्यौकि वासना या तुष्टि या सन्तुष्टि के अवसर प्राप्त होने पर भी कई बार अपराध भावना व्यक्ति में आती है। जब कभी भी दो भिन्न विचार एक साथ उत्पन्न हो जाते हैं और उनका साथ साथ निर्वाह करना आवश्यक हो उठता है तो द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जातीहै। यह द्वन्द्व दो स्तरों पर संभव होता है।

(१) बाह्य (२) आंतरिक।

बाह्य द्वन्द्व दो पात्रों में दो विषम स्थितियों में होता है पर आंतरिक द्वन्द्व या अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति सर्वाधिक विचित्र होता है। कोई भी व्यक्ति एक साथ ही दो भिन्न परिस्थितियों को झेलने के लिये बाध्य होता है। यह आंतरिक द्वन्द्व मूलतः व्यक्तिगत स्तर पर संस्कार, पारिवारिकता एवं वातावरण की देन है। इसमें अतिशय सक्रियता व्यक्ति की बौद्दिक चेतना और सजगता होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि व्यक्ति में निहित ग्रंथियों एवं बाह्य परिवेश का दबाव व्यक्ति के आंतरिक द्वन्द्व का कारण बन जाता है। वास्तव में अंतर्द्वन्द्व मानसिक तनाव की वह अवस्था है जो दो परस्पर विरोधी इच्छाओं के उत्पन्न होने से जिसकी पूर्ति एक साथ ही असंभव है अथवा अपने किसी न्यूनता या इच्छाओं के विघटन के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। डॉ. पद्मा अग्रवाल के शब्दों में - "अन्तर्द्वन्द्व परिवार यौन और संस्कृति से संबंधित होता है। पारिवारिक अर्न्द्वन्द्व के कारण बाल्यावस्था में असुरक्षा, परित्याग, कठोर व्यवहार, दूसरे भाई बहिनों का जन्म तथा अत्यधिक निर्धनता होते है। यौन संबंधी द्वन्द्वों के कारणअविवाहित रहना, वैधव्य, परित्याग, समाज द्वारा अर्स्वीकृत यौन संबंध इत्यादि और सांस्कृतिक अर्न्द्वन्द्वों का कारण धार्मिक हठवादिता, अंधविश्वास जातीयता, अत्यधिक प्रतिस्पर्धा इत्यादि होते हैं। फ्रायड ने कामसंबंधी द्वन्द्व के विध्वंसात्मक प्रभाव पर विशेषतः ध्यान आकर्षित किया है।"

वर्तमान स्थिति के प्रति असन्तोष से ही अन्तर्द्वन्द्व उपजता है। हम सब वह बनना चाहते है, जो हम नहीं है, यही से अन्तर्द्वन्द्व प्रारंभ होता है और वास्तव में जीवन और जगत की प्रगति भी इसी में अन्तर्निहित है। साहित्य में पात्रों का यह आंतरिक संघर्ष ही पात्रों में जीवन्नता लाता है। 'सुहागिनी' कहानी में अविवाहिता का द्वन्द्व पद्मावती जब भी जानती थी कमलावती बोज्यू के मूंह से उनकी अपनी आंतरिक व्यथा बोलती है। ब्राह्मण कन्या तो पैसे वालों की भी बहुत परेशानियों के बाद ही ब्याही जाती है वह तो एक दरिद्र परिवार की कन्या थी और कुरुपा गोरे कपाल में तो काजल का टीका भी बहुत फलता था, मगर काले कपाल की रेखाएं तो चन्दन के तिलक से भी उजली नहीं हो पाती। सोने चाँदी के आसन पर तो शालिग्राम को भी पूजा जाता है मगर दान दहेज से रीती उस सूखे काठ जैसी काया को कौन देगा अपने घर में बहू का आसन "?[१]

---

१. सुहागिनी - शैलेशमटियानी की प्रति. कहानियां / सं. १९८७ सं. डॉ. लक्ष्मण सिंह विष्टबतरोही पृष्ठ . 120 पृ. १२०

चन्द्रकिरण सौनरेक्सा जी ने इस युग की घर बाहर की चक्की में मानसिक तनाव को झेलती, मध्यवर्गीय नारी की अन्तर्वेदना को भी भावपूर्ण स्वर दिया है। 'तेरी मेरी उसकी बात' की शोभना का मानसिक द्वन्द्व मर्मस्पर्शी है-

"पीड़ा मिश्रित क्रोध से शोभन का सर्वांग काँप उठा, उसके मन में आया, आज ही से ऑफिस जाना बन्द कर दे ....फिर घर बैठकर तरह तरह के अचार डालती रहू........ स्वेटर बिनती रहे ...... अच्छा फिर अगले महीने बच्चों के मँहगे स्कूल का खर्च कैसे निकलेगा। टी. वी. फ्रिज की किश्तें....... अभी तो स्कूटर का लोन कट रहा है...... नहीं. नहीं नौकरी नहीं छोड़नी है। पति का तो सदियों पुराना एक ही बना बनाया जवाब है..... नौकरी करो या मत करो मेरी बला से........... पर औरतों के काम तो मैं करने से रहा ...।"[१]

घर के बाहर निकल आई नारी का दुन्द्व और भी प्रखर हो जाता है।

'कायर' कहानी में हिरणकी एक आवेगशील नारी के साथ द्वन्द्वयुक्ता भी है। मोहन बाबू के पास केवल पति के कर्ज के कारण जाती है पर वह हृदय से तो पतिव्रता है लेकिन उसके हृदय की ममतिक पीड़ा उसे अन्तर्द्वन्द्व में उलझा देती है-

"दूसरे दिन अपरान्ह बेला हिरणकी आई। उदास और बीमार-बीमार। लुटी लुटी सी उसेक हाथ में कुछ कागज थे। उनहें मादियेके मूँह पर मार कर वह अन्तर्द्वन्द्व में बोली, "संभालो अपने खेत और घर। मैं मोहन बाबू से सब कुछ ले आई हूँ, तू अब उनका कर्जदार नहीं xxxx पर मैं हो गयी हूँ। किन्तु तुझे बता दूँ कि मैं उनका कर्ज नही चुकाउँगी। मैं उसके साथ बेईमानी करूँगी xxxxxx पर तेरे साथ भी नहीं रहूँगी। तू कायर है, नीच और सुवारथी। मे तेरी जमीन पर थूकती हूँ और सुन मैंने मल्ली से कह दिया है कि में मोहन बाबू के साथ रहूँगी मल्ली यह बात फैला देगी और तुझ पर कोई दोष नही लगेगा।"[२]

निम्न मध्यवर्गीय लड़कियों का जन्म ही माता पिता के लिये बोझ है भारतीय समाज में आज भी अच्छी से अच्छी लड़की का विवाह एक भयानक समस्या है। माता पिता को भी बड़ी होती लड़की भारी लगती है कही कही तो माता पिता ही बुरा व्यवहार करने लगते हैं। जैसे ही लड़का मिला कि शादी चाहे वह अच्छा हो या बुरा। माँ बाप जहाँ चाहते हैं वही करेगे ने तो न करने पर कभी कभी तो .." भागकर शुक्रवार की पैठ में बैठना होगा, जहाँ एक अनचाहे पति की जगह आदमियों की कतार को रोज सहना होगा।"[३] पूर्वा कहानी में द्वन्द्व में झुलस रही है।

द्वन्द्व युक्त नायिका के आगमन से कहानी में संक्षिप्त कलेवर तीक्षण और प्रखर हो जाता है। बड़ी उम्र की अविवाहित युवती घर परिवार की गाड़ी खीचते-खीचते कितनी असहाय हो उठी है कि गिद्द की नायिका को लगता है कि उसके माँ बाप ने ही जानबूझ कर कौशिक से ब्याह नहीं होने दिया और उसके बाद ब्याह के नजदीक ही नही आने दिया।"[४]

---

१. तेरी मेरी उसकी बात चन्द्रकिरण सोनारिक्सा सारिका १ जुलाई१९८३ पृ. २१
२. कायर - (यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र) आत्माराम एण्ड संस) पृ. १७
३. पूर्वा सिर्फ तुम्हें पति चाहिये (बौसुरीली तथा अन्य. कहानियाँ) विजय / पृ. १२० पराग प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९८७
४. गिद्द - गोविन्द मिश्र (नारी उत्पीड़न की कहानियाँ) सं. गिरिराजशरण १९८६ पृ. ६०

इसी प्रकार नारी का द्वन्द्व जीवन बेटी रूप में ही नही पत्नी रूप में दिखने को मिलता है जो बड़ा दयनीय है। धीरेन्द्र अष्ठाना की 'लोग हाशिये पर' की निम्नवर्गीय लक्ष्मी जो पति के लिये रोटी कमाने की खातिर पांच रुपये में दो पुरुषें को सन्तुष्ट करके आती है। पति को जब रात में मना करती है तो वह xxx (गालियाँ देता है) कहकर अपना हक वसूल करता है। लक्ष्मी का कराहना और आँसू देखकर कथाकार की टिप्पणी महत्वपूर्ण संकेत देती है-

"हमारे कथाकार की आँखों में राग दरबारी का पलायन संगीत गूँजने लगा.... भागो! भागो! यथार्थ तुम्हारा-पीछा कर हा है उसे लगा प्रेमिका की आँखें ज्यादा सुविधाजनक है वह परेशान हो गया ।"[१]

खण्डित व्यक्तित्व :- मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में उलझे रहने के कारण मनुष्य कभी-कभी सामान्य से भिन्न व्यवहार करने लगता है। क्योंकि मानसिक तनाव के कारण चेतना शक्ति पर उसका पूरा अधिकार नही रह पाता। परिणाम स्वरूप व्यक्ति के क्रियाकलापों में एक तरह की विश्रंखलता एवं खण्डितता आ जाती है जिससे टूटना जुड़ना, पुनः टूटना यही उसकी नियति बन जाती है। इस प्रका मनोविज्ञान में प्रबल मानसिक संघर्ष के कारण उत्पन्न होने वाली ऐसी मानसिक स्थिति जिसमें मनुषय का अपनी चेतना शक्ति पर पूरा पूरा अधिकार नहीं रह जाता, खण्डित व्यक्तित्व है।"[२]

इस दशक मे कहानी के कतिपय नारी चरित्र मानसिक भ्रांतियों अहंता, प्रेम, क्रांति और स्वच्छन्दता के वात्याचक्रों में विभक्त हो गये है। कहानियों में नायिकाएं अपने दुराग्रह के कारण जीवन की विविध विरोधी परिस्थितियों में निम्नगामी और अप्रत्याशित स्तर पर उतर आती है। साथ ही अहं की मानसिकता और रूमानी अनास्था से उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व के फलस्वरूप उनके सामाजिक संबंध विशेष और स्थिति विशेष को निर्धारित करने वाले व्यक्तित्व भी खण्डित ही होते हैं। वे अपने आंतरिक अभावों की तुष्टि के लिये प्रयत्नशील रहते हुये सामान्य से भिन्न व्यवहार करती है प्रेम की त्रिकोणात्मक स्थिति में कहानियों की नारियों का जीवन प्रेमी और पति, पति और प्रेमी के मध्य झूलता हुआ किसी तृतीय पक्ष में अपनी सम्पूर्णता पाने की लालसा रखता है। इन नारी पात्रों का चिंतन और दर्शन कहीं भी स्थिर नहीं रहता और ये अपनी टूटी बिखरी मान्यताओं के कारण खण्डित व्यक्तित्व में ही जीती मरती और फिर जीती हैं।

'मरा हुआ आदमी' स्वदेश दीपक की ऐसी कहानी है जिसमें नायिकाएं खण्डित व्यक्तित्व धारण किये हुये हैं। नायिका को शाम को टेनिस खेलना आवश्यक है। पति सेशन जज है। कोई केस अड़ जाने पर वह सुलझा लेने तक घर में ही रहना चाहते हैं यह उनकी आदत है। पत्नी को भारतीय टेनिस प्रतियोगिता मे फाइनल में जीतना है। उसके पार्टनर ब्रिगेडियर सिन्हा हैं। पति शाम को लॉन में मन की अदालत लगा कर बैंठ जाते हैं। पत्नी बड़ी 'पापुलर' है-कारण दोनों का लालन पालन दो भिन्न वर्गो में हुआ है। डॉ. वर्मा का लड़का विनय उनकी बेटी सुनीता के साथ वैडमिन्टन खेलता है। विनय इकहरे शरीर का लम्बे कद का युवक है- अंग प्रत्यंग किसी जंगली पशु की तरह कसा हुआ। पत्नी भी विनय के साथ खेलती है, वैडमिन्टन। विनय प्रशंसापूर्ण दृष्टि से आंटी को देखता है उसका गोरा, लम्बा चेहरा लाल हो जाता है।

---

१. लोग हशिये पर - धीरेन्द्र अष्ठाना, कथाखण्ड एक १९८१ पृ. १२

२. रामचंन्द्र वर्मा : मानक हिन्दी कोष पृ. ३

एक दिन जज साहब लॉन मे बैठे है "खिड़की के काँच से दो शरीर आपस में लिपटे से लग रहे हैंxxxxxx दोनों बाहर आते हैं। विनय की सफेद जर्सी पर गले के पास जो छोटा सा लाल दाग था, वह आज डेवलप होकर कितना बड़ा हो गया है। उसके रंग का शेड पत्नी के होठों पर लगी लिपिस्टिक से मिल रहा है। xxxx ब्रिगेडियर सिन्हा टेनिस में पत्नी का पार्टनर है और डॉ. वर्मा का बेटा विनय जो उसकी बेटी सुनीता का साथी है, वह पत्नी का भी साथी बन जाता है।" पति यदि घर में बैठा अदालत लगाता रहे तो पत्नी क्या करे? उसे जीवन में थ्रिल चाहिये।"[१] जज साहब की पत्नी का व्यक्तित्व एक खण्डित व्यक्तित्व है पत्नीत्व का आभास कहीं भी नही है।

खण्डित व्यक्तित्व के रूप में नारी कितनी गिरती दिखाई दे रही है वह दूसरे के जीवन को नरक बनाने में पीछे नही है। दाम्पत्य जीवन के अनेक पहलू कहानियों में उभरे है दुस्साहसी नारी प्रेमी से क्षणिक संबंध को निःसंकोच स्वीकार करती है सिर्फ इसलिये कि "उसकी पत्नी जैसी सुन्दर औरत भी जिसे बांधकर नहीं रख पायी, वह मेरी साँवली सामान्यतया के बाबजूद कही आकर बार-बार मुझ तक रुक जाता है।" इस कहानी की खण्डित व्यक्तित्व धारण किये नायिका का विश्वास है "एक चीज़ शुरू हुई वह सही या गलत पर सुन्दर थी अब उसे अगर खत्म होना ही है तो अपनी सुन्दरता के साथ"।[२] यहाँ कुण्ठा का नाम नहीं है। यहाँ केवल निकृष्ट चरित्र ही द्रष्टव्य है।

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र की कहानी कायर में मल्ली का चरित्र खण्डित व्यक्तित्व के रूप में प्रदर्शित है- मल्ली माधिया के कहती है - 'ओ नासपीटे! क्यों अपनी जान के पीछे लगा है! जो कमाता है उसे इन्ही फालतू कामों में उड़ा देता है! मेरी बात मान, अरे जीवन भर शाँति से जियेगा मेरे साथ।"[३]

कहानी ने सामाजिक विसंगतियों की येत्रणा को भोगते व्यक्तिका चित्रण किया है। व्यक्ति की नियति बन गयी है यंत्रणा और विसंगति को सहते जाना। इसकी समाप्ति निकट भविष्य में नजर नहीं आती। कहानी द्वारा पाठक इस असंगत स्थितियों का अहसास करता हैं। केवल अहसास कराना ही कहानी का उद्देश्य नहीं रहता कहानी उसमें क्रांति का बीज बोती है। कथाकार हर यथार्थ को जीवनानुभवों के मध्य से अन्वेषित करता है। इस कारण सामाजिक यथार्थ के नये कोण उभरे हैं जिसमें कहानीकार की पूर्णदृष्टि सम्पन्नता है, संवेदनशीलता है और दिक तथा काल की प्रमाणिकता है।

मानवीय कोमल और ऊष्ण संबंधों में धीरे-धीरे ठंडापन रिसता चला गया। संबंध मरने लगे। कसैलापन मिठास को लील गया। वर्तमान कहानी को मानसिकता और रचनात्मकता को सामाजिक परिवेश ने बदला। समाज ने प्रगति पथ पर पाँव बढ़ाये कुछ बदलाव आये लेकिन आंतरिक अध्ययन के बाद मात्र शून्य ही नजर आता है। जिसका मूल कारण मूल्यहीनता, मूल्यसंक्रमण है। कुसंस्कार को स्थान मिल गया है, व्यवसाय वृत्ति बन चुका है, मूल्य और संस्कारों को मलबे का ठेर बना दिया गया है। व्यक्ति की जगह पैसे ने ली है। पैसा ईष्ट है और व्यक्ति दास। पद, सत्ता और प्रभुता के बीच आदमी आदमी नही रह गया भ्रष्टाचार को समाज में सत्तात्मक आसन मिल चुका है। ईमान शब्द समाप्त हो चुका है। पर ईमानदारों को जीने

---

१. स्वदेशदीपक : मरा हुआ आदमी (प्रति कहानियाँ) पृ. ३० राजकमल पैपर बैम्स दिल्ली १९८८

२. अब और नही - स्थगित अर्चना वर्मा पृ. १४ / १९

३. कायर - (आदिपर्व तथा अन्य कहानियाँ - यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र आत्माराम एण्ड संस / पृ. १०

नही दिया जाता। ईमानदारों की ईमानदारी से समाज के तथाकथित कर्णधारों को हानि पहुँचती है। इस दशक में कहानी जीवन की सच्चाइयों को प्रस्तुत कर रही है। इन कहानियों का हर संभव प्रयास है कि मानव को हीनता, दुर्गति और परामुखापेक्षिता से बचाया जा सके। समाज पिछले दशकों में काफी बदला है। वास्तविकता यह है कि वर्तमान परिस्थितियों के गहरे प्रभाव ने समाज और आदमी की सोच, सिद्दांतों और आदर्शो को बदला है। यहा तक कि उसकी पूरी शख्सियत ही बदल चुकी है यथार्थ ने हमारी आँखों के सामने से पर्दे हटा दिये हैं। द्वन्द्वयुक्त, खण्डित व्यक्तित्व वाले मुखौटे हमें हर क्षण दिखाई दे रहे है।

इन्दुबाली की कहानी 'अंधेरे की लहर' की पारुल का चरित्र कथालेखिका के शब्दों में - "प्रेम छिन जाने से विवाह से असंतुष्ट, विवाह हो जाने पर प्रेम से असंतुष्ट xxxx पारुल इतने साल पति और प्रेमी की परिभाषा अलग-अलग ही करती रही असंतुष्टि में खोकर वह अपने पति और सुखद गृहस्थी को छोड़ बार-बार मर्यादित जीवन के नियम तोड़कर प्रेमी से मिलती रही और एक रोज उसने पति को छोड़ प्रेमी को पति बना लिया पर हैरानी की बात थी कि वह पति न बन पाया। वह अपने शून्य में पाती, अब कुछ शेष न बचा था।"[१]

परपीड़क - नारी में आवेग, संवेग, उत्तेजना, बदले की भावना ये गुण भी होते हैं जो महत्व पूर्ण भी है। नारी कष्ट सह सह कर कभी विद्रोही भी बन जाती है। वह पुत्र व पति को भी कष्ट पहुँचा सकती है। पति को और पुत्र को वह पीड़ा अनुभव कराकर प्रसन्नता का अनुभव करती है। वह पुरुष वर्ग से जब असंतुष्ट हो जाती है उसके व्यवहार की कटुता उसे प्रेरणा देती है तो उसे दूसरे को पीड़ा पहुचाकर आनन्दानुभूति होती है।

परपीड़क नायिकाएं मीठी मीठी आँच पर पकती रहती है इनमें किसी सीमा तक उबाल और उफान नहीं आता है। इनके अस्तित्व का पता नही चलता जब तक ये किसी अज्ञात गहराई में छुपकर बड़ा नुकसान नहीं पहुँचा लेती। इनके हृदय की योजनाओं को कोई नहीं जान सकता। ये चालाक होकर भी कोमल हृदया होती है। ये अन्दर ही अन्दर घुन की तरह बदला लेने वाले मनुष्य का जीवन मिटा देती है। उस व्यक्ति का उचित रूप में उपयोग करके दूध से बाहर मक्खी निकालने वाली कहावत पर उतर आती हैं। जीवन मे सारे श्रेय लेकर अपने को दिव्य रूप में दर्शाकर दूसरे की वेदना का अनुभव कर प्रसन्न होती हैं। इन्हें बस दूसरे को दुःख देना ही अपने जीवन का लक्ष्य दिखता है।

नवें दशक की हिन्दी कहानियों में अनगिनत नायिकाऐं ऐसी मिली हैं।

अर्चना वर्मा की कहानी में नायिका- पति के एकनिष्ठ न होने पर त्याग देती है। बच्चा भी जब चीज माग कर उसे अपनी तरफ करना चाहता है तो कहती है "मुऐ न तू ब्लैकमैल कर सकता है न तेरा बाप।" बच्चा भी थोड़े ही दिन में सोफ्टी पिक्चर का मतलब समझ जाता है। होमवर्क न होने पर यूनीफार्म गन्दी होने पर स्कूल में डाँट खाता है तब मां के साथ रहनेका निश्चय कर लेता है। [२] इस कहानी में नायिका झुकती नहीं है अलग होकर भी पति व पुत्र को पीड़ा पहुंचाने में कोई कसर नही छोड़ती।

---

१. अँधेरे की लहर (अँधेरे की लहर) इन्दुबाली - इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली प्र. सं. १९८५ / पृ. १७

२. बूमरैंग (स्थगित) अर्चना वर्मा) / राजकमल प्रकाशन १९८१ पृ.७३

आवेगशील - आवेग या संवेग मनोविज्ञान के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि मानव शक्ति का स्तर सदैव एक सा नही रहता, उसमें कभी उत्तेजना अथवा उदासीनता की स्थितियाँ भी आ जाती है। इस दृष्टि से आवेग या संवेग मानव की दैनिक एवं सामाजिक प्रेरणाओं के माध्यम से क्रियाशील बनते हैं। क्योंकि आवेग सम्पूर्ण व्यक्तित्व में तीव्र विघ्न उत्पन्न करने वाला है जिसका उद्गम मनोवैज्ञानिक है तथा व्यवहार, चेतना, अनुभव और अन्तरावयव की क्रियाएं शामिल रहती हैं। ये आवेग, मानसिक और शारीरिक स्थितियों को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। मानसिक स्थिति में मानव के भौतिक, मानसिक, सामाजिक या अन्य उच्च सुखों को ठेस पहुँचाने वाली परिस्थिति का प्रत्यक्षीकरण करते हैं जो भावात्मक पक्ष में मानव के अनुभव को सुख या कष्ट रुप में प्रकट करते हैं तथा क्रियाशील बनाते और आंतरिक परिवर्तनों की चेतना से सम्पन्न रहते हैं पर शारीरिक स्थिति में वे व्यापक आंतरिक एवं स्नायविक परिवर्तनकारी होते हैं। परिणामतः मानव तीन स्थितियों में अपने आवेगों का प्रदर्शन करता है :-

(१) चेतना गत परिवर्तन - Change in Consciousness

(२) व्यवहार गत परिवर्तन - Change in behaviour

(३) आंतरिक क्रियागत परिवर्तन - Change in internal activity

चेतनागत परिवर्तन में आवेग, ध्यान, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, बुद्धि और भावनाओं आदि की मानसिक क्रियाओं मे परिलक्षित होता है। व्यवहारगत परिवर्तन, मुखाकृति, वाणी, देहमुद्रा के रुप में परिलक्षित होते हैं तथा आंतरिक क्रियागत परिवर्तन, स्नायुमण्डल और मानव मन की ग्रंथियों की क्रियाओं के रुप में परिलक्षित होते हैं।

इस प्रकार आवेगशील मानव की चित्तवृत्ति (Moods) भाव (Sentiments), भावना ग्रंथि (Complexes) का निर्माण हो जाता है। ये सम्मिलित रुप में मानव के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है ये आवेगात्मक क्रियाएँ मानव को असामान्यता (Abnormality) की ओर ले ज़ाती है तथा उसमें दमन (Repression) प्रवृत्ति की विविध प्रतिक्रियाएं अर्त्तनिहित करती हैं।

नारी पात्र विभिन्न मानसिक ग्रंथियों से आक्रांत हो उचित अनुचित का निर्णय किये बिना ही अनेक कार्य कर डालते हैं। इस दशक में कहानियों के पात्र चेतन अचेतन मन के बीच संघर्ष कर रहे हैं। बहुधा ऐसी स्थिति होती है कि पात्र को ही यह मालूम नही रहता कि वह अमुक प्रकार का व्यवहार किस विवशता से कर रहा है जबकि चेतन स्तर पर वह जानता है कि उसका व्यवहार समाज स्वीकृत नहीं है। वह अनजाने ही किसी विशिष्ट आचरण में खिंच जाता है और जिस क्रिया प्रतिक्रिया के संघर्ष में डूबता उतरता चलता है। इस दशक की कहानियों में नारी मनोविज्ञान का चित्रांकन है। परिणाम स्वरुप नारी पात्र अवचेतन से परिचालित होकर उचित अनुचित के निर्णय के बिना अनेक अप्रत्याशित कार्य कर बैठते हैं। ये नारी पात्र आवेगशीलता में किये गये कार्यो से घर बाहर दोनों से ही हाथ धो बैठते हैं। ये ज्यादातर आवेश में आकर, भोग से अतृप्त रहकर अपने यौनावेग की पूर्ति में अन्य पुरुष से विवाह कर भी दुःख ही पाते हैं।

अंहकारिणी नारियाँ ज्यादातर आवेग शील भी होती हैं। चौथा आशचर्य [१] कहानी में नायिका एक आई. ए. एस. पति के साथ भी खुश नही है वह आवेग में आकर कोर्ट में याचिका तलाक के लिये दे देती है। वह बड़े अफसर की पत्नी बनकर ठाटबाट में रहने के लिये बेचैन है पर पति एक ईमानदार अफसर है इस पर वह आवेग में आकर तलाक माँग रही है उसे पता नही है कि आज एक आई. ए. एस. की पत्नी है तलाक के बाद तो वो भी नही ××× अपने पति को भुक्कखड़ दरिद्र आदि अपमान जनक शब्दों से बुलाती है। यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' की 'अब वह नहीं सोएगी' गीतिमा वर्षो अत्याचार सहती है जैसे ही टीचर बन जाती है आर्थिक स्वावलम्वी होकर वर्षो पुराना गुस्सा अब काबू में नहीं रहता वह आवेग में आकर पति से कहती है- पहली बार झटके से जागी हूँ, पर अर्धांगिनी एक यंत्र तो नहीं होती। पर पुरुष की जन्मदात्री होती है। गरिमामयी माँ होती है।"××× वे दिन गये और वह गीतिमा भी मर गयी, अभिशप्त आत्माएँ सदा थोड़े ही भटकती हैं ××× एक न एक दिन उनकी मुक्ति अवश्यंभावी होती है।"[२] पति भड़क कर घर से बाहर निकाल देता है।

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र की 'कायर' कहानी में माधिया की पत्नी हिरणकी आवेगशील नारी का जीवंत चरित्र प्रस्तुत करती है।

हिरणकी ने माधिया से कहा - "खेत हार तू बेचेगा नहीं, फिर मुझे बेच दे। वह पापी यही चाहता है। इस शरीर को, पर यह शरीर सच तो नहीं है। सच तो मेरा हिया है। उस हिये पर कोई धब्बा नही लगेगा। और शरीर को साफ कर लूँगी, पर तू इतना बेवस न हो, पागल न बन। माधिया मैं तुझे चाहती हूँ, तेरी लुगाई हूँ, तेरा दुःख नही सह सकती तू इस तरह पगलाया सा दुःखी होकर जिये मुझे सहन नहीं होता में कल तेरा सारा संकट मिटा डालूँगी।"[३] उसके इस निर्णय को सुनकर माधिया बुत बना रहा।

---

१. जवाहर सिंह चौथा अश्चर्य (राष्ट्रीय विदूषक पृ. ५२ शब्दाकार दिल्ली पृ. सं. १९८०

२. यादवेन्द्र शर्मा - अब वह नही सोएगी (आदिपर्व तथा अन्य प्रति. कहा.) पृ. २३

३. कायर- यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'- आत्माराम एण्ड संस पृ. १७

आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

हमारे प्राचीन मनीषियों के अनुसार आदर्शवाद के सम्मिश्रण के बिना यथार्थवाद, साहित्य अथवा कला को पदवी प्राप्त करने की प्रतिष्ठा पा ही नही सकता।

"हो रहा है जो जहाँ, सो हो रहा,
यदि वही हमने कहा तो क्या कहा?
किन्तु होना चाहिये कब, क्या, कहाँ।"
व्यक्त करती है कला ही यह यहां।"

उपर्युक्त पंक्तियों के अनुसार 'जो है' के साथ जो होना चाहिये की व्यंजना भी साहित्य में अनिवार्य है तो मानना होगा कि यथार्थवाद और आदर्शवादये दोनों विचारधाराएं परस्पर विरोधी नही बल्कि पूरक हैं। दोनों के उचित मात्रा में मिश्रण से ही श्रेष्ठ कला का जन्म होता है। आदर्शोन्मुख यथार्थवादी या यथार्थोन्मुख आदर्शवादी रचना उत्कृष्ट कोटि की रचनाएं होती है जैसे - गोदान। संक्षिप्त में 'जो है' के यथातथ्य चित्रण को यथार्थवाद और जो हो सकता हो 'या होना' चाहिये के चित्रण को आदर्शवाद कह सकते हैं।

मानव जीवन एवं जगत में 'जो है' उसके दो पक्षहैं- सत् - असत्- , भला-बुरा, श्वेत-श्याम, हास-रुदन, शिव-अशि,व, सरल-कुटिल, ईप्सित-घृणित, श्लील-अश्लील, प्रिय-अप्रिय, पवित्र-अपवित्र, स्वस्थ-अस्वस्थ, साधारण-असाधारण, नैतिक-अनैतिक , हर्ष-शोक, उत्थान-पतन, विष-अमृत, फूल-काँटे आदि आदि इन सब में प्रथम पक्ष आदर्श और द्वितीय पक्ष को यथार्थ कह सकते है लेकिन सतपक्ष के चित्रण को लेकर हम साहित्य सृजन नहीं कर सकते हार के साथ जीत, सत्य के साथ असत्य, प्रिय के साथ अप्रिय इत्यादि जीवन के रंग हमेशा मानव जीवन में समाहित हैं। हम यदि ये कहें कि आदर्श के साथ हमेशा यथार्थ परछाँई की तरह और यथार्थ के साथ आदर्श छाया के समान है।

कथा जीवन की एक घटना होती है। तो जीवन के ये पक्ष भी समाहित होते है। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में हम कह सकते हैं कि आदर्शोन्मुख यथार्थवाद या व्यवहारिक आदर्शवाद साहित्य में समाहित होता ही है। हिन्दी कहानियों में प्रेमचन्द्र के युग के बाद यत्र तत्र आदर्शोन्मुख यथार्थवाद बिखरा पड़ा है।

संक्षिप्त रूप में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद वह कल्पना है जो मानव के दयनीय दुःखी और कुत्सित जीवन में आशा का संचार करता है। संघर्षो के मध्य भी निराश नहीं होता और धैर्य धारण करता है। भविष्य में सुखी जीवन की कामना करता है। मानव छल कपट पूर्ण जीवन से घबरा र साहित्य में कुछ पल शांति की कामना करता है वह सच्ची मानवता के दर्शन करना चाहता है जिसमें प्रेम दया और संवेदनशक्ति हो। प्रेमचन्द का मत है "यथार्थवाद यदि आँखे खोलता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुचा देता है।"[१] आदर्श को सजीव बनाने के लिये यथार्थ की आवश्यकता है।

स्वदेश दीपक की 'मरा हुआ पक्षी' में आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की झाँकी की झलक-

निम्न मध्यम वर्ग के अपनी मेहनत और प्रतिभा से जज के पद तक पहुंचे पति कान्वेन्ट शिक्षित आधुनिक पत्नी से असंतुष्ट हैं। उनकी किशोर पुत्री जब दादी माँ के यहाँ गाँव में साड़ी पहन कर अपने पिता के सामने आती है तो ।"उन्हें अपनी अनपढ़ माँ पर गर्व होता है जो किसी ऐंद्रिक माध्यम से सत्य को पहचान लेती है और उघाड़ देती है बिना किसी लाग लपेट के।"[२] वे बिना किसी के बताये केवल पोती के व्यवहार

---

१. समकालीन हिन्दी कहानी यथार्थ के विविध आयाम डॉ. ज्ञानवती अरोरा
२. मरा हुआ पक्षी - सेवदेश दीपक (प्रतिनिधि कहानियाँ / राजकमल प्रकाशन दिल्ली १९८५/पृ. २७

से ही जान जाती है कि उनकी पुत्रवधू दिशाहीन हो चुकी है। 'पारिपारिक सामाजिक परिवेश में आज भी भारतीय संस्कार और मर्यादा जीवन का श्रय व प्रेय है दादी के आदर्श में बेटी को एक बड़े होने की मूक परिभाषित शिक्षा व वधू के इतना आधुनिक होकर पति से विमुख होना यथार्थ है।

नासिरा शर्मा की कहानी 'गूँगा आसमान' में फरशीद एक पुलिस अफसर है वह अपनी बीवी मेहरअंगीज से संतुष्ट है पर उसे चिड़ियों की तरह लड़कियों को पिंजरे में बंद कर रखने का और फिर उनसे खेलने का न जाने कितना शौक है। वह एक दिन दो प्यारी सी बालिकाएं लाता है, एक तीस वर्षीय चंचल शौख महापारा को लाता है तीनों के साथ निकाह पढ़वाकर मनमानी करना चाहता है पर मेहरअंगीज उन सबको बरबाद होते नहीं देखना चाहती है। बेटियों समान लड़कियों को सौत नहीं बना सकती वह तीनों को समझाकर -, प्यार की भाषा में आदर्शोनमुख यथार्थवाद के दर्शन पाठकों को कराती है- "मेरे चचा के दो लड़के हैं, उनसे तुन दोनों का निकाह रात को होगा। तुन यहाँ की अपेक्षा वहाँ अधिक सुखी रहोगी बाकी बातें मेहरअंगेज के गले के रुंधने से अधूरी रह गयी। दोनों पहले मेहरअंगेज को ताकती रही फिर सब कुछ समझाकर एक आवाज में रो पड़ी। इस पिंजरे से वे तालमेल बिठा चुकी थीं। बहेलियां के खिलाफ मोर्चा भी संभाल रखा था। अब उन्हें कहाँ किस घर में किन लड़कों की पत्नी बनना पड़ेगा? उनके कुँवारे सपनों का क्या होगा इसे दोस्ती समझें या नई दुश्मनी ... तुम महापारा मेरे घर रहोगी। मेरी माँ है एक भाई जिसने शादी नहीं की है हमारा घर एक सियासी घर है। उसमें जान हथेली पर रखकर जीना होता है। मेरी इच्छा है तुम उस घर को अपना समझो दिल मिले तो सब कुछ अपना लेना चूँकि तुम जिन्दगी की गर्म सर्द देख चुकी हो। इसलिये फैसला तुम पर छोड़ा है - इतना कहकर मेहरअंगीजनें तीनों की तरफ देखा" [१]

---

१. गूंगा आसमान नासिरा शर्मा (पच्चीस श्रेष्ठ कहानियाँ) - सं. हिमांशु जोशी सं. १९९३
किताब घर - नई दिल्ली / पृ. ७९ कहानियां नवे दशक में यंत्र तंत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

नवें दशककी हिन्दी कहानी में नारी की सम्पूर्ण मानसिकता का चित्रण राजी सेठ की कहानी 'सदियों से'[१] में मिलता है। नारी संबंधित कथाकारों की विविध विचारधाराओं में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य नारी की अतृप्ति, टूटनाफिर जुड़ना और जुड़-2 कर भी टूटता जीवनहै। दार्शनिक (आत्मोत्सर्गी), नियतिवादी (कुण्ठाग्रस्त, आत्मपीड़क), आदर्शवादी (समर्पिता, करुणायुक्त) यथार्थवादी (आवेगशील, द्वन्दयुक्त, खण्डित व्यक्तित्व, परपीड़क) सभी विचार-धाराओं में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् को खोजती नारी का जीवंत चित्रण इस दशक में चित्रित है। नारी मन चारों विचारधाराओं सभी परिणतियों में क्या सोचता है – "कूल किनारे तो कभी कभार ही मझधार में आ पाते हैं डूबना तो मंझधार में ही हो सकता है। वह भी दूसरे के उत्तेजक उद्यम से । सतह पर तो अपनी ऊब डूब ही फेन की तरह मथी जाती है। इसीलिये रात आती है तो डर व्यापता डर कितना सर्वग्रासी आवेग है। पकड़े जाने का डर अधूरे समर्पण का डर मन के बेमनहोने का डर जो कुछ हो चुका डर, जो कुछ होना चाहिये वैसा न हो पाने का डर । यह जवाब देही बाकी सबछोरों पर कितना पंगु करकेफेंक देती है। एकस्त्री को कितना प्रतिबंधित करती है।"[२]

कथाकारों की चिंतन की परिणति ही नारी चारित्रयोद्घाटन में प्रयुक्त हुयी है। नारी पात्रों में पुरुष के अहं विगलन तथा मानसिक ग्रंथि के उद्घाटन हेतु उन्हें स्वभोग के लिये आमंत्रण करने, कामोन्माद दूर करने तथा विशेष परिस्थिति में पर पुरुष के साथ मुक्त साहचर्य की प्रवृत्ति उपलब्ध होती है। यह कहना अधिक समीचीन होगा कि मानव मानस अन्तर्निहित अदम्य कामनाओं, अतृप्तियों, कुण्ठाओं और घात प्रतिघातों की द्वन्दात्मक प्रवृत्तियों के साक्षात्कार करने की दिशा में नारियाँ निश्चित ही श्लाघनीय भूमिकाओं में अपना महत्व रखती है। भलेही मांसलता की प्रधानता हो पर एक समग्र प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहती पर वे भारतीय संस्कारों की नींव का पत्थर बनी रहती है। निरन्तर पतित होती हुयी 'घर' को न तोड़े जाने की कामना में स्वयं टूट जाती है और पाश्चात्य जीवन भोग की अतिवादी स्थितियों में दो दो पुरुषों की यौन संसर्गता भोग कर भी अन्ततः भारतीय वैवाहिक संस्कार विवाह की ओर ही लौटती हैं। आधुंनिक परिप्रेक्ष्य में कह सकते हैं कि द्रोपदी की भूमिका की ओर बढ़ रही हैं। जीवन को जीवन्त बनाने में सर्वाधिक सक्रिय एवं गतिशील दिखाई दीं है। भारतीय नारी के समस्त गुणों का रोपीटकर भी पालन करती दिखाई देती हैं। परित्यक्ता, तलाकशुदा, वैधव्य के बाद पुनः विवाह करती, नौकरी कर पति पर रौब मारती, कॉलगर्ल, गर्लफ्रैण्ड, बैटी बहिन, पत्नी, प्रेमिका एवं माँ न जाने कितने रुपों में, विभिन्न प्रतिबिम्बों में, विविध प्रकारों में, विविध परिणतियों में दर्शन कराती हुयी इस दशक में (१९८०-९०) हिन्दी कहानी में प्रस्तुत है।

---

१. सदियों से (दूसरे देश काल में) राजी सेठ नेशनल पब्लिशिंग हाउस पृ. सं १९९२

२. सदियों से (दूसरे देश काल में) राजी सेठ नेशनल पब्लिशिंग हाउस पृ. सं. १९९२

(राजी सेठ ने 'संबोधित आपको' में लिखा है कि उन्होंने रचनाकाल लिखा था बीते दशक के क्षण याद किये और लिखे पर प्रकाशक ने अपनी सुविधा के कारण तारीख व समय काट दिया है।)

षष्ठम–अध्याय

- उपसंहार
- सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
- सहायक–ग्रन्थ
- समाचार–पत्र
- पत्रिकायें

षष्ठम अध्याय

उपसंहार

जीवन का ही दूसरा नाम साहित्य है और साहित्य का दूसरा नाम जीवन। जीवन की सार्थकता नर और नारी के पारस्परिक संबंधो पर निर्भर है। नारी पुरुषत्व का आधार है। बिनाउसके मानव अपने जीवन में एकबहुत बड़े अभाव का अनुभव करता है। संभवतः इसीलिये हमारे देवताओं के साथभी उनकी स्त्रियों का नाम जुड़ा रहता है। जैसे गौरीशंकर, राधेश्याम, लक्ष्मीनारायण, सीताराम आदि।

भारतीय साहित्य में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है बिना उसके साहित्य सृजन ही असंभव है। भारतीय परम्परा और हिन्दू शास्त्रों में नारी को 'श्री' कहा गया है। नर के 'न' और 'र' दोनों वर्ण हस्व व नारी के 'ना' व 'री' दोनों वर्ण दीर्घ होते हैं। उससे यही द्योतित होता है कि नारी का स्थान नर से ऊँचा है। नारी नर से उच्च आसन पर विराजमान हैं। भारतीय हिन्दू शास्त्रों में नारी को अर्द्धांगिनी कहा गया है, इससे भासित होता है कि नारी को लेकर ही पुरुष पूर्णता प्राप्त करता है। प्राचीन काल में नारी को समाज में पुरुष के समान ही अधिकार एवं सम्मान प्राप्त था। उसकी उपस्थिति के बिना यज्ञ आदि धार्मिक कार्य पूर्ण नही होते थे। सीता की अनुपस्थिति में 'अश्वमेघ यज्ञ' करने पर रामको सीता के अभाव की पूर्ति हेतु सीताकी प्रतिमा स्थापित करनी पड़ी थी इसलिये समाज में नारी को शक्ति का अजस्त्र स्त्रोत तथा प्रेरणादायिनी शक्ति माना जाता है।

श्री विष्णु देव द्विवेदी के शब्दों में –

'' पंचभूत की हो समष्टि तुम, फिर भी व्यष्टि बनी हो।
मानव के जीवन पथ की तुम, संबल यष्टि बनी हो॥
सुर असुरों के महायुद्ध में बनी मोहिनी बाला।
थका जहाँ पुरुषार्थ, शक्ति को तुमने वहाँ संभाला।[१]

जायसी, कबीर आदि कवियों ने नारी वर्णन में ही परम प्रियतम परमात्मा की रहस्यमय झाँकी देखीहै। नारी शक्ति स्तवन को ही इन रहस्यवादी कवियों ने आलौकिक प्रेम तत्व के वर्णन का आधार बनाया। भक्त कवि तुलसी ने भी नारी को समाज में सम्मानित पद पर प्रतिष्ठित किया। उनकी आराध्य जगमाता सीता का आदर्श चरित्र इसका प्रमाण है। साथ ही एक नारी की ही प्रेरणा स्वरूप तुलसी द्वारा राम कथा का लिखा जाना भी नारी महत्ता का प्रतिपादक है।

नारी मूलतः पुरुष की शिक्षिका है, तब भी, जबकि वह बच्चा होता है और तब भी जब वह व्यस्क हो जाता है। नारी ही प्रेरणा की स्त्रोतस्विनी है। कष्ट के दुर्निवार क्षणों में नारी के स्नेहिल आँचल की छांह में ही पुरुष त्राण पाता है। प्रसिद्ध दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में ''जब आकाश बादलों से काला पड़ जाता है। भविष्य का मार्ग घने वन में से होता है, जब हम अंधकार में बिलकुल अकेले होते हैं। प्रकाश की एक किरण भी नहीं दीख पड़ती और जब सब ओर कठिनाइयाँ होती है तब हम अपने आपको किसी प्रेममय नारी के साथ में छोड़ देते हैं।''[२] प्रगतिवादी कवि पंत भी नारी के संबंध में यही मत देते हैं–'' स्त्री के बिना संसार एक अंधेरा कूप सा है। स्त्री ही अलंकारों में सर्वोतम अलंकार है। इसके बिना कविता भी रसीली नहीं होती। यह मधुरताकी एक मृदुल स्त्रोतस्विनी है। सौन्दर्य की एक अपूर्व खान है।''[३]

---

१. श्री विष्णुदेव द्विवेदी : कल्याण मासिक १०८३३ फरवी १९४८ एवं नारी अंक गीताप्रेस गोरखपुर॥
२. डॉ.राधाकृष्णन् : धर्म और समाज पृ. १६३
3. सुमित्रानन्दन पंत : पंत ग्रंथावली, पृ. २१

नारी का किसी देश के साहित्य सृजन में बहुत बड़ा हाथ होता है। साहित्य और नारी का संबंध शाश्वत है। साहित्य समाज से अलग रहकर जी नहीं सकता॥ परिस्थितियों से विलग रहकर पनप नहीं सकता और युग धर्म सेबहुत दूर आकाश में उड़ाने भर कर सहजानुभूतिगम्य एवं ग्राह्य नहीं हो सकता। नारी इस समाज का अर्द्धांग है। अतः अनिवार्यतः समाज को नारी से दूरस्थ नहीं रखा जा सकता भारतीय साहित्य में आदिकाल से ही नारी सम्माननीया एवं साहित्य सृजन में केन्द्रस्थ रही है। मनु ने''यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'' कहकर उसे समाज में उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया। यवनों के आक्रमणों के फलस्वरुप मध्ययुगीन भारत के पतनोन्मुखी समाज में नारी की स्थिति दयनीय हो गयी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के समाज सुधारकों नेदेश की पराधीनता की बेड़ी से मुक्त करने के लिये नारी स्वतन्त्रता को आवश्यक ठहराया।

नारी समाज का वह अंग है जो व्यक्ति एवं समाज के स्तर पर अनेक भूमिकाओं को एक साथ ही निर्वाहित करत है। एक ही समय में वह एक से अधिक रुपों में जीवन्त रहती है। वह एक साथ ही माता, बहिन पत्नी, पुत्री, प्रेयसी तथा वेश्या तकहो सकती है। अपने इन विभिन्न रुपों में वह कहानियो में किसी न किसी रुप में चित्रित है।

निर्वतमान काल में कहानियों में यौनजनय स्थिति में नारी मन के गोपन को चित्रित करने के लिये नारी को नायिका रुप में प्रस्तुत ही नहीं करता अपितु प्रधान रुप में रचना करता है। फ्रायड ने कहा है– ''पुरुषों को अपना ममत्व, अपना आत्मविश्वास तथा सम्वेदना प्रदान कर नारियाँ सभ्यता के विकास का प्रयत्न करती हैं क्योंकि पुरुष केवल अपने जीवन की व्यक्तिगत बातों के संबंध में ही सोचता है और जीवन मे वास्तविक मूलयों की अवहेलना करता है।''१ नारी पुरुष को आकर्षित भी करती है तोड़ती भी है और दुर्निवार जोखिम से उवारती भी है।

नारी वात्सल्य स्नेह कोमलता तथा दया आदि गुणों से सम्पन्न है और वह अपने मूल त्याग से अस्तित्व को पूर्णतया मिटाकर अपने पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। तन पुरुष का रहता है पर आत्मा वस्तुतः नारी की ही रहती है। नारी की स्थिति पुरुषों की अपेक्षा, अधिक मूल्यवान है वह वास्तविक अर्थ में पुरुष की पूर्णता है। समाज नर नारी का समन्वित रुप है। कोई भी विचारधारा हो या वाद हो, वह संभवतः नारी चरित्र परही आधारितहोता है। वर्तमान काल में यथार्थादी चेतना के परिपार्श्व में हिन्द कहानी में यथार्थ चित्रण के निकष पर भी केन्द्रस्थ नारी रहती है॥

नवें दशक की कहानियों में चित्रित नारी कहीं महज उपभोग्या है, कहीं विद्रोहिनी तो कहीं गरिमा का मूर्ति। इन तीनों मुखौटों के पीछे जो असली नारी है उसका अंकन हिन्दी कहानियों में बहुत कम मात्रा में हुआ है। कथा लेखिकाओं ने भी नारी को विद्रोही मुखौटों में प्रस्तुत किया है॥

डॉ. विजय द्विवेदी ने कहा है –''आज की भारतीय नारी केवल साहित्य के पृष्ठों मेंही अपने स्वतन्त्र अस्तित्व , व्यक्तित्व को कायम रखने का आग्रह दिखा रही है, सामाजिक जीवन में नहीं, वस्तु स्थिति यह है आज नारी अपने चतुर्दिक परिवेश से अन्तर्राष्ट्रीय माहौल से अपने को जोड़नातो चाहती है। किन्तु संस्कारवादिता, परम्पराबद्धता उसके आड़े आ रही है। वह इनके बीच किसी मध्यम मार्ग की खोज अथवा समझौता नहीं कर पा रही है। यह एक विडम्बना पूर्ण स्थिति है। अतः अपने ही बंधे बंधाये परिवेश में स्वयं को साहसी, क्रांतिकारी अथवा स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान करने की बात करना कोई माने नहीं रखता''२ इस दशक में मध्यवर्गीय परिवार एवं परिवेश में सांस लेती नारी की विभिन्न संवेदनाओं का जितना प्रामाणिक अंकन इन कहानियों में हैं अन्यत्र दुर्लभ ही कहा जायेगा॥ इनमें नारी अपने यथार्थ परिवेश में टूटती भी है और फिर से खड़ी होने का प्रयास करती है कभी वह झुंझलाती है बौखलाती है और कभी ईमानदारी के साथ अपने प्रश्नों अभावों के साथ जूझती है तो कभी समझौता भी करती है। नारी जीवन की इन विभिन्न भाव भंगिमाओं का चित्रण इन कहानियों में है।

---

१. विजय कुलश्रेष्ठ : जैनेन्द्र के उपन्यासोंकी विवेचना पृ. १३६

२. समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना सन्दर्भ अशोक हजारे डा. माधव सोन टक्के – नारी जीवन के कुछ पहलू – पृ. ४७

कोमल हृदया नारी इस दशक तक आते–आते प्रेम के अर्थ को भूलती जा रही है। प्रेम के प्राचीनतम स्वरुप आज नये रुपों में चित्रित है। कथा साहित्य में प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रेम एक आधार है। दो हृदयों का एकाकार हो जाना, एक रस में वह जाना, रंग में रंग जाना पूर्ण तादात्म्य अनुभव करना जीवन की स्वाभाविक माँग है। मानव ही नहीं प्रकृति अन्यान्य जीवों में भी अपने भिन्नलिंगी के प्रति यही आकर्षण है। सरिता सागर की ओर क्यों दौड़ती है? रिमझिम बूदों में चातक पी क्यों पुकारता है? पुष्प पंखुरियों में भंवरा क्यों बंदी हो जाता है? समस्त प्रश्नों का एकमात्र उत्तर प्रेमजन्य आकर्षण है। प्रत्येक मानव मन में प्रेम की वेदना जो किसी अनजान प्रेमी के लिये उठती है कहीं पशुपक्षी या वनस्पति जगत तक प्रसार करती द्रष्टिगत होती है। इस दशक में परिपक्व प्रेम को जीवन की अनिवार्यता माना गया है। जिन्दगी की विद्रूपताओं, विसंगतियों, विकृतियों को झेलते झेलते ही किसी विशेष क्षण में वयक्ति प्रेम की मधुर अनुभूति से गदगद होता दिखता है। आधुनिक बोध से प्रेरित महिला कथाकार जागरुक हैं। उनकी दृष्टि में प्रेम एक शुद्ध सात्विक एवं उदात्त वृत्ति है जिसमें स्वार्थ या सौदेबाजी का कहीं भी अस्तित्व नहीं है। वह जातपात ऊँच, नीच, अमीर गरीब की लक्ष्मण रेखाओं से स्वतन्त्र होता है परन्तु इसका यह आशय नहीं कि वे निर्बन्ध मुक्तप्रेम की समर्थक हैं।

प्रेम सृष्टि का चालक है, जिन्दगी की धमनियों में बहता हुआ रक्त हैं यही नेत्रों में ज्योति, चेहरे पर शोभा, पैरों में गति, भुजाओं में शक्ति और मस्तक में सृजनात्मक चिन्तन बनकर उभरता है।''पत्थरों का कलेजा रौंदकर द्रुतगामी झरने एकदम फूटते हैं, जैसे धरती की कोरव को चीरकर अंकुर प्रस्फुटित होते हैं वैसे ही, यौवनागम होते ही प्रेमानुभव होता है। यह एक नैसर्गिक प्रक्रिया है जो किसी कृत्रिम प्रयास की अपेक्षा नहीं रखती।''१

प्रेमपरक विद्रूपंता या विसंगति ने जीवन के प्रत्येक पहलू की शुचिता, सहजता तथा गरिमा को भंग कर दिया है। दाम्पत्य व्यक्तित्व, सामाजिक सभी स्थितियों में वैपरीत्य और विद्रूपता का अजगर कुण्डली मार कर बैठ गया है। पुरातन आस्थाएं मरे सर्प की कैंचुली सी अनावश्यक और अप्रसांगिक लगने लगी। दाम्पत्य संबंधों में वह मधुरता, पुलक या ताजगी विलुप्त हो गयी है जो संबंधों के मूल में प्राणदात्री चेतना सी विद्यमान होती है। सब ओर जैसे 'फारमेलिटी' या खानापूर्ति की प्रवृत्ति ने उनके संबंधों को जड़ बना दिया है।

सब कहानियों में प्रेम को जीवन की अनिवार्यता न मानकर प्राणी की जीवंतता का धोतक माना है इसी कारण जहां भी उसकी महज स्वाभाविक प्रक्रिया में व्याधात आ जाता है या कोई अवरोधक बन प्रेमी जीव के समस्त व्यक्तित्व को दबोचकर रख देता है तो मानवीय जीवन के लिये यह स्थिति किसी अभिशाप से कम नहीं होती। अनेकानेक कुण्ठाएं अर्न्तमन की कोठरियों में करवट बदलती रहती है जो प्रत्यक्ष रुप में न सही अप्रत्यक्ष रुप में अवश्य प्रकट होती है।

कही हिस्टीरिया, हृदयरोग, आत्मरोदन के रुप में और कहीं कला समाज सेवा या लोकमंगल की कामना के रुप में प्रेमजन्य कुण्ठाओं का प्रत्यक्षीकरण होता देखा गया है। आज समकालीन कहानी हमें तो मन का एक जुनून सा जान पड़ती है। आज प्रेम की परिभाषा में महत्वाकांक्षा विराजमान है वह न जाने कहाँ से भूतप्रेत की तरह अदृश्य होती फिर दिखाई पड़ती और धीरे–धीरे उसमें समाती जा रही है। आज जिन्दगी प्रेम और महत्वाकांक्षा के बीच धस गयी है। राजी सेठ की कहानी 'सदियों से' की नायिका के शब्दों में–''क्या वह नरेन को छल रही है? झाँसा दे रही है? रो सी आई। हेमंत के कारण नरेन से छल और और नरेन के कारण हेमंत की दुविधा। जीवन को क्या अपराधभाव की श्रृंखला ही होकर रहना है? जीने को क्या ऐसे ही सहना है लिसलिसाते हुये। उन अपराधों की बीच में जो उसने कभी नहीं किये। उससे कभी नहीं हुये। स्त्री होने की क्या यही परिणति है? अपने से लड़ना। जूझना। अपनी निष्ठा को साध्वी सिद्ध करने के लिये

---

१. कथा लेखिका मन्नू भण्डारी – डॉ. ब्रजमोहन शर्मा– कादम्बरी प्रकाशन दिल्ली पृ. ८७

हर पल, हर घड़ी पंजों पर उढ़ुंग खड़े रहाना। वह नरेन से कह सकती है आज अस्वस्थ है। आज उसका मन विपन्न आच्छन्न है। हेमंत से विदाई के एक व्यक्त अनुष्ठान मे से वह गुजर कर आयी है। पस्त हो गयी है। आज कोई स्वीकार उससे सध नहीं सकता... कोई साझेदारी। आज उसका तंतु–तंतु झनझनाया है। ××× एक कुण्ड से निकलकर दूसरे में लिथड़ने लगना उसे विश्वास है नरेन समझ जाता। वैसे भी हेमंत जैसे संबंध से विदाई किसी भी पति को क्या अच्छी लगती ।"[१] अधिकतर हिन्दी कहानियों में प्रेम में, संबंध से प्रागाढ़ता इस कारण भी नहीं आ पायी है क्योंकि अचानक ये तीसरा (प्रेमी) तीसरी (प्रेमिका) कहानी के विकास को अवरुद्ध कर देते हैं और कहानी मानसिकता के घेरे में थम जाती है और कथाकार अंघड़ के रुक जाने की प्रतीक्षा करने लगता है। वास्तव में कहानी में पात्र कहीं भी आदर्श रुप में गंभीरात्मक दृष्टिकोण नहीं लेते है। पात्रों में तटस्थता नहीं है ओछापन, छिछोलापन दृष्टव्य है। नैतिकता का समावेश नहीं है। पात्र गिरते, उठते फिर गिरते नजर आते हैं। पात्रों में इन सब बातों को ही ऐसे अतृप्त टूटते पात्रों को मनोवैज्ञानिकता से जोड़ा है। इस दशक में नारी पात्र मनोविज्ञान के घेरे में धंसे पड़े हैं। उनकी हर तरह की कार्यप्रणाली मनोविज्ञान का सहारा लिये बैठी है।

नवें दशक से पूर्व हिन्दी कहानी के क्षितिज पर कई कहानी आन्दोलन उभरे और डूब गये। समान्तर, सचेतन, जनवादी एवं सक्रिय कहानी आन्दोलन इस दशक के पूर्व प्रारंभ हुये और राजनीति की गिरफ्त में आ गये। आन्दोलन कर्ताओं में आपस मे स्पर्धा ने महत्वपूर्ण–स्थान ले लिया। इस कारण कथाकारों ने महत्वपूर्ण विषयों पर कथासृजन किया और कहानी साहित्य के श्री भण्डार मे वृद्धि की।

परिवेश की दृष्टि से (राजनैतिक, आर्धिक, सामाजिक, साहित्य) इस समय देश में काफी उथल पुथल थी। इंदिरागांधी की हत्या के बाद तो ऐसा लगा जैसे नारी जागरण का युग अब आयेगा। लेकिन कुछ समय में ही स्थिति संभल गयी और देश में पाँच वर्ष के लिये सत्ता आ गयी। कहानियों में प्रमुखता राजनीति को, मिलने लगी। कहानियों में नारी द्वारा राजनैतिक विषयों में भी हस्तक्षेप होने लगा।

साहित्यकारों ने नारी को नवीन दृष्टि से देखने का प्रयास किया। उसे कथाकारों ने सभी क्षेत्रों में उतारा। नारी को स्वतन्त्र सत्ता प्रदान की गयी। उसे भावुकत्ता के लिजलिजे धरातल से बाहर निकाला गया है। परिणामत: नारी ने अपने आपको पहचान लिया और वह अपने अधिकारों के प्रति सजग हो गयी। इस दशक में कहानियों में नारी के विविध प्रतिबिम्व दृष्टव्य है माँ, बहिन, बेटी, प्रेमिका एवं वैश्या (कॉलगर्ल)। फिर भी नारी आज अपने वास्तविक रुप के प्रति सजग हो चुकी है। अब कहानियों में नारी स्वतन्त्र है, आत्म निर्भर है, रुढ़ियों से मुक्त है तथा पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर हर क्षेत्र में चल रही है।

इस दशक में नारी दो भागों में बंट गयी है एक घर और दूसरा बाहर। घर और बाहर दोनों जगह अपने को स्थापित करते–करते मन से टूटती जा रही है। आज नारी का जीवन व्यवहारवादी आदर्श से अनुप्राणित है। नारी का व्यवहारगत मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण मूल रुप से इस शोध का वास्तविक तथ्य है। इस वर्गी करण में नारी जीवन के समस्त क्षण मौजूद हैं। मनोवृत्ति, व्यक्तित्व, मनोग्रन्थी, इच्छा शक्ति, मानवीय गुण एवं मूल प्रेरणा स्त्रोतों के आधार पर यह मनौवैज्ञानिक वर्गीकरण किया गया है। नवें दशक में कहानियां राजनैतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक होते हुये भी मनौवैज्ञानिक आधार पर टिकी है।

नारी जाति का स्वभाव हमेंशा पृथकता लिये होता है। एक घर में एक ही पिता की चार बेटियां अलग–

---

१. सदियों से (दूसरे देशकाल में) राजीसेठ नेशनल पब्लिसिंग हाउस दिल्ली मे १९९२– पृ. २३

अलग तरह से व्यवहार करती है। नारी आज शिक्षित है। उसे अपने अच्छे बुरे का ज्ञान है। वह जो कदम आज रखती है वह सोच समझ कर पर, कभी–कभी वह असहाय होकर छली जाती है खैर अब नारी अपनी गलती से ही दुख पाती नजर आती है। विविध विचार धाराओं के कारण भी नारी का स्वभाव बदला है। आज वह देहदान को बुरा नहीं मानती और आत्मोत्सर्गी प्रवृन्ति को अपना लेती है उसकी दार्शनिक विचारधारा की परिणति आत्मोत्सर्गी हो गयी है। कुछ नियतिवादी है वे तो सबको देखती हुयी, लोग क्या कहेंगें के कारण कुण्ठाग्रस्त, और आत्मपीड़न की स्थिति में जा रही तीसरी आदर्शवादी है वे दिखाने में जीती, मरती, गिरती उठती दिखाई दी है उनका स्वरुप समर्पित और करुणायुक्त सा बन पड़ा है अंतिम यथार्थवादी हैं वे ही वास्तविक है उन्होंने आवेगशील, द्वन्द्वयुक्त खंडित व्यक्तित्व एवं परपीड़क का स्वरुप गृहण किया है। यदि हम नवें दशक की कहानियों के साथ सत्य रुप में न्याय कर पायेंगें तो अधिकतर हमें यथार्थवादी एवं आदर्शोमुख यथार्थवादी नायिकाओं के दर्शन ही मिले हैं वे तो जो पूर्व की दो विचार धाराएं है वे सम्मिश्रण रुप में मिली है।

आज नारी हिन्दी कहानी में स्वतन्त्र अस्तित्व के साथ विराजमान है। कथा साहित्य में नारी का संसार आज उसकी इच्छा से चल रहा है। कथाकार आज नारी का आकर्षण के कारण नहीं बल्कि उसकी जाग्रति के कारण प्रमुख स्थान दे रहे हैं। नारी मन का गोपन चित्र कथाकार का विषय हो गया है। आज हिन्दी कहानी कार की नारियां एवं विशिष्ट जीवन दर्शन से अनुप्रेरित होकर, मानसिक वेदना के धरातल से ऊपर उठकर अपने जीवन को जीवंत बनाने में सर्वाधिक सक्रिय एवं गतिशील है।

संदर्भ ग्रंथसूची

संदर्भ–ग्रंथ	लेखक
१. आज की कहानी	विजय मोहन सिंह
२. आठवें दशक की जनवादी कहानी	डॉ. ब्रज मोहन शर्मा
३. आधुनिक परिवेश और नवलेखन	शिव प्रसाद सिंह
४. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रेयपरिकल्पना	विजय मोहन सिंह
५. आधुनिक हिन्दी नाटकों का मनौवैज्ञानिक अध्यन	डॉ. गणेश दत्त गौण
६. कहानी नई कहानी	डॉ. नामवर सिंह
७. कहानी स्वरुप और संवेदना	डॉ. राजेन्द्र यादव
८. कहानी की वर्णमाला	कपिल तिवारी
९. कहानी की संवेदन शीलता सिद्धांत और प्रयोग	भगवान दास वर्मा
१०. कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक	
११. कल्याण नारी अंक	
१२. कथाकार:भगवती प्रसाद बाजपेयी	डॉ. सुरेन्द्र दोषी
१३. कथा लेखिका मन्नू भंडारी	पं. ब्रज मोहन शर्मा
१४. द्वितीय महायुद्दोन्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
१५. धर्म और समाज	डॉ. राधाकृष्ण
१६. जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना	डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
१७. जैनेन्द्र व्यक्तित्व कृतित्व	वीरेन्द्र कुमार गुप्त
१८. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी	डॉ. सावित्री
१९. नवीन मनोविज्ञान	डॉ. लाल जी राम शुक्ल
२०. नयी कहानी: सन्दर्भ व प्रकति	डॉ. धंनजय वर्मा
२१. नयी कहानी की भूमिका	कमलेश्वर
२२. नयी कहानी और मध्यवर्ग	डॉ. कामेश्वर प्रसाद सिंह
२३. नयी कहानी उपलब्धि और सीमाएं	डॉ. गोरधन सिंह शेखावत
२४. नयी कहानी के विविध प्रयोग	पाण्डेय शशि भूषण शीतांशु
२५. नयी कहानी संदर्भ और प्रवृतिं	सम्पादक डॉ. देवीशंकर अवस्थी
२६. परिवेश मन और साहित्य	डॉ. त्रिलोक चन्द्र
२७. पंत ग्रन्थावली	सुमित्रानन्दन पंत
२८. प्रसाद के नारीपात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	डॉ. पुष्पलता बाजपेयी

२९. प्रेमचन्द का नारी चित्रण — डॉ. गीता लाल
३०. बकलम खुद — मोहन राकेश
३१. भारतीय संस्कृति की रुपरेखा
३२. भारतीय सामाजिक संस्थाएं — जी. के. अग्रवाल
३३. मनोंविज्ञान — डॉ. यदुनाथ सिन्हा
३४. मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएं — डॉ. पदमा अग्रवाल
३५. शिक्षा के सामान्य सिद्दान्त — पाठक व त्यागी
३६. समकालीन कहानी : समान्तर कहानी — डॉ. विनय
३७. समकालीन कहानी का रचना विधान — डॉ. गंगा प्रसाद विमल
३८. समकालीन हिन्दी कहानी : यथार्थ के विविध आयाम — डॉ. ज्ञानवती अरोरा
३९. साहित्य का समाजशास्त्र — डॉ. नगेन्द्र
४०. संस्कृत दिग्दर्शिका — इलाहाबाद वोर्ड
४१. समकालीन कहानी: युगबोध का सन्दर्भ — डॉ. पुष्पपाल सिंह
४२. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनैतिक चेतना — डॉ. जितेन्द्र वत्स
४३. साठोत्तरी हिन्दी कहानी — सम्पादक हरिहर प्रसाद
४४. सत्तरोत्तरी हिन्दी कहानी में नारी — पूरन सिंह
४५. समकालीन कहानी के विविध सन्दर्भ — डॉ. कीर्ति केशर
४६. समकालीन हिन्दी कहानी और सामाजिक चेतना — डॉ. किरन वाला
४७. साहित्य का श्रेय और प्रेय — जैनेन्द्र कुमार
४८. समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचंना सन्दर्भ — अशोक हरदोई एवं माधव सोनटके
४९. साहित्य का उद्देश्य — प्रेमचन्द
५०. हिन्दी की नयी कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन — डॉ. मिथलेश रोहतगी
५१. आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान — डॉ. देवराज उपाध्याय
५२. हिन्दी कहानी : आठवाँ दशक — डॉ. प्रेमकुमार
५३. हिन्दी कहानी का परिदृश्य — डॉ. परेश
५४. हिन्दी उपन्यासों में नारीचित्रण — बिन्दु अग्रवाल
५५. हिन्दी कहानी का अन्तरंग पहचान — रामदरश मिश्र
५६. हिन्दी गद्य का विद्या वैविध्य — डॉ. पुष्पा बंसल
५७. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी — सम्पादक डॉ. रामकुमार
५८. समकालीन साहित्य : नया परिदृश्य — सतीश जमाली
५९. हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा — संम्पादक रामदरश मिश्र व नरेन्द्र मोहन
६०. हिन्दी कहानी : एक अन्तर्यात्रा — डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
६१. हिन्दी कहानी दो दशक की यात्रा — डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित
६२. हिन्दी कहानी के आन्दोलन : उपलब्धि और सीमाएं — रजनीश कुमार

६३. हिन्दी कहानी के अस्सी वरस — डॉ. शिवदान सिंह चौहान
६४. हिन्दी कहानी : समीक्षा और सन्दर्भ — डॉ. विवेकी रॉय
६५. हिन्दी कहानी : पहचान और परख — इन्द्रनाथ मदान
६६. विचार और अनुभूति — डॉ. नगेन्द्र
६७. सिद्धांत और अध्ययन — डॉ. गुलाबराय

समाचार पत्र और पत्रिकाऐं

समाचार–पत्र

१. दैनिक जागरण
२. अमर उजाला

पत्रिकायें

१. इण्डिया टुडे
२. सारिका
३. विश्व ज्योति नारी अंक
४. आजकल
५. साप्ताहिक हिन्दुस्तान
६. धर्मयुग
७. हंस
८. निष्कर्ष
९. वर्तमान साहित्य
१०. इन्द्रप्रस्थ भारती
११. सरिता

	कहानी संग्रह	कहानीकार	प्रकाशन	संस्करण
१.	अंधरे की लहर	इन्दुबाली	इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन	१९८५
२.	आधुनिक कहानियाँ	सं. भगवत स्वरूप मिश्र		१९७७
३.	आदम और हब्बा	मेहरुन्निसा परवेज		
४.	आदिपर्व तथा अन्य प्रतिनिधि कहानियां	यादवेद्र शर्मा चन्द्र	आत्माराम एडं संस	१९८१
५.	अतीत तथा अन्य कहानियां	शैलेश मटियानी		
६.	इस हमाम में	चित्रा मुद्गल	प्रभात प्रकाशन	१९८७
७.	उस पार गोधूलि	आशीष सिन्हा	आर्य प्रकाशन	१९९१
८.	अश्वारोही	स्वदेश दीपक	पंचशील प्रकाशन प्रथम संस्करण	१९८८
९.	उन्नीस सौ अठासी की प्रतिनिधि कहानियां	सं. हेतु भारद्वाज	पंचशील प्रकाशन	१९८८
१०.	कामकाजी महिलाओं की कहानियां	सं. ज्ञान राजेन्द्र		
११.	कृष्णावेणी तथा अन्य कहानियां	शिवानी		१९८१
१२.	कसाईबाड़ा	शिवमूर्ति	राधाकृष्म प्रकाशन–दिल्ली,	१९९१
१३.	केशर कसतूरी	शिवमूर्ति	राधाकृष्ण प्रकाशन–दिल्ली,	१९९१
१४.	किसी देश के किसी शहर में	रमेश उपाध्याय		१९८५
१५.	कथारंग	अज्ञेय		
१६.	क्रौंचबध तथा अन्य कहानियां	ऋता शुक्ला	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन	१९८५
१७.	गुलाब के फूल जिंदगी के काँटे	रजनी पणिकर		
१८.	जलते हुए डैने	हिमांशु जोशी		१९८१
१९.	जलतरंग	सुनील सिंह	सम्भावना प्रकाशन, हापुड़	१९८९
२०.	टूटते हुए	डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल		
२१.	दुनिया की सबसे हसीन औरत	संजीव	यात्री प्रकाशन दिल्ली	१९९०
२२.	दरवाजे पर दस्तक देता प्रश्न	जयनारायण		
२३.	दूसरे देश काल में	राजी सेठ	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस	१९९२
२४.	धाँसू	गोविन्द मिश्रा	राजकमल पेपर बैक्स नई दिल्ली	१९८९
२५.	धुली हुयी शाम	शशि प्रभा शास्त्री		
२६.	नील गाय की आँखे	नमिता सिंह	वाणी प्रकाशन दिल्ली	१९९०
२७.	नारी उत्पीड़न की कहानियाँ	सं. डॉ गिरिराज शरण		१९८६
२८.	नारी तथा अन्य कहानियाँ	क्रांति त्रिवेदी		
२९.	नवाँ दशक हिमांचल की प्रतिनिधि कहानियां		सं. राजेन्द्र राजन प्र. सं.	१९८४
३०.	पच्चीस श्रेष्ठ कहानियाँ	सं. हिमांशु जोशी	किताबघर दिल्ली	१९९३
३१.	पत्थर गली	नासिरा शर्मा	राजकमल प्रकाशन दिल्ली	१९८६
३२.	प्रतिनिधि कहानियाँ	काशीनाथ सिंह	राजकमल पेपर बैक्स दिल्ली	१९८९

क्र.	कृति	लेखक	प्रकाशक	वर्ष
३३.	प्रति. कहानियाँ : स्वदेश दीपक	राजकमल पेपर बॉक्स दिल्ली		१९८८
३४.	लौ सुरीली तथा अन्य कहानियाँ	विजय	पराग प्रकाशन दिल्ली	१९८७
३५.	बेला एक्का लौटा रही है	अरूण प्रकाश	आयाम प्रकाशन शाहदरा दिल्ली	
३६.	बसंत का एक दिन	रामदरश मिश्र		१९८२
३७.	बादलों के घेरे	कृष्णा सोबती	राजकमल प्रकाशन	१९८९
३८.	बचुली चौकीदारिन की कढ़ी	मृणाल पाण्डे	राधाकृष्ण प्रकाशन	१९९०
३९.	भीष्म साहनी की प्रति. कहानियाँ	सं. मोहन गुप्त		
४०.	मृत्युदण्ड	माहेश्वर		
४१.	मोहभंग	जवाहर सिंह		
४२.	मोहन राकेश की प्रति. कहानियाँ	सं. मोहन गुप्त		
४३.	मेरी प्रिय कहानियाँ	मृणाल पाण्डे		
४४.	मरा हुआ आदमी	स्वदेश दीपक		
४५.	युवा कथाकारों की प्रति. कहानियाँ	विपिन जैन		
४६.	राजेन्द्र यादव की प्रति. कहानियाँ	सं. मोहन गुप्त		
४७.	रेणु की प्रति. कहानियाँ	सं. मोहन गुप्त		
४८.	राष्ट्रीय राजमार्ग	रमेश उपाध्याय	सामयिक प्रकाशन	१९८४
४९.	राष्ट्रीय विदूषक	जवाहर सिंह	शब्दकार दिल्ली प्र. सं.	१९९१
५०.	लोग हाशिःपर	धीरेन्द्र अष्ठाना		
५१.	सलीब	विष्णु प्रभाकर		
५२.	स्पन्दन	श्रवण कुमार	जगतराम एण्ड संस नई दिल्ली	१९९१
५३.	स्थगित	अर्चना वर्मा	राजकमल प्रकाशन	१९८१
५४.	सत्रह आंचलिक कहानियाँ	सं. राजेन्द्र अवस्थी	अनामिका प्रकाशन सं.	१९९३
५५.	स्वयं सिद्धा	शिवानी		
५६.	सुबह अनी थी	सुरेश सेठ	पराग प्रकाशन	१९८९
५७.	स्वर्ण रेखा	दिनेश पालीवाल		१९८४
५८.	शैलेश मटियानी की प्रति कहानियाँ	सं. बटरोही	साहित्य भण्डार इलाहाबाद	१९८७
५९.	हम प्यार कर ले	गिरिराज किशोर		
६०.	हँसा जाई अकेला	मार्कण्डेय		
६१.	हारा हुआ	शैलेश मटियानी		
६२.	हारा हुआ आदमी	रुप सिंह चन्देल		१९९०
६३.	हिन्दी लेखिकाओं की श्रेष्ठ कहानियाँ	सं. योगेन्द्र कुमार लल्ला श्रीकृष्ण		१९९४